विज्ञान में भारत का योगदान

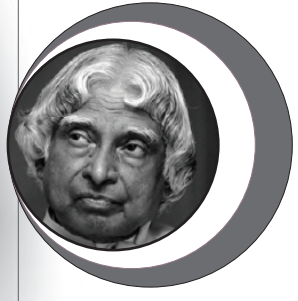

संकलन
विज्ञान भारती

———————————————————————————

वीवीएम के वेबसाइट (VVM.ORG.IN) पर उपलब्ध इस पुस्तक का उपयोग किसी व्यक्ति के द्वारा देखने, डाउनलोड करने, अस्थायी तौर पर सहेजने और मुद्रण करने के लिए केवल अव्यावसायिक तथा शैक्षिक उद्देश्यों हेतु ही सीमित है।

———————————————————————————

çkDdFku

भारत के पास विज्ञान और प्रौद्योगिकी की समृद्धशाली विरासत है। चाहे वो प्राचीन काल में शून्य का आविष्कार हो या आधुनिक युग में अंतरिक्ष में 100 से अधिक उपग्रहों का प्रक्षेपण हो, हमारे वैज्ञानिकों ने इसे सफलतापूर्वक अंजाम दिया है। दुर्भाग्यवश हमारे गौरवपूर्ण अतीत को भुला दिया गया है। विद्यार्थी विज्ञान मंथन (वीवीएम) के माध्यम से विज्ञान भारती हमारे विज्ञान और तकनीक संबंधी अतीत को लेकर भारत के भावी नागरिकों में राष्ट्रीय गौरव की भावना विकसित करने का प्रयास कर रहा है।

विद्यार्थी विज्ञान मंथन का उद्देश्य न केवल युवाओं के बीच से वैज्ञानिक प्रतिभा को ढूंढकर बाहर निकालना है बल्कि उनके भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर इसकी भावना भी भरनी है। वीवीएम अपने इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए युवा विद्यार्थियों को भारतीय मूल के उन वैज्ञानिकों के जीवन और उपलब्धियों के बारे में जागरूक बनता है जिन्होंने अधिकांश जीवन भारत में गुजारा तथा यही अपने शोध कार्य किए। हमें आशा है कि इन वैज्ञानिकों के बारे में पढ़ने से युवा विद्यार्थी प्रेरित होंगे और अपनी मातृभूमि की तरफ तथा देश इन वैज्ञानिक बेटे और नीतियों की ओर उनका ध्यान केंद्रित होगा।

इस वर्ष हमने ऐसे डॉ भारतीय वैज्ञानिकों पर ध्यान केंद्रित किया है, जो गरीब परिवारों में स्वतंत्रता पूर्व भारत में जन्मे थे और उन्होंने अपना अधिकांश विज्ञान संबंधी अध्ययन व शोध कार्य भारत में ही सम्पन्न किया। इस लेख के माध्यम से, हम पाठकों को उन उतार चढावों और तमाम अवरोधों के बारे में चर्चा करेंगे जिनका सामना करके इन वैज्ञानिकों ने अपने कैरियर में उल्लेखनीय ऊँचाइयां हासिल की। उनके जीवन के बारे में पढ़ते समय हम यह महसूस करते हैं कि जब सफलता के लिए आपमें दृढ़ इच्छा शक्ति हो और आपके चुने हुए लक्ष्य को लेकर एक जुनून होगा तो कोई कठिनाई आपको लक्ष्य हासिल करने से कभी नहीं रोक सकती।

ohoh,e Vhe

विषय वस्तु

1. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत का योगदान
   (प्राचीन काल से वर्तमान तक) 1–4
2. भारत में खगोलिकी.....5–15
3. भारत में रसायन विज्ञान – एक सर्वेक्षण.....16–24
4. प्राचीन भारत में औषधीय परंपरा का ऐतिहासिक विकास.....25–33
5. प्राचीन भारत में पादप और जंतु विज्ञान.....34–39
6. भारत में गणित.....40–50
7. भारत में धातु विज्ञान 51–60
8. पर्यावरण संरक्षण पर भारतीय परंपरागत ज्ञान 61–71
9. जीवन, स्वास्थ्य और कल्याण के लिए आयुर्वेदः एक सर्वेक्षण 72–87
10. भारत के नोबेल पुरस्कार विजेता.....78–110
11. भारत के परंपरागत, गैर परंपरागत और स्वच्छ ऊर्जा स्रोत.....111–114
12. विज्ञान और इसकी विभिन्न शाखाएं 115–117
13. आयुर्वेद और औषधीय वनस्पतियां..... 118–123
14. भारत में कृषि, जैवप्रौद्योगिकी और नैनोप्रौद्योगिकी.....124–127
15. भारत में खगोल विज्ञान 128–136

16. अंतरिक्ष में भारतः एक उल्लेखनीय उपलब्धि.....137–147

17. गुरुत्वीय तरंगों की खोज – भारतीय योगदान.....148–149

18. संगमग्राम माधवन की खोज.....150–152

19. जुलाई 2016 के बाद की नई उपलब्धियां.....153–163

निम्नलिखित पाठ्यक्रम को ध्यान में रखें:

- जूनियर वर्ग (कक्षा छठी से आठवीं): अध्याय 1 से 7, 9 से 12
- सीनियर वर्ग (कक्षा नौवीं से ग्यारहवीं): सभी अध्याय (अध्याय 1–19)

1 विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत का योगदान (प्राचीन काल से वर्तमान तक)

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास मानव सभ्यता के उत्थान को महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। प्राचीन काल से ही भारत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विकास यात्रा में अपना योगदान दिया है। वर्तमान में, जिसे हम 'परंपरागत ज्ञान' कहते हैं असल में उसका आधार पूर्णतः वैज्ञानिक है।

स्वतंत्रता पूर्व

भारत में वैज्ञानिक खोजों और विकास का इतिहास वैदिक काल से आरंभ होता है। वैदिक काल के प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट्ट ने 'शून्य' की खोज की थी। ऐसा माना जाता है कि भारतीय विद्वानों ने ज्यामितिय,प्रमेयों को विकसित कर लिया था जिन्हें बाद में पायथागोरस ने प्रसिद्धि दिलाई। वैदिक साहित्य की मदद से वर्गों, आयतों, वृत्तों, त्रिभुजों, भिन्नों और उन्हें दस से लेकर बारह की घात के रूप में प्रदर्शित करने संबंधी संकल्पना और योग्यता के विकास के साथ बीजगणितीय सूत्रों का विकास किया गया। वैदिक साहित्य से खगोलविज्ञान की भी जानकारी मिलती है। इनमें से कुछ संकल्पनाओं की जानकारी ईसा पूर्व लगभग 1500 वर्षों पहले से आरंभ हो गयी थी। हड़प्पा सभ्यता के दौरान दशमलव प्रणाली का उपयोग किया जा रहा था। इसके प्रमाण हमें उनके द्वारा उपयोग किए गए भार एवं मापन संबंधी प्रेक्षणों से मिलता है। इसके अलावा, वैदिक काल के प्राचीन हिंदू ग्रंथ ऋगवेद में खगोलविज्ञान और अध्यात्मविज्ञान (मेटाफिजिक्स) की संकल्पना की व्याख्या की गयी है।

जटिल हड़प्पा कस्बों से लेकर दिल्ली के लौह स्तंभ तक भारत की स्वदेशी प्रौद्योगिकी काफी विकसित थी। इन प्रौद्योगिकियों में जल आपूर्ति, यातायात, प्राकृतिक वातानुकूल, पत्थरों के विशाल भवन और संरचनात्मक अभियांत्रिकी संबंधी कार्यों के लिए परिकल्पना और योजनाएं शामिल थीं। विश्व में पहली बार, सिंधु घाटी की सभ्यता के अंतर्गत भूमिगत जल निकासी, नागरिक स्वच्छता, जलविद्युत अभियांत्रिकी और वातानुकूल वास्तुकला के साथ योजनाबद्ध तरीकों से कस्बों का निर्माण किया गया था। विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं में एक केन्द्रीय समूह के अंतर्गत कई छोटे कस्बे होते थे। यह सभ्यता इस बात से अलग थी कि यह अनेक कस्बों में फैलकर यूरोप के आधे आकार के बराबर के क्षेत्र तक विस्तारित थी। लगभग 3000 ईसा पूर्व से लेकर 1500 ईसा पूर्व तक यानी करीबन एक हजार वर्ष की अवधि के दौरान इस बहुविस्तारित क्षेत्र में तौल एवं भाषाई प्रतीकों का मानकीकरण भी किया गया था।

जल प्रबंधन

किसी भी सभ्यता के विकास के लिए जल एक महत्वपूर्ण घटक है। भारत में हड़प्पा काल से भी पहले जल प्रबंधन की तकनीकें विकसित थीं। लंबे समय से यहां पर उन्नत तकनीकों के द्वारा कुओं, तालाबों,

झीलों, बांधों और नहरों का निर्माण किया जा रहा था। जल का उपयोग भंडारण, पेयजल और सिंचाई संबंधी उद्देश्यों के लिए किया जाता था। एक अनुमान के अनुसार आज भी भारत में लगभग दस लाख से अधिक मानवनिर्मित तालाब और झीलें हैं।

लौह एवं इस्पात

आधुनिक सभ्यता के आधार स्तंभों में लौह और इस्पात की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में जंग रहित लौह निर्माण की प्रौद्योगिकी में भारत अग्रणी था। तत्कालीन यूरोप में तलवार निर्माण के क्षेत्र में भारत की ऐसी धातुऐं काफी प्रसिद्ध थी। उस समय की प्रौद्योगिकी की झलक हमें दिल्ली स्थित प्रसिद्ध लौह स्तंभ में मिलती है जो आज भी लगभग जंग रहित है।

खेती की तकनीक और उर्वरक

देशज तौर पर विकसित, भारतीय कृषि प्रौद्योगिकियों समय के साथ–साथ विकसित होती गयी है। इन प्रौद्योगिकियों के अंतर्गत मृदा परीक्षण तकनीकें, फसल चक्रण विधियां, सिंचाई योजना, प्रकृतिमित्र कीटनाशकों एवं उर्वरकों का उपयोग एवं फसलों की भंडारण विधियां आदि शामिल हैं।

भौतिक विज्ञान

वैदिक काल में ही परमाणु की संकल्पना अस्तित्व में आ गयी थी। पदार्थ को पांच तत्वों पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और ईथर यानी आकाश में विभाजित किया गया था। परमाणु को सबसे छोटा कण माना गया था जिसे आगे और विभाजित नहीं किया जा सकता है। आज इसी को तोड़कर नाभिकीय ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है।

आयुर्विज्ञान एवं शल्यचिकित्सा

विश्व में आयुर्वेद (आर्यु यानी जीवन और वेदा मतलब ज्ञान) चिकित्सा की सबसे पुरानी एवं व्यवस्थित पद्धति है। आयुर्वेद के आधार पर प्राचीन विद्वानों को अनेक प्रकार के तत्वों, बीमारियों, उनके लक्षणों, निदान एवं उपचार का पर्याप्त ज्ञान था। चरक एवं सुश्रुत आदि अनेक विद्वानों ने आयुर्वेद को अपने ज्ञान से समृद्ध किया।

नौपरिवहन एवं पोतनिर्माण

पोतनिर्माण भारत के मुख्य निर्यात उद्योगों में से एक था लेकिन अंग्रेजों ने इसे विघटित करके औपचारिक रूप से इस पर प्रतिबंध लगा दिया था। मध्य अरब के नाविक भारत से नावों की खरीदी करते थे। पुर्तगाली भी यूरोप से नावें नहीं खरीद कर, भारत से ही नावों की खरीदी करते थे। विश्व के सबसे विशाल और परिष्कृत जहाजों को भारत एवं चीन द्वारा निर्मित किया गया था।

यूरोप से काफी पहले हिंद महासागर में दिशासूचक यंत्र एवं अन्य नौपरिवहन के उपकरणों का उपयोग किया जाता था। आरंभिक समुद्र आधारित व्यापार व्यवस्था में भी समुद्रीयात्रा विज्ञान में भारतवासियों की विशेषज्ञता का उपयोग किया जाता था।

स्वतंत्रता पश्चात

स्वतंत्रता के बाद विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत ने सराहनीय प्रगति की। देश ने नाभिकीय एवं अंतरिक्ष विज्ञान, इलेक्ट्रानिक्स और रक्षा क्षेत्र में अहम उपलब्धियां हासिल की हैं। विश्व में वैज्ञानिक एवं तकनीकी मानवशक्ति में भारत का तीसरा स्थान है। मिसाईल प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी में, भारत विश्व के प्रमुख पांच देशों में शामिल है। आर्थिक योजना के अंतर्गत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को मुख्यधारा में शामिल करते हुए मई 1971 में, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) की स्थापना की गयी थी। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नए क्षेत्रों को प्रोत्साहित करते हुए देश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी गतिविधियों का समन्वय करने वाले केंद्रीय विभाग की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

हमारे देश के संसाधनों का उपयोग कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों के माध्यम से अधिकतम उत्पादन के लिए किया जाता है। भारतीय वैज्ञानिकों ने कृषि, चिकित्सा, जैवप्रौद्योगिकी, शीत क्षेत्र अनुसंधान, संचार, पर्यावरण, उद्योग, खनन, नाभिकीय ऊर्जा, अंतरिक्ष एवं परिवहन क्षेत्रों में अग्रगामी अनुसंधान किए हैं। खगोलविज्ञान और खगोलभौतिकी, द्रवित क्रिस्टल, संघनित पदार्थ भौतिकी, आण्विक जीवविज्ञान, विषविज्ञान एवं क्रिस्टल विज्ञान, सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी, नाभिकीय ऊर्जा एवं रक्षा अनुसंधान एवं विकास आदि विभिन्न क्षेत्रों में भारत निपुणता हासिल कर चुका है।

परमाणु ऊर्जा

भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य इसका उपयोग ऊर्जा उत्पादन में करने के अलावा कृषि चिकित्सा, उद्योग, अनुसंधान एवं अन्य क्षेत्रों में अनुप्रयोग से संबंधित है। आज भारत की पहचान नाभिकीय प्रौद्योगिकी में अतिउन्नत देश के रूप में है। अब देश में ही त्वरित्रों और नाभिकीय ऊर्जा रिएक्टरों की परिकल्पना एवं निर्माण किया जा रहा है।

अंतरिक्ष

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) विश्व का छठा प्रमुख अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन है। सन् 1969 में इसकी स्थापना के बाद से ही इसने अनेक उपलब्धियां हासिल की हैं। भारत के पहले उपग्रह 'आर्यभट्ट' का निर्माण इसरो द्वारा सन् 1975 में किया गया था। इसके बाद इसरो ने अनेक उपग्रहों का निर्माण किया। सन् 2008 में चंद्रयान–प्रथम भारत का चंद्रमा पर जाने वाला पहला मिशन बना। अंतरिक्ष विभाग के अंतर्गत कार्यरत भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) उपग्रह संचार, संसाधनों के सर्वेक्षण के लिए सुदूर संवेदन, पर्यावरण निगरानी, मौसमी सेवाओं आदि के माध्यम से अंतरिक्ष संबंधी शोध, विकास एवं संचालन के लिए उत्तरदायी है। भारत तीसरी दुनिया के देशों में पहला ऐसा देश है जिसके पास अपना सुदूर संवेदन उपग्रह है।

इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी

इलेक्ट्रॉनिक्स के विकास सहित सामाजिक–आर्थिक विकास में इलेक्ट्रॉनिक्स के उपयोग में इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग की अहम भूमिका है। कृषि, स्वास्थ्य और सेवा क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक्स के अनुप्रयोगों ने विशेष योगदान दिया है। इसके अंतर्गत स्वदेशी निर्माण उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार के लिए परीक्षण एवं विकास केंद्रों और क्षेत्रीय प्रयोगशालाओं की स्थापना की गयी है। इलेक्ट्रॉनिक्स अभिकल्पना और

प्रौद्योगिकियों के ऐसे केंद्रों ने छोटे और मध्यम आकार की इलेक्ट्रॉनिक्स इकाईयों की काफी सहायता की है। भारतीय अर्थव्यवस्था में सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) एक बहुत ही महत्वपूर्ण उद्योग है। भारत के आईटी उद्योग ने पिछले कुछ वर्षों के दौरान काफी उन्नति की है। भारत का आईटी उद्योग सन् 1990/91 के दौरान जहां करीबन 15 करोड़ अमेरिकी डॉलर का था वहीं सन् 2006/2007 में इसमें काफी वृद्धि दर्ज की गयी और तब यह करीबन 500 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया था। पिछले दस वर्षों के दौरान भारत के आईटी उद्योग की औसत वृद्धि दर लगभग 30 प्रतिशत रही है।

समुद्रविज्ञान

भारत के पास 7600 किलोमीटर से अधिक विस्तारित तटरेखा एवं 1250 द्वीप है। सन् 1981 में महासागर विकास विभाग की स्थापना की गयी जिसके माध्यम से जैविक स्रोतों सहित हाइड्रोकार्बनों और खनिजों जैसे अजैविक स्रोतों एवं महासागरीय ऊर्जा के अधिकतम उपयोग को सुनिश्चित किया जा सका है। दो अनुसंधान वाहिकाओं सागर कन्या और सागर संपदा संसाधन संभावना का मूल्यांकन कार्य कर रही हैं। सर्वेक्षण एवं अन्वेषण प्रयासों के द्वारा समुद्री तलीय स्थलाकृति और खनिज पिंडों की सांद्रता एवं गुणवत्ता का आकलन किया जाता है। भारत ने सन् 1981 से अंटार्कटिका पर 13 वैज्ञानिक अनुसंधान अभियानों को भेजा है और दक्षिण गंगोत्री नाम से वहां मानवयुक्त आधार तैयार किया है। दूसरी मानवयुक्त आधार को पूरी तरह से स्वदेशी प्रयासों की तहत विकसित किया गया है जिसके तहत आठ अभियानों को पूर्ण किया जा चुका है। इन अभियानों का उद्देश्य ओजोन आवरण का अध्ययन करने सहित अन्य महत्वपूर्ण घटकों जैसे प्रकाशीय ऊषा (ऑप्टिकल अरोरा), भूचुबंकीय स्पंदन और अन्य संबंधित परिघटनाओं पर शोध कार्य करना है।

महासागर संबंधित प्रौद्योगिकीयों के विकास के लिए राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान की स्थापना की गयी है।

जैवप्रौद्योगिकी

विकासशील देशों में भारत जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ऐसा अग्रणी देश है जो इस क्षेत्र में बहुविषयक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के साथ ही जैवप्रौद्योगिकी के अनुप्रयोगों के द्वारा कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की असीमित संभावनाओं की पहचान करने के साथ, मानव एवं जीवों के जीवन को उन्नत बनाने की दिशा में कार्यरत है। सन् 1982 में जैवप्रौद्योगिकी बोर्ड की स्थापना की गयी थी। सन् 1986 में जैवप्रौद्योगिकी विभाग को स्थापित किया गया। मवेशियों में भ्रूण स्थानांतरण तकनीक, रोगों के खिलाफ प्रतिरोधता, अधिक उपज देने वाली फसलों की प्रजातियों और अनेक बीमारियों से बचाव के लिए टीकों के विकास ने जैवप्रौद्योगिकी की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया है।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्

सन् 1942 में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सीएसआईआर) की स्थापना की गयी थी। आज यह संस्थान देश में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान का एक प्रमुख संस्थान है। इसके अंतर्गत 40 प्रयोगशालाएं, दो सहकारी औद्योगिक अनुसंधान संस्थान और 100 से भी अधिक विस्तार एवं क्षेत्रीय केन्द्र कार्यरत है। परिषद् सरकार द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी मिशन को पूर्ण करने की दिशा में अग्रणी भूमिका का निर्वाह कर रही है।

***

2 भारत में खगोलिकी

भारतीय खगोलिकी का आरंभः

और वास्तव में वैसा कुछ जैसे हमेशा खगोलिकी की कहानी शुरू होती है। भारत में खगोलिकी से जुड़ी इस शुरुआत को पर्याप्त रूप से लिपिबद्ध नहीं किया गया है। पहले खगोलीय पिंड जो अंडमान में कुछ 12000 साल पहले पाए गए थे, वे पैलिओलिथिक युग से संबंधित हैं और वे कैलेंडर स्टिक हैं जिसमें लकड़ी की एक छड़ी पर दैनिक खांचे का चीरा लगाने के द्वारा चंद्रमा के घटाव और बढ़ाव को दर्ज करते हैं।

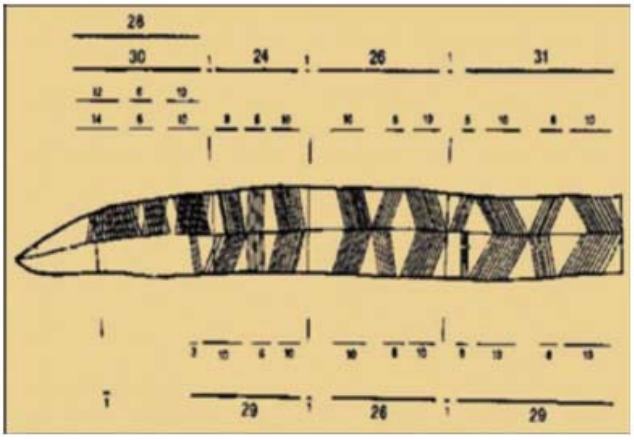

अंडमान द्वीप में पाई गई एक कैलेंडर स्टिक, जो अनेक महीनों के दौरान चंद्रमा की कलाओं को स्पष्ट रूप से दर्ज करता है।

*एक चंद्र मास की अवधि में चंद्रमा के छल्ले की स्पष्ट घटत और बढ़त, पूर्णिमा से अमावस्या और पुनः पूर्णिमा।

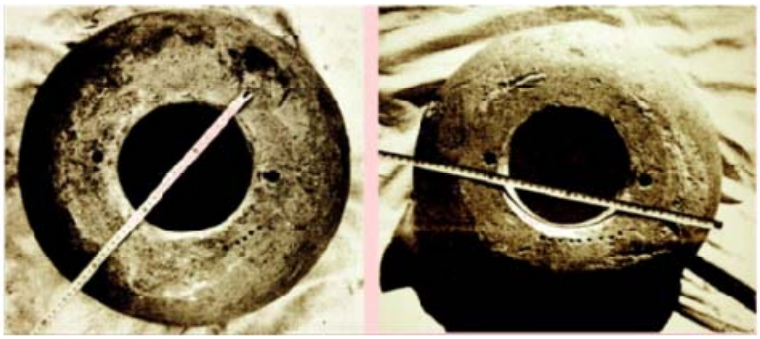

मोहनजोदड़ो में पाए गए छोटे ड्रिल हुए छिद्रों की कतारयुक्त छल्ले के आकार वाले पत्थर जो वर्ष भर में सूर्यास्त के बिंदु को प्रदर्शित करते हैं।

कश्मीर में पायी जाने वाली शैल कला जैसे कि दोहरा सूर्य (डबल सन) या संकेंद्री वृत्तों को कुछ विद्वान मानते हैं कि ये कुछ 7000 साल पहले संभवतः घटित सुपरनोवा और उल्कापात को प्रदर्शित करते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता (2600 से 1900 ईसा पूर्व) के सबसे बड़े नगर मोहनजोदड़ो में पाए गए छल्लेदार पत्थर जो छोटे ड्रिल हुए छिद्रों को प्रदर्शित करते हैं, जिन्हें वर्ष के विभिन्न काल खंडों में सूर्योदय का पता लगाने हेतु कैलेंडर युक्तियों के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। एक ही नगर में गलियों के सटीक पूर्व पश्चिम संरेखण को तारा समूह (कृतिका) के अवलोकन से जोड़कर देखा जाता रहा है। वैसे उक्त कथन कल्पित रहता है, यह सुचिह्नित होता है कि सभी जगह के प्राचीन काल के लोग आकाशीय पिंडों के लय से सामंजस्य बैठाकर उसे ब्रह्मांड से जोड़ने की आवश्यकता को महसूस करते थे।

कुछ हजार साल पहले, चारों वेदों में सबसे पुराने ऋग्वेद में 360 दिनों के एक वर्ष का उल्लेख है। इस अवधि को बाढ़ समान भागों में विभाजित किया गया है और पांच वर्ष के युग (एरा) का प्रयोग किया गया था, संभवतः चंद्र और सौर वर्षों के सामंजस्य का यह पहला प्रयास था (उन पांच वर्षों के बाद एक महीने के योग द्वारा)। इसमें स्पष्ट रूप से सूर्य ग्रहण का उल्लेख दर्ज है, यद्यपि कि यह रूपकात्मक भाषा में है और यह हालही में प्रस्तावित किया गया है कि 3339 ईश्वरों का उल्लेख वास्तव में ग्रहणों के 18 वर्ष के चक्र का एक संदर्भ था जिसे सारोस कहते हैं। यदि ऐसा है तो खगोलीय अवलोकन की यह बहुत आरंभिक परंपरा की ओर इशारा करता है। कुछ सदियों के बाद, यजुर्वेद में 354 दिनों का एक चांद्र वर्ष और 365 दिनों का एक सौर वर्ष माना गया था तथा वर्ष को छः ऋतुओं या दो महीने के प्रत्येक मौसम में विभाजित किया गया था। यजुर्वेद में 27 नक्षत्रों या चंद्र घरों की पहली सूची दी गई है जो कि आकाशीय वृत्त पर चंद्रमा के पथ के संगत तारा समूह है।

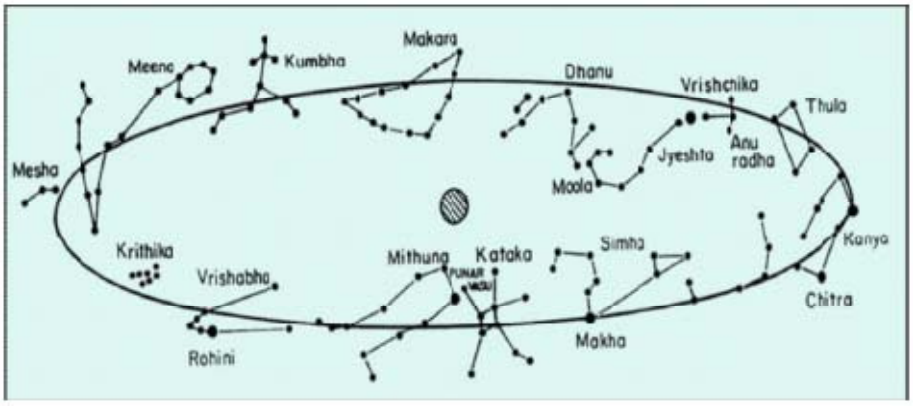

केंद्र में पृथ्वी के साथ 27 नक्षत्र (आभारः एम. एस. श्रीराम)

रश्मों के उचित निर्वाह के लिए समय निर्धारण की आवश्यकता हेतु कैलेंडर विधि वाली खगोलिकी का विकास अधिक प्रबुद्ध तरीके से उत्तर वैदिक अवधि में हुआ। ऐसा लगाध के वेदांग ज्योतिष के प्रतिनिधि पाठ (और यदि हम इसे पहला विद्यमान भारतीय वैज्ञानिक पाठ कहें) के साथ हुआ था। इसके स्वयं के खगोलीय आंकड़ों के आधार पर अधिकांश विद्वानों के द्वारा इसकी अवधि बारहवीं और चौदहवीं सदी ईसा पूर्व के बीच मानी जाती है। निरयन दिवस की लंबाई (अर्थात किसी भी तारे के सापेक्ष पृथ्वी के एक सम्पूर्ण घुर्नान्में लगने वाला समय) में 23 घंटा 56 मिनट और 4.6 सेकंड का समय लगता है, जबकि इसका सही मान 23 घंटा 56 मिनट और 4.091 होता है। इन दोनों मानों में इस सूक्ष्म अंतर का कारण आरंभिक युग में पहुंची सटीकता का सूचक है। वेदांग ज्योतिष, अयनांत और विषुव की भी चर्चा करता है तथा सौर कैलेंडर सहित दो अधिकमास का प्रयोग भी करता है।' एक प्रकार से यह पाठ भारत के परंपरागत चांद्र सौर कैलेंडरों के लिए मूल आधार बने हैं।

*सौर वर्ष में लगभग 365.24 सौर दिन होते हैं, चांद्र वर्ष में अधिक से अधिक 360 दिन। कुछ वर्षों के बाद, इन दोनों के बीच का अंतर इतना बढ़ जाएगा कि दो प्रणालियों के मध्य एक व्यापक संयोग की पुनर्स्थापना के लिए चांद्र वर्ष में एक महीने का समय जोड़ने की आवश्यकता होगी। यह अधिकमास होता है।

आरंभिक ऐतिहासिक अवधिः

तीसरी सदी ईसा पूर्व से लेकर पहली सदी ईस्वी के बीच दूसरी अवधि का विस्तार था और यह ग्रहों के उगने व डूबने, उनके घूर्णन आदि पर आधारित खगोलीय संगणना द्वारा चिह्नित था। इस अवधि में, जैन खगोलिकी का भी विकास हुआ था जो कि 27 नक्षत्रों के दो सेट, दो सूर्य और दो चंद्रमाओं के एक विशेष माडल पर आधारित था। हालांकि यह कैलेंडर गणना में कभी प्रतिफलित नहीं हुआ।

यह भी वाही अवधि है, जब समय के विशाल पैमाने 4.32 अरब के 'ब्रह्म दिवस' (या कल्प) के रूप में अभिकल्पित किए गए थे जो जिज्ञासापूर्वक पृथ्वी की आयु के निकट (4.5 अरब वर्ष) पहुंचता है। वास्तव में अधिक लम्बे समय के पैमाने जैन पाठों और पुरानों में पाए जाते हैं।

कुछ विद्वानों ने इस अवधि और आगे की अवधियों के दौरान बेबीलोन और ग्रीक के प्रभाव की बात पर बल दिया है। यद्यपि यह मुद्दा अभी पूरी तरह उद्घाटित नहीं है। हालांकि इस प्रकार का प्रभाव कुछ सदी ईसा पूर्व (उत्तर वैदिक भारत में महीने को केवल दो चांद्र पखवाड़ों या पक्षों, एक प्रकाशमय और दूसरा अंधकारमय में बांटा जाता था) सात दिवस वाले सप्ताह का आरंभ पर्याप्त तौर पर स्पष्ट प्रतीत होता है और 12 चिह्नों (राशि) वाले ज्योतिष चिह्न को सर्वप्रथम यवनजातक (269 ईस्वी) में दर्ज किया गया था।

सिद्धांतिक युगः

उपरोक्त अवधि के बाद हमारे ज्ञान में अनेक अंतराल दिखाई पड़ते हैं और यह उस शुरुआत के पहले की अवधि थी जिसे भारतीय गणित खगोलिकी का स्वर्णिम युग कहलाता है। पांचवीं सदी ईस्वी के आरंभ में इसे सिद्धांतिक युग कहा जाता है जब सिद्धांत नामक पाठ लिखे गए थे। यह संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'सिद्धांत' या 'निष्कर्ष' होता है, परन्तु यहां पर इसका आशय निष्कर्षों का एक संग्रह या एक ग्रंथ है। उनकी मुख्य विशेषताएं ग्रहीय स्थितियों की संगणना के लिए त्रिकोणमितिय विधियों और इपिसाइक्लिक माडलों का प्रयोग थीं।

*क्योंकि वे भूकेंद्रिक प्रणाली का प्रयोग कर रहे थे, अस्तु आरंभिक ग्रीक और भारतीय खगोलशास्त्री ग्रहों की आकस्मिक रिट्रोग्रेड गति (जैसा कि पृथ्वी से प्रतीत होता है) की व्याख्या नहीं कर सके थे, उन्होंने मान लिया था कि गृह छोटी कक्षाओं के साथ घूर्णन करते थे जिन्हें इपिसाइकल कहते थे, जिनके केन्द्र बड़े वृत्तों (ग्रहों की माध्य कक्षाएं) के साथ पृथ्वी के परितः घूमते थे।

आर्यभट प्रथम (जन्म 476 ईस्वी) उस जगह पर कार्य करते थे जहां वर्तमान में पटना स्थित है, उनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण उस युग को आर्यभटीय कहते हैं। यह युग संक्षेप में परंतु क्रमिक रूप से गणित और खगोलिकी के विकास की आख्या प्रस्तुत करता है। अन्य बातों के अलावा, इसमें समय की इकाइयों और आकाशीय पिंडों की विशेषताओं की चर्चा भी की गई थी। इसमें पृथ्वी को अंतरिक्ष में एक घूर्णनशील गोले के समान वर्णित किया गया है औत ग्रहों की माध्य स्थितियों की एक तालिका भी बनाई गई है। आर्यभट ने चंद्र और सूर्य ग्रहणों की सही व्याख्या भी दी थी और पृथ्वी का व्यास 1050 योजन (योजन को 8000 औसत मानव उंचाई या लगभग 13.6 किलोमीटर) बताया था। यह वास्तविक विमा के करीब यद्यपि 12 प्रतिशत बड़ा ठहरता है (ग्रहों और सूर्य के लिए उनके द्वारा दिए गए व्यास हालांकि अत्यंत छोटे हैं)।

उनके बाद अनेक प्रतिभाशाली खगोलशास्त्री हुए जिन्होंने निर्देशांक प्रणालियों, काल मापन एवं विभाजन, आकाशीय पिंडों की माध्य व वास्तविक स्थितियों ततः ग्रहणों जैसे मुद्दों पर अपने विचार रखे थे।

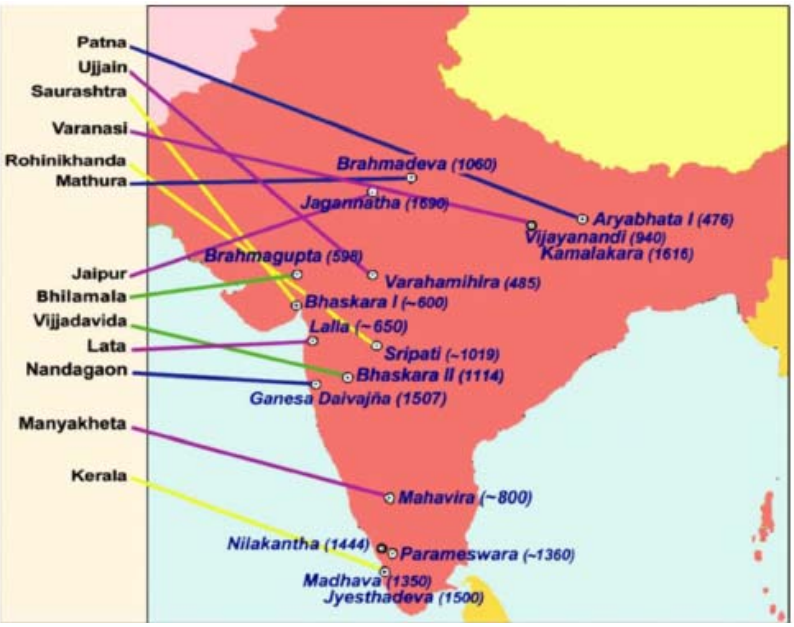

भारत के खगोलशास्त्रियों और गणितज्ञों को दर्शाता हुआ एक मानचित्र। उनकी जन्म तिथियां, जन्म स्थान या उनके कार्य प्रायः अनुमानित हैं। ध्यान दें कि बोधायन (600 ईसा पूर्व) से श्रीधर (800) या आर्यभट द्वितीय (950) जैसे अनेक नाम इस मानचित्र पर साधारणतः दर्ज नहीं किए जा सकते हैं क्योंकि उनकी स्थितियों का जिक्र किसी पाठ में नहीं मिलता है (आभारः माइकल डेनिनो, विभिन्न स्रोतों से संकलित)।

आर्यभट के समकालीन रहे वराहमिहिर ने 505 ईस्वी में पांच खगोलीय पाठों का सृजन किया था जो उनकी समय अवधि के दौरान प्रभावी हुआ था। उन पंचों में से एक पाठ सूर्य सिद्धांत था जिसे बाद में संशोधन किया गया और भारतीय खगोलिकी का यह एक आधारभूत पाठ बना। दो अन्य पाठों में ग्रीक खगोलिकी के सिद्धांतों की व्याख्या की गई थी। वाराहमिहिर ने ग्रहों के घूर्णन, ग्रहणों और राशियों (प्रायः ज्योतिष पृष्ठभूमि के साथ) विस्तृत रूप से चर्चा की थी। आर्यभट प्रथम के सबसे पहले ज्ञात प्रतिनिधि भास्कर प्रथम (जन्म 600 ईस्वी) ने परिवर्धित गणना विधियों के अतिरिक्त आर्यभट की खगोलिकी के संबंध में एक बेहद उपयोगी व्याख्या प्रस्तुत की थी)।

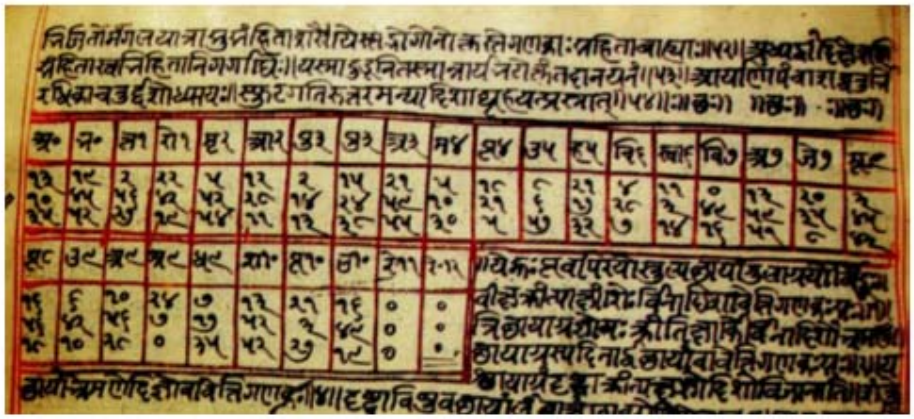

ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मगुप्त सिद्धांत पाण्डुलिपि से लिया गया एक अनुच्छेद (आभारः बांबे विश्वविद्यालय पुस्तकालय)

कुछ वर्षों बाद, ब्रह्मगुप्त (जन्म 598 ईस्वी) जो माउंट आबू के पास रहते थे, उन्होंने पृथ्वी को एक घूर्णनशील गोले के तौर पर दिए गए आर्यभट के विचार का खंडन भूलवश कर दिया था। परंतु उन्होंने ग्रहों के माध्य एवं वास्तविक देशान्तरों की गणनाओं, संयोगों और चंद्र व सूर्य ग्रहणों से जुड़ी समस्याओं के संबंध में अत्यंत योगदान दिया था।

*आकाशीय पिंड (ग्रह या तारा) का आकाशीय देशान्तर उस मापे गए सूर्य पथ का चाप होता है जो पूर्व में महाविषुव से उस बिंदु पर स्थित होता है जो पिंड से होकर गुजरने वाले महावृत्त द्वारा प्रतिच्छेदित होता है (सूर्य पथ, पृथ्वी के अक्ष का ताल होता है)। माध्य देशान्तर एक औसत मान को संदर्भित करता है जो कि पिंड की औसत स्थिति होती है जबकि 'वास्तविक देशान्तर' दिए गए समय पर इसकी वास्तविक स्थिति को प्रकट करता है।

भारतीय खगोलशास्त्री खगोलीय अवलोकन की एक सशक्त परंपरा के बिना बहुत कुछ हासिल नहीं कर सके थे और ब्रह्मगुप्त की महान कृति ब्रह्मगुप्त सिद्धांत का बाइसवां अध्याय विविध खगोलीय यंत्रों का वर्णन करता है, जिनमें से अधिकांश यंत्रों को किसी भी अच्छे कारीगर या शिल्पी के द्वारा आसानी से बनाया जा सकता है। उन यंत्रों में से एक वाटर क्लाक (घड़ी यंत्र) जिसमें एक कटोरा और उसकी तली में एक छोटा छिद्र होता है, जो ठीक 24 मिनट (एक घाटी) में डूब जाता है, यदि इसे पानी के ऊपर रखा जाता है, एक ग्नोमन (एक छोटी छड़ी जिसकी छाया की गति का अध्ययन करने के लिए इसे उर्ध्व रखा जाता है), एक अंशांकित चकती या अर्ध चकती और एक कैंची सदृश जोड़ा जो एक कुतुबनुमा (कम्पास) की तरह कार्य करता है। वे यंत्र और उन पर प्रयुक्त गणना तकनीकों को बाद के विद्वानों द्वारा अपनाया गया था तथा इसका आरंभ आठवीं सदी के लाला द्वारा किया गया था।

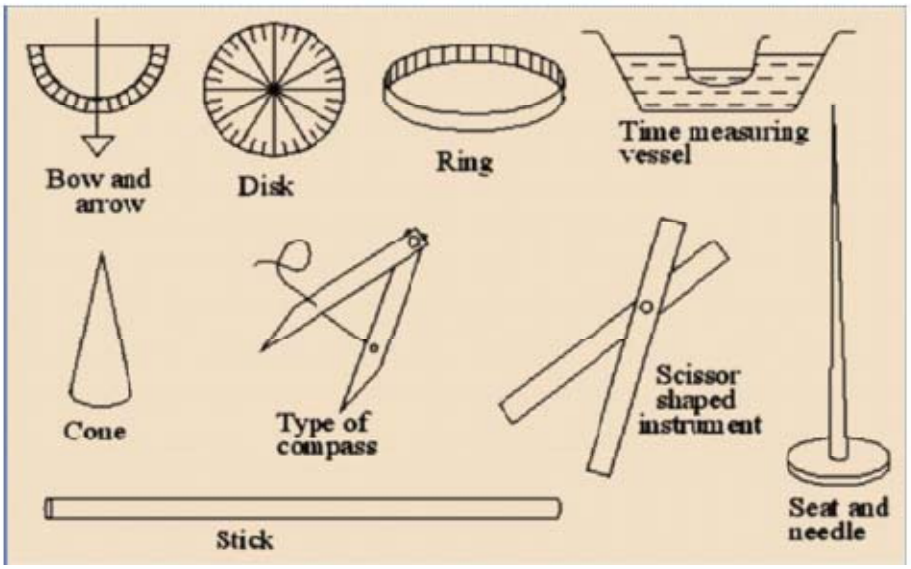

खगोलीय अवलोकनों के लिए लाला द्वारा वर्णित कुछ यंत्र (आभारः शेखर नार्वेकर)।

ब्रह्मगुप्त ने भी खगोलीय गणनाओं पर एक मैनुअल लिखा था जो सदियों तक लोकप्रिय बना रहा। इसे अल बरुनी ने प्रमाणित किया था। अल बरुनी एक पारसी विद्वान थे जो ग्यारहवीं सदी में भारत आए थे और वे महमूद गजनी के परिजनों का हिस्सा थे। उनकी भारतीय खगोलीय तकनीकों में अगाध रूचि थी, उन्होंने इन पर कई रचनाएँ भी लिखी थीं और वाराहमिहिर व ब्रह्मगुप्त के पाठों को अरबी या फारसी में अनुवाद भी किया था।

भास्कर द्वितीय (जन्म 1114) जिन्हें बेहतर रूप में भास्कराचार्य के नाम से जाना जाता है, उन्होंने खगोलीय और गणितीय दोनों की तकनीकों में महत्वपूर्ण नवाचार किए, ग्रहों की माध्य व वास्तविक स्थितियों, समय की तिहरी समस्या, दिशा व स्थान ग्रहों के उगने एवं डूबने और संयोगों, ग्रहों की गतियों हेतु उत्केंद्री एवं इपिसाइक्लिक सिद्धांत तथा बड़ी संख्या में खगोलीय यंत्रों पर विशेष रूप से चर्चा किया था। समग्र तौर पर भास्कराचार्य ने आरंभिक भारतीय खगोलशास्त्रियों द्वारा अपनाए गए सूत्रों और विधियों में व्यापक रूप से सुधार किए थे।

1128 ईस्वी का शिलालेख जो राजा रत्नदेव द्वारा खगोलशास्त्री पद्मनाभ को एक पूर्ण चंद्र ग्रहण का पूर्वानुमान करने के लिए एक गांव दान में देने की घोषणा को दर्ज करता है। 440 से 1859 ईस्वी के बीच ऐसे लगभग 350 शिलालेखों का पता लगाया गया है (आभारः बी. वी. सुब्बरायप्पा)।

उन सदियों के दौरान खगोलिकी का आम जन की ओर जुड़ाव अधिकांशतः कैलेंडर, पंचांग और ग्रहणों के पूर्वानुमान के माध्यम से बना रहता था। इन सबका महत्वपूर्ण धार्मिक और सामाजिक महत्व था। वास्तव में, एक खगोलशास्त्री की प्रसिद्धि प्रमाणित होती थी यदि वह सटीकता के साथ ग्रहणों की घटना, प्रकृति व अवधि का पूर्वानुमान कर सकता था। ऐसे खगोलशास्त्री को राजा के द्वारा सम्मानित करने के अनेक उल्लेख शिलालेखों में पाए जाते हैं। एक अन्य जुड़ाव वास्तुशास्त्र था और अनेक मंदिर अयनांतों और विषुवों पर सूर्योदय जैसी घटनाओं के सापेक्ष स्पष्ट खगोलीय संयोगों को दर्शाते हैं।

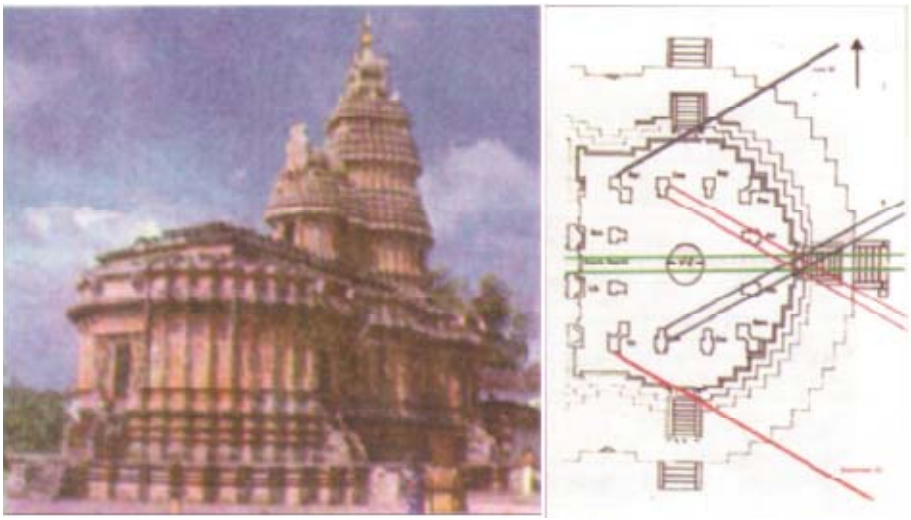

श्रृंगारी मंदिर जिसका मंडप बाढ़ राशियों या ज्योतिष के चिह्नों को समर्पित है, इसके कुछ स्तंभ दो अयनांतों पर सूर्योदय से संरेखित हैं (आभारः बी. एस. शैलजा)।

केरल स्कूलः

यह व्यापक विश्वास कि भास्कर द्वितीय के बाद भारतीय खगोलिकी और गणित के क्षेत्रों में वास्तविक रूप से कोई प्रगति नहीं हुई, यह दक्षिण राज्य केरल में घटित तीव्र विकास के सामान्य नजरअंदाज पर आधारित है। तथाकथित खगोलिकी और गणित का केरल स्कूल में चौदहवीं से लेकर सत्रहवीं सदी में पुष्पित पल्लवित हुआ था जब उत्तर भारत में ज्ञान संचार के नेटवर्क कई बार हमलों के कारण बुरी तरह नष्ट हो गए थे।

परमेश्वर (1362–1455 ईस्वी) जो कि कुछ तिस किताबों के लेखक रहे हैं, इस स्कूल के आरंभिक खगोलशास्त्रियों में से एक थे एवं डीआरके प्रणाली के संस्थापक थे और इस प्रणाली ने ग्रहणों एवं ग्रहों की स्थितियों की गणनाओं में सुधार लाया तथा यह बहुत लोकप्रिय साबित हुआ था। उन्होंने नियमित से सही सूत्रों को वास्तविक अवलोकनों के निकट लाने की जरूरत पर बल दिया था और अनेक वर्षों की अवधि के दौरान ग्रहणों और उनके मापदंडों का अध्ययन किया था। वे नीलकंठ सोमायाजी (1444–1545 ईस्वी) के बाद इस क्षेत्र में आए थे। सोमयाजी ने अपने मील के पत्थर समान कृति 'तंत्र संग्रह' में बुध और शुक्र जैसे लघु ग्रहों के लिए पुरानी भारतीय गृह संबंधी माडल में व्यापक संशोधन किया तथा उनकी व्याख्या सूर्य के परितः संकेंद्री कक्षाओं में घूमने वाले ग्रहों मंगल या कुजा, बृहस्पति या गुरु व शनि के साथ की थी। यूरोप में सूर्य केन्द्रिक सिद्धांत के प्रतिपादक कापरनिकस (1473–1543) से पहले नीलकंठ ने इस तथ्य को सामने रखा था, इस दृष्टि से खगोलिकी से संबंधित केरल स्कूल की उपलब्धि सचमुच उल्लेखनीय है। हालांकि यह असंभावित प्रतीत होता है, परंतु भारतीय सूर्यकेंद्रिकवाद ने इस क्षेत्र में यूरोपीय प्रगति को सीधे तौर पर प्रभावित किया था।

अन्य उत्तर सिद्धांतिक विकासः

लगभग उसी समय इस्लामिक खगोलिकी के साथ एक जटिल झुकाव की घटना हुई, जिसके अन्य लाभों में एक लाभ यंत्रों के मामले में हुआ जैसे कि भारत में एस्ट्रोलेब (खगोलीय यंत्र) का प्रवेश हुआ था। प्रसिद्ध व व्यापक यन्त्र मंत्र या जंतर मंतर अवलोकन जो कि जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (**1688–1743**) के द्वारा अट्ठारहवीं सदी के आरंभ में किया गया था, वह भारतीय, अरबी और यूरोपीय खगोलिकी को प्रस्तुत करता है।

आमतौर पर भारतीय खगोलशास्त्री सैद्धांतिक माडलों की अपेक्षा गणना की सक्षम विधियों में अधिक रूचि लेते थे। ग्रह संबंधी स्थितियों और ग्रहणों की गणना के लिए प्रयुक्त कुछ तकनीकों से उल्लेखनीय रूप से सटीक परिणाम आए थे तथा उनकी गति से ली जेंतिल नामक यूरोपीय

खगोलशास्त्री तक बेहद प्रभावित हुए थे। जेंतिल एक फ्रांसीसी विद्वान थे जो जून 1769 में शुक्र पारगमन के अवलोकन के उद्देश्य से पुदुचेरी में दो साल ठहरे थे।

नई दिल्ली स्थित जंतर मंतर के दो –श्य (आभारः माइकल डेनिनो)।

यद्यपि परंपरागत तालिकाओं और यहां तक कि गणना विधियों का भली भांति अस्तित्व उन्नीसवीं सदी में रहा था (उड़िया खगोलशास्त्री सिमांत चंद्रशेखर सिन्हा के मामले का प्रमाण लें जो कि यूरोपीय

खगोलिकी से एकदम अछूता थे और 1869 में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत की रचना की थी), आधुनिक खगोलिकी का आरंभ इस विज्ञान में भारत के स्वयं के विकास को और अधिक नजदीक लाने का काम किया था। लेकिन भारत ने अनेक प्रकार से नए विज्ञान के विकास में अपना अहम योगदान दिया था, जैसे कि भारतीय खगोलशास्त्रियों और गणितज्ञों के द्वारा विकसित कुछ तकनीक अरबों के माध्यम से यूरोप तक सदियों पहले पहुंचे थे। वास्तव में भारतीय खगोलिकी ने न केवल इस्लामिक (या जिज) और यूरोपीय खगोलशास्त्रों से संवाद स्थापित किया बल्कि जटिल परस्पर क्रियाओं में चीनी खगोलिकी से भी सहचरी बनाया जिससे दोनों पक्षों की समान रूप से अभिवृद्धि हुई थी।

3 भारत में रसायन विज्ञान - एक सर्वेक्षण

रसायन विज्ञान, जैसा कि इसे हम आज समझते हैं, यह अपेक्षाकृत एक नए अध्ययन का विस्तार है, इसने यूरोप में कीमियाई परंपरा के पनपने के पश्चात 18वीं सदी में आकार लेना शुरू कर दिया था, जिसे आंशिक रूप से अरबों से अनुकरण किया गया था। (कीमिया एक अर्द्ध–गूढ़ अभ्यास था जिसका उद्देश्य मूल धातुओं को सोने में बदलना था और 'जीवन के उत्थान' की खोज करना, जो चिर स्थाई रहने वाली होंगी।) यद्यपि अन्य संस्कृतियां, विशेष रूप से चीनी और भारतीयों के पास स्वयं की कीमियाई परंपराएं थीं, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाओं और तकनीकों का अधिकतम ज्ञान समाहित था।

आरंभिक रासायनिक तकनीक

भारत में, हम सिंधु घाटी सभ्यता (तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व) और इसके पूर्ववर्ती काल खंडों में इस तरह की तकनीकों की जड़ें खोज सकते हैं। भारत में धातु विज्ञान के माड्यूल में हड़प्पावासियों के धातु सम्बन्धी कौशल का वर्णन किया गया है। ऊष्मा (हीटिंग), संलयन और वाष्पीकरण जैसी प्रक्रियाओं के नियंत्रण से बर्तनों का निर्माण (पाटरी) किया जाता था। मनका निर्माण की प्रक्रिया में खनिजों की ब्लीचिंग सहित जटिल उपचार शामिल थे, जिसमें मोती पर स्थायी सफेद डिजाइन उकेरने के लिए कैल्शियम कार्बोनेट के मिश्रण में मोती को डालकर भट्टी में गर्म किया जाता था।

हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त एक ब्लीच किया हुआ मनका (आभारः जे. एम. केनोएर)

अन्य अवयवों में से जले हुए चूने और जिप्सम से बने विभिन्न मोर्टार और सीमेंट के साथ भी हड़प्पा सभ्यता के लोग प्रयोग करते थे। बारीकी से कुचले या कर्ष किए गए क्वार्ट्ज, एक बार जलाये

गए, मिट्टी के बर्तन को चमकाकर बनाए गए एक कृत्रिम पदार्थय इस उत्पाद को फिर सिलिका (शायद सोडा से संलयित) के साथ लेपित किया जाता था, जिसे तांबा ऑक्साइड के मिश्रण में फिरोजा को मिलाकर चमकाया जाता था। बर्तन को चमकाकर फिर गहने या मूर्तियों की शक्ल में ढाला जाता था। आयरन ऑक्साइड के समावेश से चमकीले मिट्टी के बरतन को हरा नीला रंग दिया जाता था जबकि मैंगनीज ऑक्साइड फलस्वरूप मैरून रंग प्रदान करता था।

ऐसी तकनीक सिंधु सभ्यता के अंत तक बची रही और उत्तरवर्ती गंगा सभ्यता (प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व) में अपनी जगह तलाशती रही, प्रायः नवाचारों के साथ। उदाहरण के लिए, ग्लास निर्माण के क्षेत्र में, दक्षिण में अरिकामेडु तथा उत्तर–पश्चिम में तक्षशिला के नालंदा से कांच के अनेक मनकों और अन्य कलाकृतियों के साक्ष्य मिले हैं।

बर्तन के चमकाने से बनाई गई एक हड़प्पाकालीन चूड़ी

कुशल रासायनिक अभ्यास के लिए रंजक (पिग्मेंट) एक अन्य क्षेत्र था और इनकी आवश्यकता चित्रकला (अजंता के प्रसिद्ध भित्ति चित्र के प्रमाण) साथ ही साथ कपास और अन्य कपड़ों की रंगाई में होती थी। कौतुहल का विषय यह है कि रंजकों के स्रोत कार्बनिक सामग्री (जैसे विशिष्ट फूलों या फलों के निष्कर्ष) तक ही सीमित नहीं थे अपितु कार्बन (दीपक से उत्पन्न काला रंग) से लेकर आर्सेनिक खनिज स्रोत, जैसे सल्फाइड (गेरुआ रंग) या तांबा एसीटेट (नेवी ग्रीन, रंग में) के खनिज शामिल थे।

वैसेसिका में परमाणुवाद

हालांकि इसका वास्तविक रसायन विज्ञान में रूपांतरित नहीं किया गया था, यहां पर परमाणुवाद की भारतीय अवधारणा का संक्षिप्त उल्लेख प्रासंगिक है। परमाणुवाद या वह अवधारणा, जिसमें कि कोई पदार्थ अंततः अविभाज्य अवयवों से मिलकर बनता है, भारत में कुछ ईसा पूर्व एक दार्शनिक अनुमान के हिस्से के तौर पर विकसित हुई थी, संज्ञान में आये इस गतिविधि को लेकर काफी दार्शनिक अटकले थी, विशेष रूप से वैसेसिका में, जो प्राचीन भारत की छह दार्शनिक प्रणालियों में से एक मानी जाती है। वैसेसिका सूत्र के लेखक कनड़ा (शाब्दिक रूप से 'कणों को खाने वाला') के रूप में जाना जाने लगा और वह 500 ईसा पूर्व के बाद किसी समय रहते थे। इस प्रणाली में, सभी पदार्थ छोटी इकाइयों के एक संग्रह के रूप में दिखाई देते हैं जिसे परमाणु (अणु या परमाणु) के नाम से जाना गया, जो शाश्वत, अविनाशी, गोलाकार, सुप्रा–सेंसिबल और प्राथमिक स्थिति में गतिमान थेय वे जोड़ों में, तीन गुना और अन्य संयोजनों के साथ–साथ तथा अदृश्य ताकतों द्वारा आपस में पारस्परिक रूप से संलयित भी थे। वैसेसिका प्रणाली में नौ प्रकार के पदार्थ (द्रव्य) की पहचान की गई थीः (1 से 5) पांच तत्व (पृथ्वी, पानी, आग, वायु या आकाश), (6) समय (काल), (7) अंतरिक्ष या दिशा (दिक्), (8) दिमाग (मानस) और (9) आत्मा। इसके अलावा पदार्थ में 24 अलग– अलग विशेषतायें थी, जिनमें तरलता, चिपचिपाहट, लचीलापन और गुरुत्वाकर्षण जैसे गुण प्रमुख थे। तरलता पानी, पृथ्वी और आग से संबंधित थी, चिपचिपापन पानी से तथा गुरुत्वाकर्षण का संबंध पृथ्वी से था। ध्वनि, ऊष्मा और प्रकाश की खास विशेषताओं पर भी चर्चा की गई थी, जो प्रायः भौतिकी के बाद की खोजों में प्रमुखता से वर्णित होने लगे। यद्यपि गणितीय प्रणाली में कमी के कारण, वे वैज्ञानिक सिद्धांतो में विकसित नहीं हो पाए।

प्रारंभिक साहित्य में रसायन विज्ञान

भारत के शुरुआती साहित्य में रासायनिक प्रणालियों के ज्ञान के भरपूर साक्ष्य हमें मिलते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को मौर्य काल में तीसरी या चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में संभवतः शासन और प्रशासन के एक प्रसिद्ध पाठ के रूप में जाना जाता है। इसमें प्रचलित रासायनिक प्रणालियों पर अधिक आंकड़े है, विशेष रूप से खदानों और खनिजों (सोने, चांदी, तांबा, सीसा, टिन और लौह के धातु अयस्क सहित) पर एक बड़ा अध्याय वर्णित है। विशिष्ट विशेषता युक्त विभिन्न कीमती पत्थरों (मोती, रूबी, बेरिल इत्यादि), किण्वित रसों (गन्ना, गुड़, शहद, जंबू, कटहल, आम, आदि) और तेल निष्कर्षण के विवरणों पर भी इस ग्रन्थ में चर्चा की गई है।

आयुर्वेद के दो मौलिक ग्रंथों चरक संहिता और सुश्रुत संहिता कुछ सदी ईस्वी में लिखे गए थे। न केवल इन शास्त्रों में उपयुक्त सूक्तियों का उपयोग चिकित्सा में इस्तेमाल होने वाले रसायन की विस्तृत श्रृंखला के रूप में हुआ, अपितु धातुओं, खनिजों, नमक, रस के निर्माण में भी भरपूर हुआ, लेकिन

वे विभिन्न क्षारकों या एल्केलाइन (क्षार) को बनाने पर भी चर्चा करते हैं, जो 'दस कलाओं' में से एक के रूप में जाना जाता है। क्षारों को हल्के, कठोर या औसत के रूप में वर्णित किया जाता है और इन्हें विशिष्ट पौधों से तैयार किए जाते हैंः इसमें चूना पत्थरों के साथ पौधों को जला कर, फिर उनकी राख को पानी में मिलाकर, उसका निस्यंद बनाया जाता है और इस तरह उत्पन्न विलयन को उबालकर सान्द्र घोल बनाते हैं, तत्पश्चात इसमें चूना पत्थर और शंख को मिलाया जाता है। इस तरह के क्षारीय पदार्थों का प्रयोग सर्जिकल यंत्रों और दवाओं के निर्माण हेतु लोहा, सोना या चांदी जैसे धातुओं की पतली चादरों के उपचार के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। इन ग्रंथो में सिट्रस या इमली जैसे पौधों से निकाले गए (निष्कर्षित) कार्बनिक अम्ल का भी जिक्र है (खनिज अम्लों के बारे में जागरूकता बहुत बाद में आई)।

छठवीं ईसा पूर्व में वराहमिहिर द्वारा लिखित बृहत् संहिता (विश्वकोश) में अलग–अलग अनुपात में मिश्रित सोलह मौलिक पदार्थों में से देशी इत्र के निर्माण पर एक अध्याय है। दरअसल, शास्त्रीय और मध्ययुगीन भारत में सुगंध और सौंदर्य प्रसाधन में रासायनिक प्रणालियों का भरपूर इस्तेमाल हुआ। बृहत् संहिता में विभिन्न व्यंजन भी शामिल हैं, उदाहरण के लिए एक चिपचिपे सामग्री का निर्माण जिसका उपयोग घर और मंदिर की छत व दीवार में किया जाता थाय यह पूरी तरह से विभिन्न पौधों, फलों, बीजों और पेड़ की छाल से तैयार किया जाता था, जिन्हें उबालकर सांद्रित करने के बाद, उसमें विभिन्न रेजिन मिलाया जाता था। इस तरह के व्यंजनों का परीक्षण और वैज्ञानिक रूप में आकलन करना दिलचस्प होगा। कई ग्रंथों (जैसे कामसूत्र) में पारंपरिक चौंसठ कलाओं की एक सूची मिलती है, एक परिपूर्ण व्यक्ति को इन चौंसठ कलाओं में सुविज्ञ होने की अपेक्षा की जाती थी। दिलचस्प बात यह है जो हम पाते हैं कि 'सोने और चांदी के सिक्के, जवाहरात और रत्न का ज्ञानय रसायन और खनिज विज्ञानय रंगीन गहने, रत्न और मोतीय खानों और खदानों का ज्ञान प्राप्त होता है 'जो इस तरह के क्षेत्रों में दिए गए ध्यान को प्रमाणित करता है।

शास्त्रीय युग

भारत में कीमियागिरी गुप्त साम्राज्य के दौरान पहले ईसा सहस्त्राब्दी के मध्य के आस–पास उभरकर सामने आया था। इसकी उत्पत्ति का पता लगाना मुश्किल है और विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि इसके अस्तित्व का उद्धरण चीन से मिलता है, जिसके नियमों को दूसरे ईसा पूर्व के आरंभ में प्रमाणित किया गया है। इसकी जैसी भी शुरुआत हुई, भारतीय कीमिया ने जल्द ही अपनी एक अलग पहचान बना ली। इसे अलग– अलग नामों जैसे रसशास्त्र, रसविद्या या धातुवाद से जाना जाता थाय रस शब्द के कई अर्थ हैं, जैसे सार तत्व, स्वाद, रस या वीर्य, लेकिन इस प्रसंग में पारा को संदर्भित किया गया है, जिसे सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक के रूप में देखा जाता है। पारा को पुरुष सिद्धांत (शिव) के रूप

में पहचाना गया था जबकि सल्फर (गंधक) महिला सिद्धांत (शक्ति) से जुड़ा था और अधिकांश कीमियागिरी के ग्रंथों को शिव और शक्ति के बीच एक संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया था। (दिलचस्प बात यह है कि पारा और सल्फर के अंश चीनी कीमिया की तरह एक दूसरे में संलयित हैं!) यह तंत्र दर्शन के साथ आमेलित है और वास्तव में कीमियाई अभ्यासों, निर्माण और प्रक्रियाओं में पारा को दिव्य माना जाता था तथा अदृश्यता और उत्थान सहित न केवल दीर्घायु बल्कि गुप्त शक्तियों को प्रदान करने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली माना जाता था।

यहां कीमियाई साहित्य बहुत ही समृद्ध है, जिसे अनेक लेखकों में से नागार्जुन, गोविंद भागवत, वाग्भट, सोमदेव, यशोधरा आदि जैसे विद्वानों द्वारा लिखा गया है। रसशास्त्र ग्रंथ अनेक रासायनिक पदार्थों और उनसे जुड़ी अभिक्रियाओं की चर्चा करता है। वे निम्नानुसार कुछ बदलावों के साथ वर्गीकृत थे:

- महारस या आठ प्रमुख पदार्थः अभ्रक, टूमलाइन, कापर पाइराइट, आयरन पाइराइट, राल या डामर, कापर सल्फेट, जिंक कार्बोनेट और पारा (कभी–कभी लैपिस लजुली और मैग्नेटाइट या लोड़ेस्टोन शामिल हैं)य
- उपरस या आठ मामूली पदार्थः सुर्ख गेरुआ रंग का गंधक, आयरन सल्फेट, फिटकरी, ऑर्पीमेंट (आर्सेनिक ट्राइसलफाइड), रीयलगर (आर्सेनिक सल्फाइड), काजल (एंटीमोनी के यौगिक) और टिंटस्टोन या कैसिटेराइट (टिन डाइऑक्साइड) शामिल हैं।
- नवरत्न या नौ रत्न, मोती, पुखराज, पन्ना, माणिक, नीलम, मूंगा, गोमेद, लहसुनियाऔर हीरा शामिल है।
- धातु या सप्त धातुः सोना, चांदी, तांबा, लोहा, सीसा, टिन, जस्ताय कुछ मिश्र धातुएं (जैसे पीतल, कांस्य और पांच धातुओं के संयोजन) भी इसमें शामिल किए गए थेय जहर (विष या गरल) और पौधे भी शामिल हैंय उत्तरार्द्ध में, 200 से अधिक पाठों में इनके नाम आए हैं (उनकी पहचान हमेशा निश्चित नहीं होती है), इन पौधों की विशेष रूप से, धातुओं और खनिजों के उपचार या पाचन में आवश्यकता होती थी।

जीवन के उत्थान की तलाश में, पारद को सुदीर्घ जीवन और युवा शक्ति प्रदान करने वाला माना जाता था, पारा को कभी–कभी अमृतधातु या 'अमर धातु' कहा जाता था। कुछ आयुर्वेदिक और सिद्ध दवाएं परंपरागत रूप से विभिन्न धातुओं और खनिजों से बनाई जाति थीं, परंतु केवल जटिल शुद्धीकरण प्रक्रियाओं के बाद उनके जहरीले प्रभावों को दूर कर (या उन्हें 'मार डालें', ग्रंथों के अनुसार) और उन्हें आंतरिक उपयोग के लिए उपयुक्त बनाया जाता था। उदाहरण के लिए, यद्यपि पारा यौगिकों को जहरीला माना जाता था, सिंदूर (मरक्यूरिक सल्फाइड, HgS) विभिन्न औषधीय प्रभावशाली पौधों के

रस और अर्क, सल्फर, अभ्रक, क्षारीय पदार्थों आदि सहित अट्ठारह जटिल प्रक्रियाओं से होकर गुजारा जाता था। जिसके परिणामस्वरूप पारे का वह यौगिक उपयोग के लिए उपयुक्त घोषित किया जाता था और माना जाता था कि वह शरीर को उर्जा प्रदान करेगा। इसी तरह की प्रक्रियाएं तमिल कीमिया और चिकित्सा प्रणाली में मौजूद थीं, इसके अलावा, प्राकृतिक रूप से मिल्ने वाले लवणों, विशेष तौर पर उनमें से तीन (मुप्पू) पत्थर लवण और अनेक कार्बोनेट के संबंध में विशेष तकनीकें विकसित हुईं।

मूल सिंदूर या मरक्यूरिक सल्फाइड

लेड, टिन या तांबा जैसे आधार धातुओं को रूप बदलकर (ट्रांसम्यूट) सोने में कीमिया प्रणाली का एक और अध्ययन विषय था तथा इसमें पांच क्रियाएं शामिल थींः पोतना, उड़ेलना, धुम्रण और प्रभाव। यहां फिर से, पारा, जिसे कभी–कभी स्वर्णकारक या 'सोने का निर्माता' कहा जाता है, अक्सर एक प्रमुख भूमिका निभाता है। ग्रंथों में वर्णित प्रक्रियाएं काफी विस्तृत हैं, इन्हें हासिल करने में कई दिन लगेय हालांकि, उनके सटीक विवरणों का अक्सर अनुसरण नहीं किया जा सकता है, हालांकि, कुछ पौधों, खनिजों या उनके उपचारों के बारे में अनिश्चितताएं हैं। लेकिन रूप परिवर्तन को पूरी तरह से यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में नहीं माना जाता थाः ईमानदारी, आत्म–नियंत्रण, उद्देश्य की निष्ठा, ईश्वर में आस्था, गुरु के प्रति आज्ञाकारिता और रस विद्या में विश्वास को सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना जाता था। वास्तविक प्रथाओं को गुप्त रखा गया था, क्योंकि यदि लक्ष्य को अनियमित कर दिया गया तो लक्ष्य तक पहुंचने में असफलता की सम्भावना होगी।

आधार धातुओं में सोने के वास्तविक उत्पादन के दावों में हाल के समय में बढ़ोतरी हुई है, जैसे कि सन 1941 में नई दिल्ली के लक्ष्मीनारायण मंदिर में एक संगमरमर स्लैब के प्रदर्शन में दर्ज किया गया थाय ऐसे दावों को सर्वथा संशयवाद के साथ देखा जाना चाहिए। धातु का रंग इतना बदल गया था कि यह सुनहरा दिखाई देता थाय वास्तव में, कुछ ग्रंथ चांदी, तांबा और पारा को सोने जैसे दिखने वाले मिश्र धातुओं के रूप में संदर्भित करते हैं। कीमियागिरी परंपरा में, धातुओं के रूपांतरण को जीवन के उत्थान के माध्यम से शरीर के अपने रूपांतरण के एक रूपक के तौर पर भी देखा जा सकता है, जो कि भारतीय रसायनज्ञों का अंतिम उद्देश्य था। किसी भी मामले में, इस पारस मणि या आधार धातुओं के रूपांतरण की चाहत ने विशेष रूप से चिकित्सा क्षेत्र में वास्तविक और मूल्यवान रासायनिक तकनीकों का नेतृत्व किया और आखिरकार आयुर्वेदिक और सिद्ध औषध ग्रंथों में वर्णित सूक्तियों ने भी पर्याप्त योगदान दिया।

प्रयोगशाला और उपकरण

ग्रंथों में प्रयोगशाला के लेआउट को सावधानीपूर्वक वास्तु शास्त्र के हिसाब से वर्णित किया गया था, चार दरवाजे, पूर्व में एक गूढ़ प्रतीक (रसलिंग), दक्षिण पूर्व में भट्टियां, उत्तर–पश्चिम में उपकरणों आदि। इसके अलावा मोर्टार (पत्थर या लोहा) और धौंकनी (भट्टियों को गर्म करने के लिए), जाल, कड़ाही, चिमटा, कैंची और मिट्टी या कांच के जहाजों, ताप, भाप, अर्क खींचना, पदार्थ निकालने के लिए सरल रूप से विकसित विशेष उपकरण स्थापित किये गए थे। इनमें से कुछ के निम्नवत हैं:

- मुसा यंत्र या क्रूसिबल (घरिया) जो आमतौर पर सफेद मिट्टी या चावल की भूसी, लौह धूल, चाक आदि के साथ मिश्रित एक एंथिल से बनाया जाता थाय ऐसे क्रूसिबल उनके अनुप्रयोग के आधार पर विभिन्न आकार और आकृतियों के होते थे,
- कोष्ठी यन्त्र, धातुओं के 'सार' के निष्कर्षण के लिए, दोनों किनारों की नलिकाओं से युक्त, आग से ऊपर और एक पक्ष ब्लोअर से घिरा हुआय धातुओं के अलावा, बर्तन भी चारकोल से भरे होते थे,
- स्वेदनी यन्त्र, भाप के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक बड़ा मिट्टी का बर्तन होता था,
- डोला यंत्र, जिसमें एक बर्तन तरल से आधा भरा होता था और एक विस्थापित तरल पदार्थ के वाष्प को अवशोषित करता था,
- पातन यन्त्र, इस यन्त्र का प्रयोग उर्ध्वपातन या आसवन के लिए किया जाता था, यह ऊपर, नीचे या किनारे से खुला हो सकता था, दूसरा अधाना यंत्र था, जिसमें ऊपरी बर्तन की पेंदी में पारा का पेस्ट लेपित किया जाता था, जिससे वाष्प बर्तन के निचले हिस्से में उतर सकता था और वहां मौजूद पदार्थों के साथ वाष्प की क्रिया होती,

- धूप यन्त्र, सल्फर या अन्य पदार्थों के धुएं के साथ सोने के पत्तों या चांदी की पन्नियों को चमकाने के लिए प्रयोग किया जाता था।

एक चित्रकार की –ष्टि से कीमियागर की प्रयोगशाला या रसशाला

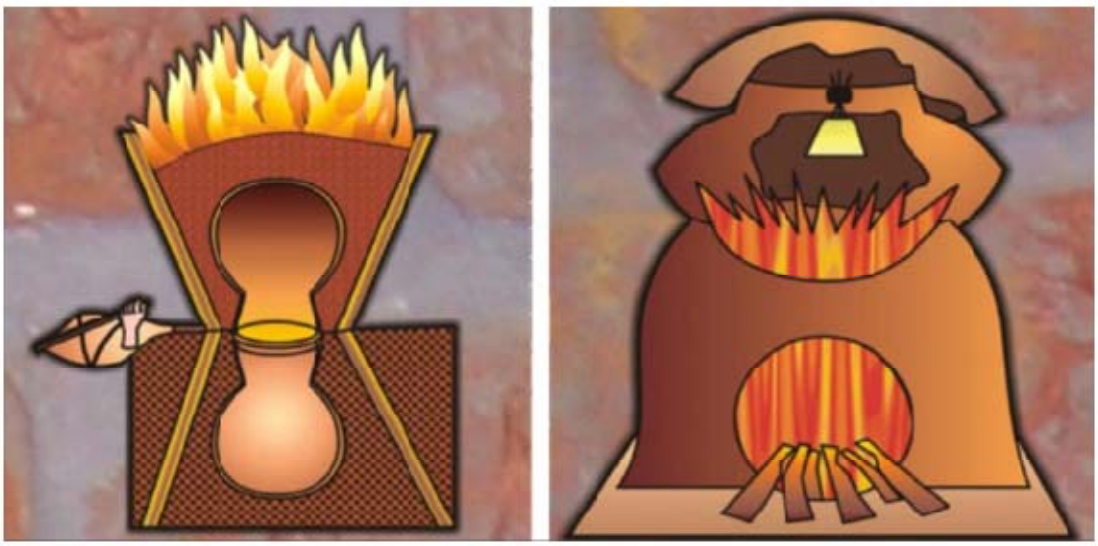

कोष्ठी यंत्र (बाएं) और डोला यंत्र (दाएं) के आरेख (आभारः राष्ट्रीय विज्ञान केन्द्र, नई दिल्ली)

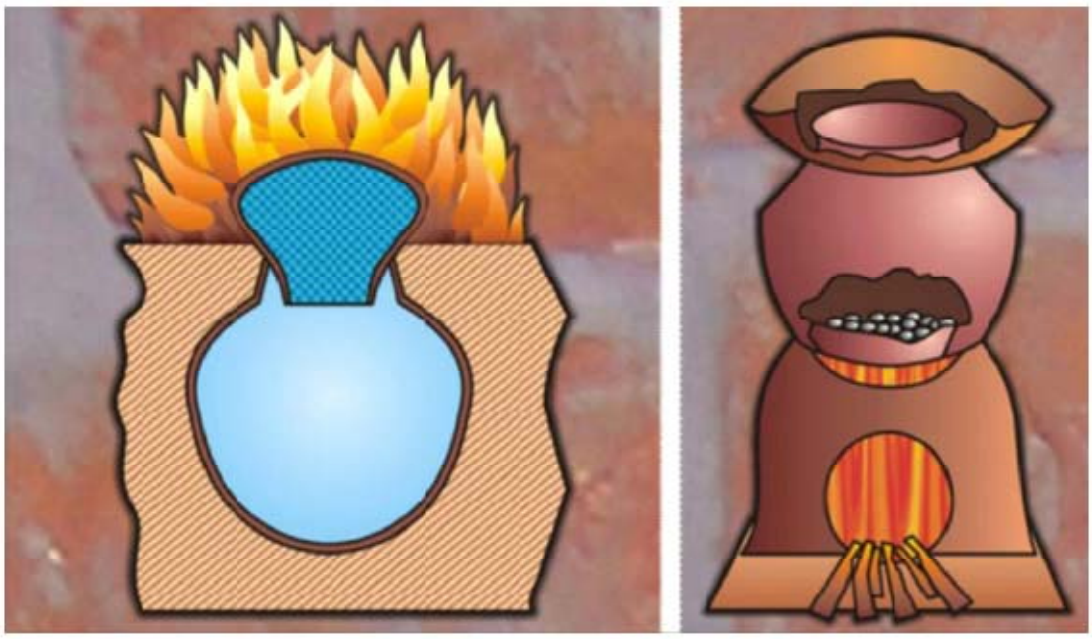

अधाना यंत्र (बाएं) और धूप यंत्र (दाएं) के आरेख

(आभारः राष्ट्रीय विज्ञान केन्द्र, नई दिल्ली)

कुल मिलाकर, भारत की रासायनिक परंपराएं समृद्ध एवं विविधतापूर्ण थीं और ये एक आध्यात्मिक घटक के साथ विस्तृत तकनीकों को जोड़ती थीं। यद्यपि उन्होंने आधुनिक रसायन विज्ञान के जन्म में सीधे योगदान नहीं दिया, लेकिन इसके परिणामस्वरूप खासकर धातु विज्ञान, रत्न विज्ञान और औषधि विज्ञान जैसे क्षेत्रों में काफी व्यावहारिक अनुप्रयोग हुए।

4 प्राचीन भारत में औषधीय परंपरा का ऐतिहासिक विकास

आठ शाखाओं में विशेषज्ञता

भारत में औषधि विज्ञान का इतिहास कई हजार साल पुराना है, निश्चित रूप से सामान्य युग के कुछ सदियों पहले से इसका इतिहास रहा है। इस बात का पुख्ता प्रमाण यह है कि आयुर्वेद की शुरुआती पाठ्य पुस्तकों जैसे चरक संहिता (सामान्य चिकित्सा व औषधि विज्ञान), सुश्रुत संहिता (शल्य क्रिया या सर्जरी) और कश्यप संहिता (बाल रोग विज्ञान या पीडियाट्रिक्स) हजारों वर्षों में कई बार संपादित और संशोधित हुए हैं। उन्होंने इस युग की पहली कुछ शताब्दियों में अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया। यह एक अद्भुत संयोग है कि इतनी जल्दी, विशेष रूप से पीडियाट्रिक्स, सर्जरी, ओथ्थाल्मोलॉजी (नेत्र रोग विज्ञान), ईएनटी (नाक, कान और गला रोग विज्ञान) जैसे विशेष विज्ञान शाखाओं की जानकारी संस्कृत पाठों में लिखी गई थी। इन ग्रंथों में, आयुर्वेद पहले से ही विकसित अवस्था में मौजूद रहा और इसमें आठ शाखाओं को विशिष्ट रूप से स्थान दिया गया हैः सामान्य चिकित्सा या औषधि विज्ञान, सर्जरी, ओथ्थाल्मोलॉजी–ईएनटी–दंत चिकित्सा, पीडियाट्रिक्स, मनोचिकित्सा, विष विज्ञान, कायाकल्प चिकित्सा और प्रजनन चिकित्सा। 6वीं या 7वीं शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास, प्रसिद्ध चिकित्सक वाघभट्ट ने आयुर्वेद की आठ शाखाओं के विशेष ज्ञान को एक अकेले संग्रह में संकलित कियाय इस बड़े संग्रह को अष्टांग संग्रह के रूप में जाना जाता है और छोटे संस्करण को अष्टांग हृदय कहा जाता है।

सर्जरी की परंपरा

आयुर्वेद में सर्जरी की परंपरा का एक लंबा इतिहास है। मिसौरी–कोलंबिया विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने पाया कि प्राचीन भारत के चिकित्सकों ने दांतों को ड्रिल करने और 8,000 से 9,000 साल पहले क्षय हटाने के लिए एक तकनीक विकसित की थी। मेहरगढ़, जो अब पाकिस्तान में है, से मिले जीवाश्मों के अध्ययन ने पुरुष मोलर दांतों की काटने वाली सतह पर दांतों में ड्रिल किए गए छोटे छिद्रों का खुलासा किया। हड़प्पा और लोथल से मिले साक्ष्य से भी यह खुलासा हुआ है कि लगभग 4,300 साल पहले कांस्य युग के मानव खोपड़ी जीवाश्म पर एक प्राचीन शल्य चिकित्सा अभ्यास का प्रमाण प्राप्त हुआ है। पाषाण युग से शुरू होने वाले प्रागैतिहासिक समाज में की जाने वाली शल्य चिकित्सा की एक सामान्य युक्ति थी ट्रेपनेशन, जिसमें खोपड़ी वाल्ट से होकर ड्रिलिंग या काटने की क्रिया शामिल रहती थी और अक्सर सिर की चोट का इलाज करने के लिए या सिर पर झटका के कारण हड्डी स्प्लिंटर्स या रक्त के थक्के को हटाने के लिए इस तकनीक का प्रयोग किया जाता था।

भीमबेटका, मध्य प्रदेश से प्राप्त एक मिसोलिथिक ¼15]000 – 6]000 ईसा पूर्व काल)

शैल चित्रकारी जिसमें किसी मरीज के सिर या आँख में शल्य क्रिया किया जाना दर्शाया गया है

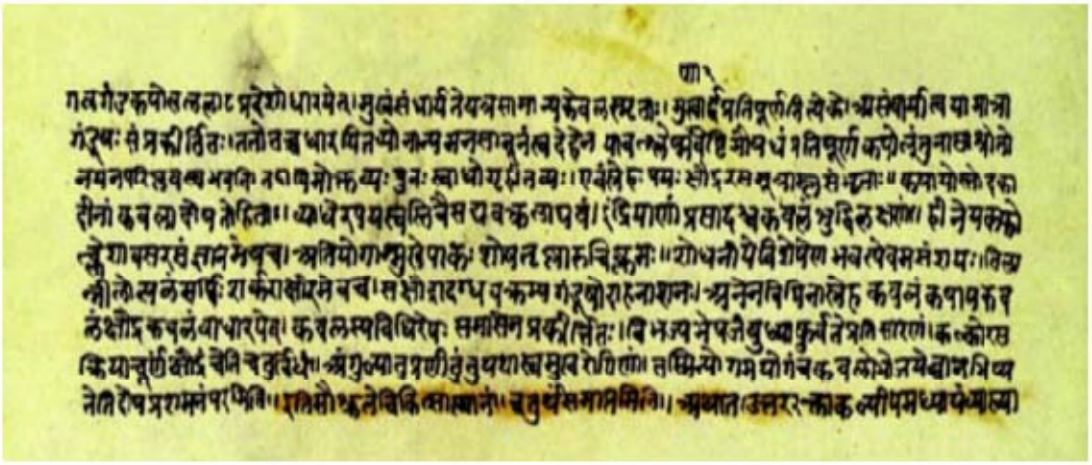

विभिन्न शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं और यंत्रों पर केंद्रित आयुर्वेदिक पाठ्यपुस्तक

सुश्रुत संहिता की पाण्डुलिपि का एक पन्ना (आभारः वेलकम पुस्तकालय,लंदन)

भारतीय शल्य चिकित्सा की गाथा का समृद्धिशाली विकास लगातार जारी था और सुश्रुत के समय यह अपने शिखर पर पहुँच गई, जो माना जाता है कि दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की यह बात है। सुश्रुत को शल्य चिकित्सा के जनक के रूप में जाना जाता है और यह चिकित्सा प्रणाली मृत शरीर का विच्छेदन करके शरीर रचना का पूर्ण अध्ययन करने की वकालत करता था। उन्होंने शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं के बाद घावों को सड़ने (सेप्सिस) से रोकने के लिए शल्य चिकित्सा उपकरणों को कीटाणु रहित करने की विधि पेश की थी। सुश्रुत का संग्रह सैकड़ों तेज और कुंद शल्य चिकित्सा उपकरणों का

वर्णन करता है और उनमें से कई आज भी शल्य चिकित्सकों (सर्जन) के द्वारा उपयोग किए जाने वाले यंत्रों जैसा दिखते हैं। सुश्रुत को प्लास्टिक सर्जरी के माध्यम से नाक या नासिकासंधान (राइनोप्लास्टी) के नवाचारी पुनर्निर्माण जैसे नयी शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं में दक्षता प्राप्त थी, चींटियों की एक विशिष्ट प्रजाति का उपयोग आंतों को बंद करने, मोतियाबिंद के शल्य चिकित्सा हटाने और मूत्र सम्बन्धी शल्य चिकित्सा प्रबंधन में वे इस्तेमाल करते थे।

भारत से उत्पन्न 19वीं शताब्दी के चिकित्सा और शल्य क्रिया संबंधी उपकरण

(आभारः विज्ञान संग्रहालय, लंदन)

इस चित्र में सुश्रुत के शिष्यों को सब्जियों पर कार्य करते हुए शल्य चिकित्सा सीखने को दर्शाया गया है

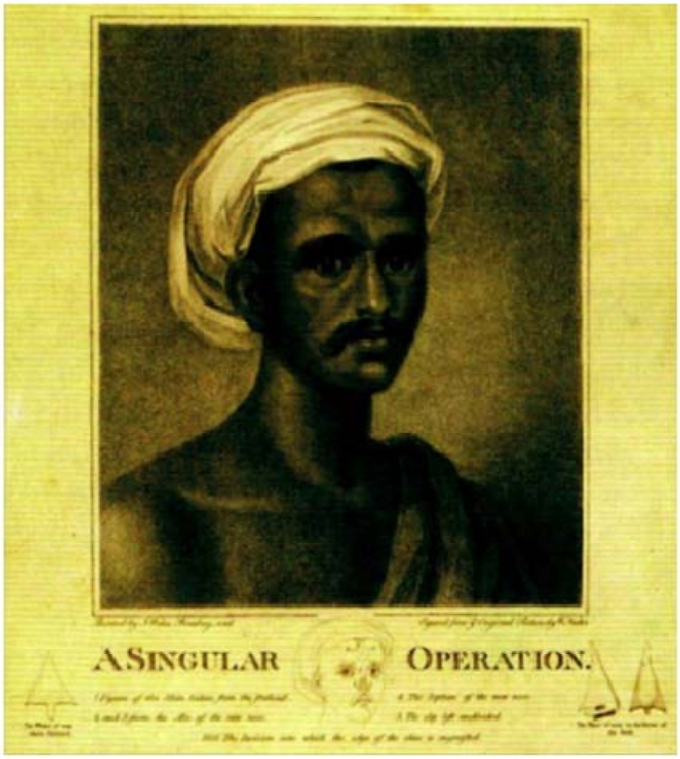

जेम्स वेल्स के द्वारा बनाया गया यह चित्र, जिसे दो ब्रिटिश सर्जनों द्वारा 1794 में कमीशन किया गया था, पश्चिम में प्लास्टिक सर्जरी के पहले ज्ञात विवरण के साथ यह प्रकाशित किया गया था (आभारः विज्ञान संग्रहालय, लंदन)

18वीं शताब्दी में पश्चिमी औषधि विज्ञान के अंतर्गत भारतीय नासिका संधान तकनीक की पुनर्खोज की गई थी, जब ईस्ट इंडिया कंपनी के सर्जन थॉमस क्रूसो और जेम्स फाइंडले ने पूना में ब्रिटिश रेजीडेंसी में भारतीय नासिका संधान शल्य प्रक्रियाओं को प्रमाणित किया था। उस सर्जन ने लंदन के जेंटलमैन'स मैगजीन के अक्टूबर 1794 अंक में शल्य प्रक्रिया और उसके नाक पुनर्निर्माण परिणामों की तस्वीरें प्रकाशित की थीं।

एक नेत्र विशेषज्ञ विशिष्ट यंत्रों की सहायता से एक मरीज का इलाज कर रहा है।

(सन 1825 का चित्र, आभारः ब्रिटिश पुस्तकालय, लंदन)

आयुर्वेद में चिकित्सा आनुवंशिकी

चरक संहिता का अध्ययन करते हुए बीमारियों के अनुवांशिक आधार के प्रारंभिक संदर्भ मिलते हैं। इस ग्रन्थ में चरक उल्लेख करते हैं कि प्रजनन तत्व बीज (बीज) से बनते हैं जो आगे चलकर कुछ हिस्सों (बीजभागा) और उप–वर्गों (बीजभागवयव) में विभक्त हो जाता है। बीज का प्रत्येक भाग या उपभाग शरीर के एक विशेष अंग को दर्शाता है और उस भाग में क्षति होने पर उस अंग को भी नुकसान पहुंच सकता है।

चेचक का टीका

18वीं शताब्दी में, ब्रिटिश अधिकारियों और आगंतुकों ने चेचक के टीकाकरण प्रयोगों का अवलोकन किया था और अपने दस्तावेजों में इस बात का उल्लेख संकलित किया, जो एडवर्ड जेनर द्वारा टीकाकरण की खोज से सदियों पहले चिरकाल से भारत में प्रचलित था। लंदन के कॉलेज ऑफ फिजीशियन के लिए वृत्तांत लिखने वाले, जे. जेड. होलवेल, जिन्होंने अध्ययन किया और खुद टीकाकरण की भारतीय विधि का अनुसरण किया था तथा चेचक के रोग निवारण की जांच को प्रमाणित किया था।

सूक्ष्म जैविकी और परजीवी विज्ञान

सामान्य युग से कई सदियों पहले चरक संहिता जैसी औषधि विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में सूक्ष्म जीवन के संदर्भ पाए गए हैं। निम्न श्रेणी के जीव रूपों को रोगजनक और गैर–रोगजनक में वर्गीकृत किया गया था। रोगजनक जीवों में सूक्ष्म जीव शामिल होते हैं जिन्हें नग्न आंखों से नहीं देखा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों के लिए उपयुक्त तकनीकी शब्दावली को विकसित किया गया और उनके रूप तथा आकारों का भी वर्णन किया गया था। सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार से सदियों पहले इस तरह के विवरण प्रस्तुत करने में वे चिकित्सक कैसे सक्षम हुए थे, यहां तक कि सूक्ष्म जीवों की व्याख्या करने में, यह एक अनोखी बात है।

संक्रामक या संचारी रोग और महामारी

सुश्रुत संहिता संक्रामक बीमारियों का वर्णन करती है और बताती है कि ये बीमारियां घनिष्ठ संपर्क, हवा के माध्यम से, कपड़े साझा करने, एक साथ सोने से एक से दूसरे व्यक्ति को संचरित हो सकती हैं। संक्रामक बीमारियों को फैलने से रोकने के लिए धुँआ देने की प्रक्रिया (धूमन) को एक निदान के रूप में उल्लेखित किया गया है। चरक संहिता में महामारी विज्ञान को रोकने और महामारी के प्रकोप को प्रबंधित करने के तरीकों को निर्धारित करने के लिए महामारी विज्ञान नामक एक संपूर्ण अध्याय समर्पित है। सम्राट अशोक के शासनकाल में, एक कुशल सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली स्थापित की गई थी।

एक विकासशील औषधकोश

आयुर्वेद में दवा का अभ्यास या प्रयोग इस सिद्धांत पर आधारित है कि दुनिया में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें संभावित रूप से औषधीय गुण मौजूद न पाया जाता हो। आयुर्वेदिक औषधकोश का विकास प्राकृतिक संसाधनों से नई दवाओं की खोज के लिए निरंतर और अधूरी चाहत का प्रतिनिधित्व करता है। आयुर्वेद की परंपरा में लगभग 1,500 औषधीय पौधों का वर्णन और इनसे हजारों दवाओं के निर्माण का उल्लेख किया गया है। इन ग्रंथों में सैकड़ों जंतुओं और जंतु उत्पादों का भी उल्लेख किया गया है।

सामान्य युग में 6वीं शताब्दी के आसपास, खनिज और धातुओं के उपयोग में विशेषज्ञता रखने वाली औषधि विज्ञान की शाखा, जिसे रसशास्त्र के नाम से जाना जाता है और यह विशेष रूप से उत्तर भारत में विकसित तथा स्थापित हुआ। भारत के दक्षिणी राज्यों में हर्बल दवाओं की पुरानी परंपरा का अभ्यास लगातार किया जाता था। तमिलनाडु में, सिद्ध औषध प्रणाली (परंपरागत रूप से अठारह 'सिद्ध' जिसका समानार्थी अभ्यास आयुर्वेद में भी होता है) को औषधकोश ग्रन्थ में धातु और खनिज अवयवों के रूप में जोड़ा गया।

स्वास्थ्य देखभाल का बहुलवादी –ष्टिकोण

आयुर्वेद ने भारत में स्वास्थ्य देखभाल के लिए बहुलवादी दृष्टिकोण को पोषित किया। प्राचीन काल से, भारत में स्वास्थ्य देखभाल लोक और शास्त्रीय अभिव्यक्तियों की दो धाराओं के रूप में विकसित हुई। भारत में लोक चिकित्सा की समृद्ध परंपरा रही है, जिसे स्वास्थ्य चिकित्सकों, हड्डियों, विष चिकित्सकों और जन्म परिचरों की एक पैरामेडिकल बल में आयोजित किया गया था, जो लोगों के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा प्रदान करते थे। इनमें से कई परंपराएं आधुनिक समय में भी अस्तित्व में हैं। आज भारत शायद दुनिया का एकमात्र देश है जो आधिकारिक तौर पर आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा जैसे यूनानी, सिद्ध तथा होमियोपैथी जैसी चिकित्सा प्रणालियों जैसे संरक्षण प्रणाली को संरक्षित करने वाली बहुलवादी स्वास्थ्य सेवा प्रणाली को मान्यता देता है।

यह चित्र दर्शाता है कि एक आयुर्वेदिक सर्जन अपने सर्जिकल उपकरणों की सहायता से चोट को ठीक कर रहा है (आभारः वेलकम पुस्तकालय, लंदन)

सामूहिक सांस्कृतिक सम्मिलन

आयुर्वेद को सामूहिक सांस्कृतिक सम्मिलन से फायदा हुआ और हमारे देश से यह चीन, श्रीलंका, तिब्बत, थाईलैंड और इंडोनेशिया जैसे पड़ोसी देशों में अभिसारित हुआ। बौद्ध धर्म ने भारत के बाहर आयुर्वेद के अभिसारण में एक प्रमुख भूमिका निभाई। सिकंदर महान ने 325 ईसा पूर्व में जब भारत पर हमला किया था, तो वह यहां सर्पदंश के घाव भरने वालों और आयुर्वेदिक चिकित्सकों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें ग्रीस में आमंत्रित किया था। ग्रीक औषधि विशेषज्ञों (चिकित्सकों) और आयुर्वेद के चिकित्सकों के बीच संवाद का संकेत देने वाले ऐतिहासिक सबूत आज भी मौजूद हैं। आयुर्वेद के महत्वपूर्ण ग्रन्थ जैसे चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदय का मध्य युग में तिब्बती, फारसी और अरबी भाषाओं में अनुवाद किया गया था। चीन और मध्य पूर्व के यात्रियों ने अपने यात्रा संबंधी वृतांतों में भारत में चिकित्सा प्रणालियों की उन्नत स्थिति का विस्तृत वर्णन किया है।

एक गतिशील साहित्यिक परंपरा

आयुर्वेद का इतिहास एक जीवंत और गतिशील चिकित्सा परंपरा के विकास को उद्घाटित करता है जिसमें मेडिकल लेक्सिकॉन, औषधिकोश, हैंडबुक, उपचार के मैनुअल और महत्वपूर्ण कालक्रम और भौगोलिक स्थलों के सारांशों पर रचना की जा रही थी। उदाहरण के लिए, 8वीं शताब्दी में, विशेष रूप से रोग निदान (डायग्नोस्टिक्स) के लिए समर्पित एक ग्रंथ माधव के द्वारा सृजित किया गया था जिसे माधव निदान के नाम से जाना जाता है। 11वीं शताब्दी में, विश्वनाथ सेना द्वारा आहार विज्ञान पर एक नया ग्रंथ तैयार किया गया जिसे पथ्यपथ्यविनिस्काया के नाम से जाना जाता है। 13वीं शताब्दी में सारंगधारा संहिता का लेखन फार्मेसी और फार्मास्यूटिकल्स विषयों के लिए किया गया था, जो शरीर विज्ञान की श्वसन प्रणाली पर पहला विवरण प्रदान करता है। जब आयुर्वेद में नाड़ी निदान शुरू किया गया था, तब जाकर इस विषय पर स्वतंत्र ग्रन्थ विकसित किए गए थे। चिकित्सा ज्ञान के निरंतर अद्यतन और दस्तावेजीकरण की यह परंपरा औपनिवेशिक काल तक बिना अंतराल के जारी रही। लेकिन 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासकों द्वारा प्रतिकूल नीतियों और विनियमों को लागू करने पर आयुर्वेद को झटका लगा। हालांकि, मुख्य आयुर्वेदिक ग्रंथों के प्रकाशन के साथ, 20वीं शताब्दी के अंत में आयुर्वेद विधा में एक नवजीवन का संचार हुआ, जिसमें कुछ प्रमुख भारतीय विद्वान इस विधा के संरक्षण के लिए आगे आए।

आयुर्वेद का वैश्विक पुनरुत्थान

आजादी के बाद के समय में, आयुर्वेद का पुनरुत्थान जारी रहा और हाल के वर्षों में यह पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली के तहत स्वास्थ्य देखभाल के लिए एक संपूर्ण प्रणाली दृष्टिकोण के रूप में प्रमुखता प्राप्त कर रहा है। यद्यपि यह प्रणाली पश्चिमी देशों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इटली,

यूनाइटेड किंगडम, ऑस्ट्रिया, नीदरलैंड आदि जैसे कई देशों में आयुर्वेद पढ़ाया जाता है और अभ्यास कराया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में आयुर्वेद के कई शिक्षा केन्द्र हैं।

आयुर्वेद की समकालीन स्थिति

पुरानी अपक्षयी बीमारियों और जीवन शैली के विकारों जैसी स्थितियों से प्रभावी ढंग से निपटने की कोशिशों की एक विस्तृत श्रृंखला का प्रबंधन जारी है और दुनिया भर के लोगों में इसकी जबरदस्त मांग है। चूंकि दुनिया स्वास्थ्य देखभाल के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण की ओर बढ़ रही है, आयुर्वेद स्वास्थ्य और नीरोगता के संकल्प की प्रेरणा के साथ उस परम्परा में सतत रूप से प्रयत्नशील है, जो समग्र, बहुलतावादी और एकीकृत है जो उल्लेखनीय निरंतरता, लचीलापन और समय के साथ अनुकूलन को प्रदर्शित करता है।

5 प्राचीन भारत में पादप और जंतु विज्ञान

आयुर्वेद का संबंध औषधि विज्ञान के साथ–साथ वनस्पति विज्ञान, जंतु विज्ञान, पशु चिकित्सा विज्ञान और कृषि जैसे जीवन विज्ञान के क्षेत्रों से भी होता है। पादप विज्ञान को वृक्षायुर्वेद और जंतु विज्ञान को मृगायुर्वेद के नाम से जाना जाता था। अश्वायुर्वेद और गजायुर्वेद क्रमशः घोड़ों तथा हाथियों के लिए पशु चिकित्सा संबंधी औषधि विज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं। कृषि को कृषि शास्त्र के नाम से जाना जाता था।

प्राचीन भारत में पादप विज्ञान

पुरातनता एवं निरंतरता

प्राचीन भारतीय साहित्य में पौधों और कृषि से संबंधित अभ्यासों का ज्ञान लिपिबद्ध किया गया है। पादप विज्ञान पर चर्चा के प्रमाण वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रंथों में देखे जा सकते हैं।

स्रोत

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में फसल की कटाई, फसलों के प्रबंधन, फसल के रोगों और कृषि वानिकी (एग्रोफारेस्ट्री) के अनेक पहलुओं को लेकर बहुत रोचक अनुच्छेद पढ़ने को मिलते हैं। वराहमिहिर के द्वारा बृहत् संहिता का सृजन छठवीं शताब्दी में किया गया था जिसमें एक संपूर्ण अध्याय वृक्षायुर्वेद को समर्पित है। इस विषय पर एक अध्याय अग्निपुराण में भी मिलता है। चरक संहिता नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थ के एक टिप्पणीकार चक्रपाणीदत्ता यह सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं कि पौधों में भावनाएं और संवेदनात्मक क्षमताएं मौजूद होती हैं। सुरपाल के वृक्षायुर्वेद और सारंगधर के उपवन विनोद भी ऐसे विषयों पर स्वतंत्र सृजन है। वृक्षायुर्वेद को लोक परंपराओं में भी मौखिक स्वरूप में सहेज कर रखा गया है। हमारी खेती और जनजातीय समुदाय के पास भारत में पादप विज्ञान के कार्यशील ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत निहित है।

सुरपाल ने पादप सुरक्षा और उपचार के उद्देश्य से अनेक व्यंजन उपलब्ध कराने हेतु पौधों का डोसा सिद्धांत प्रस्तुत किया था। इस सिद्धांत के अनुसार विशेष डोसा के असंतुलन से पौधे पर असर पड़ता है। उन्होंने अनेक अवयवों की सूची बनाई थी, जिनमें जीवाणुरोधी गुण पाए जाते हैं। इन अवयवों में मुख्य तौर पर शामिल अवयव होते हैंः दूध (उस जमाने के हठी का दूध), घी, शहद, लिकोरिस, गोमूत्र और गोबर, विभिन्न तरल खाद, दही, विभिन्न पेड़ की छालें और जड़ों से बना पेस्ट (अर्ध ठोस तरल), हिंग, हल्दी, शीशम का तेल, नमक तथा राख, विभिन्न जन्तुओ (स्तनी व मछली) से प्राप्त मांस, वसा या अस्थि मज्जा की संस्तुति भी विशिष्ट मामलों में की जाती थी।

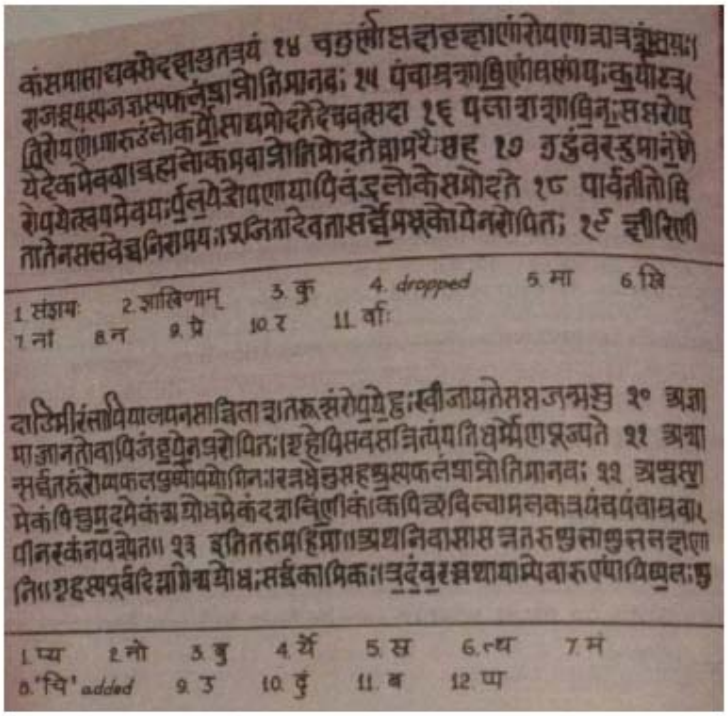

(सुरपाल रचित वृक्षायुर्वेद की पांडुलिपि के पन्ने,
दसवीं शताब्दी में लिखे पादप विज्ञान पर आधारित एक पाठ)

संभावना

आयुर्वेद संबंधी साहित्य में पौधे और उनका वन के वृक्षों, अन्य वृक्षों, झाड़ियों तथा शाकों में वर्गीकरण का संदर्भ मिलता है। झाड़ियों वाले पौधे या तो लताएं होती हैं या फिर मुख्यतः झाड़ियां और शाक पुष्पी होते हैं या अपुष्पी। पुष्पी और अपुष्पी वृक्षों का भी अलग अलग उल्लेख इसमें किया गया है। वृक्षायुर्वेद में इन जैसे विषय शामिल किए गए हैंः बीजों का संग्रह, चयन व भंडारण, अंकुरण एवं उनकी बुआई, पादप जनन और कलमी (ग्राफ्टिंग) की विभिन्न तकनीक, पोषण एवं सिंचाई, मिट्टी की जांच एवं वर्गीकरण, विभिन्न प्रकार के पौधों के लिए उपयुक्त मिट्टियों का चयन, पौधों के प्रकार, उनमें खाद डालना, पीड़क एवं रोग प्रबंधन, नामकरण और वर्गिकी, विभिन्न उद्देश्यों हेतु पौधों के विवरण और वर्गीकरण, उपयुक्त तथा अनुप्रयुक्त मौसम संबंधी दशाएं। मौसम, पानी, खनिज और वानस्पतिक आश्चर्यों के सूचक के रूप में पौधों का उपयोग।

पीड़कों और बीमारियों से फसल का उपचार करने के लिए नीम की गिरी से प्राप्त अर्क (सार तत्व) का निर्माण (आभारः भारतीय ज्ञान प्रणाली केंद्र, चेन्नई)

पीड़कों और बीमारियों से फसल का उपचार करने के लिए लहसुन, अदरक तथा मिर्च से अर्क (सार तत्व) का निर्माण किया जाना (आभारः भारतीय ज्ञान प्रणाली केंद्र, चेन्नई)

पुष्टिकरण

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) ने परम्परागत पादप विज्ञान के क्षेत्र में 4879 देशी अभ्यासों या तरीकों को लिपिबद्ध किया है। 111 देशी तकनीक तरीकों के एक सेट का चयन किया गया और इनका प्रायोगिक परीक्षण व पुष्टिकरण आईसीएआरके विभिन्न संस्थानों, राज्य कृषि विभागों तथा देश भर के विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित प्रयासों में किया गया था। इसमें विभिन्न विषय सम्मिलित रहे जैसे कि पीड़क नियंत्रण, फसल सुरक्षा, खेत क्रियांवयन, मौसम का पूर्वानुमान आदि और यह दर्शाया गया था कि इन तरीकों के 80 प्रतिशत से कुछ अधिक वैध (पुष्ट) थे तथा लगभग 6 प्रतिशत आंशिक तौर पर वैध। मौसम विज्ञान संबंधी दशाओं (तिथि, नक्षत्र) का अध्ययन जो कि फसल को उगाने, पादप वृद्धि व उपज में वृद्धि, मिट्टी की जांच एवं वर्गीकरण, पानी, खनिजों और मौसम के लिए सूचकों के रूप में पौधों का प्रयोग जैसे ताजा शोध के पहलों के लिए वृक्षायुर्वेद अनेक नए क्षेत्रों के लिए आधार प्रदान करता है।

प्राचीन भारत में जंतु विज्ञान

पुरातनता एवं निरंतरता

पशु चिकित्सा विज्ञान की शाखा प्राचीन भारत में सुविकसित थी और अध्ययन की यह शाखा गाय, घोड़ा और हाथियों जैसे पालतू जंतुओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिए समर्पित थी। वैदिक साहित्य में इस बात के सबसे पुराने संदर्भ देखे जा सकते हैं।

स्रोत

साहिलोत्र का हयायुर्वेद पशु चिकित्सा औषधि विज्ञान की एक प्राचीन पथ्य पुस्तक है जिसमें घोड़े के वर्गीकरण का उल्लेख है और इस जंतु के आकार विज्ञान की जानकारी उपलब्ध कराने के अलावा इनके उपचार का भी इसमें वर्णन है। साहिलोत्र ने घोड़ों पर केंद्रित अनेक ग्रंथ लिखे थे जिनका अनुवाद अरबी, फारसी और तिब्बती में किया गया था। गजायुर्वेद ग्रंथ हाथियों पर केंद्रित है जिसे पलाकाप्या ने लिखा था। इस ग्रंथ में हाथियों को होने वाले रोगों के उपचार का वर्णन किया गया है। मृगपक्षीशास्त्र ग्रंथ का सृजन 13वीं सदी में हंसादेव ने किया था जिसमें जंतुओं और पक्षियों का अद्‌भुत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(बाएं) घोड़े की आंख की सर्जरी करता हुआ एक पशु चिकित्सक (दाएं) घोड़े को रक्तस्राव की दशा में इलाज करता हुआ एक पशु चिकित्सा सर्जन (आभारः वेलकम पुस्तकालय, लंदन)

संभावना

भारत के प्राचीन साहित्य में जंतु जीवन की विविधता को बखूबी उकेरा गया है। चरक औ सुश्रुत के ग्रंथ में जंतुओं का वर्गीकरण उनके प्राकृतिक आवास तथा शिकार से जुड़े व्यवहार के आधार पर किया गया है। जंतु शिकार छिनने वाले (प्रसाह), कठफोड़वा (विस्किरा) या आक्रमणकारी (प्रतुद) होते हैं। विभिन्न पाठों में जंतुओं को विभिन्न कसौटियों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। जंतुओं में लैंगिक (योनिज) या अलैंगिक (अयोनिज) विधियों से प्रजनन की क्रिया होती है। लैंगिक प्रजनन अंडे (अंडज) या गर्भनाल (पिंडज) के द्वारा होता है। नमी, गर्मी और साथ ही साथ वनस्पति प्रवर्धों से जीवन उत्पन्न होने के विवरण भी कई पाठों में मिलते हैं। एक वर्गीकरण जंतुओं में पैरों (पादों) की संख्या पर केंद्रित है, वहीं दूसरा वर्गीकरण उनमें खुरों की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर केंद्रित होता है। मत्स्य पुराण जंतुओं को दिनचर, रात्रिचर या दोनों में उनकी गतिविधि के आधार पर उनका वर्गीकरण करता है। असंख्य जंतुओं का वर्णन उनके भोजन और आहार संबंधी आदतों के संदर्भ में किया गया है। अनेक प्रकार के जंतु स्रोतों से प्राप्त मांस के औषधीय और पोषणगत गुणों को आयुर्वेद के शास्त्रीय पाठ में वर्णन किया गया है। खाद्य जाल और खाद्य श्रृंखला का वर्णन इस विशेष सिद्धांत उल्लेख के साथ किया गया है कि जीव का एक रूप दूसरे जिव रूप के लिए भोजन होता है (जीवे जीवस्य जीवनम)।

प्राचीन भारत के लोग प्रकृति के निकट सानिध्य में रहते थे और वे जंतु जीवन के जिज्ञासु प्रेक्षक होते थे। किसी पाठ में इस बात का वर्णन मिलता है कि पौधों के औषधीय गुणों के संबंध में पहला सुराग जंतु व्यवहार से खोजा जा सकता है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में जंतु फार्माकोग्नासी अभ्यास के सबसे आरंभिक प्रमाणों में से एक दर्ज है। यह प्रमाण किसी बीमारी, पेट में कीड़े पड़ने या सर्पदंश से पीड़ित जंतु विशिष्ट प्रकार के ऐसे पौधों को खा लेते थे, जिनके अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि उन पौधों में औषधीय गुण मौजूद पाए जाते हैं।

आयुर्वेद ग्रंथों के पाठ जंतुओं पर परीक्षण डोज दिए जाने से पदार्थों की विषाक्तता की पुष्टि के बारे में भी वर्णन करते हैं। अतः ये ग्रंथ विष विज्ञान में जंतु प्रयोगों पर शायद सबसे आरंभिक पाठ हैं।

वर्तमान स्थिति

केरल जैसे राज्य में परंपरागत विशेषज्ञों के द्वारा आज भी गजायुर्वेद का अभ्यास किया जाता है। पशु चिकित्सा संबंधी हर्बल औषधियां भारत में दवा कंपनियों के द्वारा निर्मित और बिक्री की जाती हैं।

जैव विविधता और लोक परंपरा

प्राचीन लिखित साहित्य में हमारे देश की समृद्ध जैव विविधता, जलवायु और भूगोल संबंधी विभिन्नताओं पर बात की गई है। जैव विविधता में बदलावों हेतु छः प्रकार के मौसम के चरण के साथ विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों का भी वर्णन किया गया था। आयुर्वेद संबंधी साहित्य में इसका उल्लेख किया गया है

कि पौधों और जंतुओं के स्तर पर देश की जैव विविधता में भिन्नता पाई जाती है साथ ही साथ 12 योजन या 96 मील की अवधि के दौरान मानव जीवन तथा उनकी आदतों में भी बदलाव देखने को मिलते हैं। प्राचीन समय के भारतवासियों का यह अनुमान था कि लगभग 84 लाख योनियां या जीव प्रजातियां पृथ्वी पर जीवन के प्रतीक हैं। यह कितना रोचक है कि आधुनिक वैज्ञानिक पृथ्वी पर 87 लाख जीव प्रजातियों का अनुमान लगाते हैं जो उस प्राचीन मान्यता के कितना करीब ठहरता है। सुश्रुत का दावा था कि पृथ्वी में चारों ओर प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में हैं और जिनकी खोज अवश्य की जानी चाहिए। भारत में करीब 4600 मानवजातीय समुदाय पाए जाते हैं जो प्रकृति के निकट सानिध्य में रहते हैं और उन्होंने औषधि की लोक परंपराओं को संजोकर रखा हुआ है। ऐसा अनुमान है कि ऐसी दस लाख विशिष्ट लोक औषधियों का चलन इन मानवजातीय समुदायों में है, जो कि सरकार के भुगतान रजिस्टर पर मौजूद पराचिकित्साकर्मियों की संख्या से कहीं ज्यादा है।

6 भारत में गणित

जैसे–जैसे भारतीय खगोलविदों ने सूरज, चंद्रमा, ग्रहों और सितारों के मार्गों को लेकर गणना करने का प्रयास अधिक सटीकता के साथ करना शुरू किया या ग्रहण की घटनाओं की भविष्यवाणी करने के तरीकों को मापने की कोशिश की, वे स्वाभाविक रूप से गणितीय उपकरण विकसित करने के लिए प्रेरित हुए। खगोल विज्ञान और गणित को इस प्रकार शुरू में अविभाज्य माना जाता था, लेकिन आगे चलकर बाद वाला (गणित) पहले वाले (खगोल विज्ञान) का अनुचर जैसा हो गया। दरअसल, करीब 1400 ईसा पूर्व, वेदांगा ज्योतिष, खगोल विज्ञान का पहला मौजूदा अध्याय, दो अलग–अलग संस्करणों में विश्लेषित है:

जैसे मोर के सिर पर कलगी होता है या कोबरा के फण पर मणि सुशोभित होता है, ठीक उसी प्रकार, ज्योतिष (खगोल विज्ञान)/गणित, वेदांगा शास्त्र ख्ज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर ग्रंथ के ताज हैं। वास्तव में, ज्योतिष ने प्रारंभ में खगोल विज्ञान और गणित को संयुक्त रूप से वर्णित कियाय परंतु केवल बाद में खगोल विज्ञान का मतलब पृथक होकर आया (जिसमें ज्योतिष शामिल था)।

पहला चरण:

भारत की पहली नगर सभ्यता सिंधु या हड़प्पा (2600–1900 ईसा पूर्व), जिसमें उच्च कोटि की नगरीय योजना शामिल थी। मोहनजोदड़ो के एक्रोपोलिस (ऊपरी नगर), धौलवीरा (कच्छ के रन) या कालीबंगन (राजस्थान) शहर की योजना किलेबंदी और सड़कों को आम तौर पर मुख्य दिशाओं के साथ मेल और सही कोणों को दिखाने से उस जमाने की नगर योजना का पता चलता है। प्रमुख संरचनाओं के आयामों में विशिष्ट अनुपात भी इंगित किए गए हैं। इस मूलभूत ज्ञान का तात्पर्य है कि यह सब मूल ज्यामितीय सिद्धांतों और कोणों को मापने की क्षमता पर केंद्रित रहे हैं, जो खोजे गए खोल के बने कुछ बेलनाकार कुतुबनुमा (कम्पास) 45 डिग्री की कमी के साथ पुष्ट किए गए हैं। इसके अलावा, व्यापारिक उद्देश्यों के लिए हड़प्पा ने वजन की मानकीकृत प्रणाली विकसित की जिसके शुरुआत में, प्रत्येक वजन पिछले से दोगुना था और छोटे वजन का मूल्य 10,100 या 1,000 गुना था। इससे पता चलता है कि हड़प्पा न केवल इस तरह के कारकों से मात्रा को गुणा कर सकते थे, बल्कि गुणकों की दशमलव प्रणाली की ओर उनका झुकाव भी था। हालांकि, हड़प्पा द्वारा उपयोग की जाने वाली संख्या प्रणाली के बारे में विद्वानों के बीच कोई समझौता नहीं है। भारत के सबसे प्राचीन ग्रंथों के चार वेदों की तारीखों पर कोई विद्वानों की सहमति नहीं है, सिवाय इसके कि वे कम से कम 3,000 साल से अधिक पुराने हैं। हम उन संख्याओं को अलग अलग नामों से जानते है, विशेष रूप से दसियों, सैकड़ों और हजारों के गुणक, यजुर्वेद में लाख संख्या को पारध कहा गया है। (तुलनात्मक रूप से, बाद में, ग्रीकवासियों ने

केवल 10,000 तक संख्याएं नामित कीं, जो कि 'असंख्य' थीं और केवल 13वीं शताब्दी ईसा पूर्व में यूरोप में 'लाखों' की अवधारणा होगी।) वेदों पर टिप्पणी करने वाले ब्राह्मण चार अंकगणितीय परिचालनों के साथ–साथ बुनियादी भिन्नताओं के भी जानकार थे।

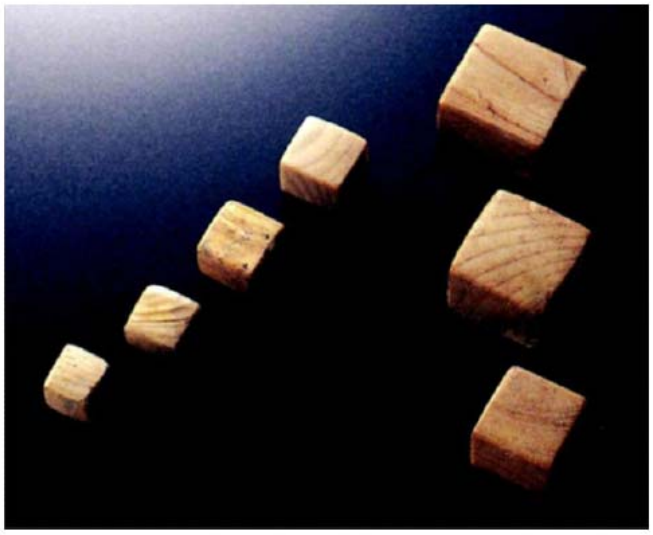

धौलावीरा, गुजरात से प्राप्त चर्ट से बने कुछ हड़प्पाकालीन वजन के माप (आभारः एएसआई)

प्रारंभिक ऐतिहासिक कालः

गणित के साथ स्पष्ट रूप से व्यवहार करने वाले पहले भारतीय ग्रंथों में आठवीं और छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच रचित सुल्व सूत्र शामिल हैं। वे संस्कृत में अत्यधिक संक्षिप्त सूत्र शैली में लिखे गए थे और असल में अग्नि वेदियों के निर्माण के लिए मैनुअल की तरह थे (जिसे कैटिस या वेदिस कहा जाता है)। ये विशिष्ट रिवाजों के लिए लक्षित थे और इन्हें ईंटों से बनाया गया था। वेदों में अक्सर 200 ईंटों की पांच परतें होती थीं, पृथ्वी की प्रतीकात्मक निम्नतम परत और उच्चतम, स्वर्गय वे इस प्रकार ब्रह्मांड के प्रतीकात्मक प्रतिनिधि थे।

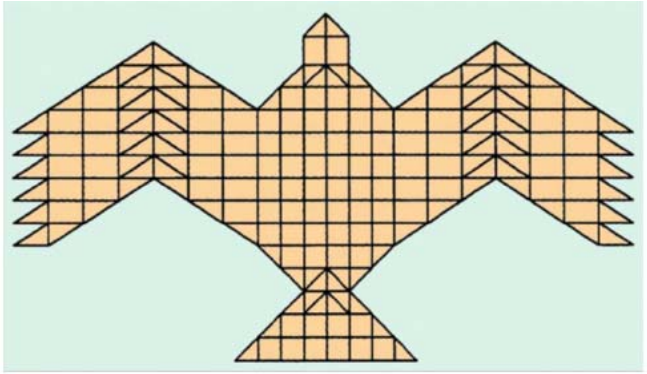

सुल्व सूत्र में वर्णित स्यानासिती या फाल्कन आल्टर के एक प्रकार की पहली परत, जो छः आकार ओंति के 200 ईंटों से बनी थी और ये सभी एक विशिष्ट कुल क्षेत्रफल के योग के समतुल्य थीं

क्योंकि उनके कुल क्षेत्र को सावधानी से परिभाषित करने की आवश्यकता है जिसे जटिल ज्यामितीय गणनाओं का पालन करके विशेष आकार की ईंटों से बनाया गया था। उदाहरण के लिए, सुल्व सूत्र, ज्यामिति के शुरुआती ग्रंथ हैं, तथाकथित पायथागोरस प्रमेय (जिसे वास्तव में 300 ईसा पूर्व के आसपास यूक्लिड द्वारा तैयार किया गया था) के ज्यामितीय रूप में, एक सामान्य कथन प्रदान करते हैं।

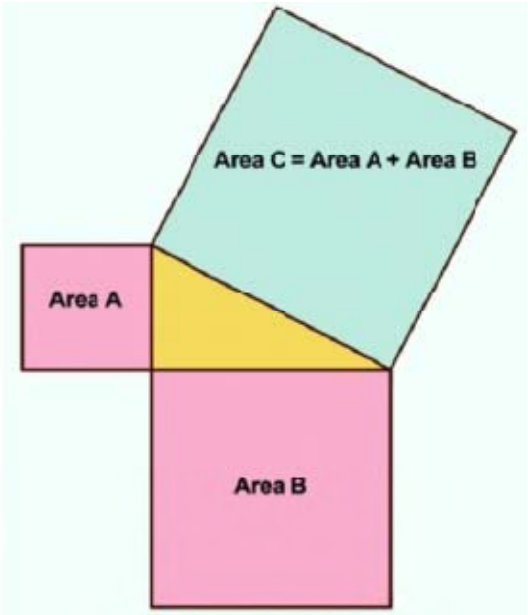

सुल्व सूत्र में अपये जाने वाले पायथागोरस प्रमेय की ज्यामितीय अभिव्यक्ति

उन्होंने दो अन्य वर्गों के जोड़ या घटाव के परिणामस्वरूप या किसी दिए गए वृत्त के समान क्षेत्र होने के परिणामस्वरूप और एक चक्र के चौराहे या वर्ग के चक्रण की शास्त्रीय समस्याओं के परिणामस्वरूप जांच के लिए विस्तृत ज्यामितीय विधियों का विश्लेषण किया। (जो π की अनुवांशिक प्रकृति के कारण, सटीक ज्यामितीय समाधान नहीं हो सकता है, बल्कि यह केवल अनुमानित हो सकता है)। ये सभी प्रक्रियाएं विशुद्ध रूप से ज्यामितीय थीं परंतु इनके परिणाम रोचक रहे। उदाहरण के लिए, √2 को एक तर्कसंगत अनुमान दिया गया था जो पांचवें दशमलव के लिए सही होता है।

$$\sqrt{2} \approx 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{(3)(4)} - \frac{1}{(3)(4)(34)}$$

सुल्व सूत्र ने रैखिक इकाइयों की एक प्रणाली को भी आरंभ किया था, जिनमें से ज्यादातर मानव शरीर के आयामों पर आधारित थी, जिन्हें बाद में थोड़ा संशोधित किया गया और यह पूरे भारत में पारंपरिक ईकाइयों का सूचक बन गया। ये मुख्य ईकाइयां थीं:

14 औंस बाजरा = 1 अंगुल (एक अंक)

12 अंगुल = 1 बित्ता (हाथ का नाप, वितस्ति)

15 अंगुल = 1 पाद (बड़ा पैर)

24 अंगुल = 1 अर्टानी (या बनइपज, बाद में हस्त)

30 अंगुल = 1 परिक्रमा (या कदम)

120 अंगुल = 1 पुरुषा (या उसके हाथ से एक आदमी की ऊंचाई. उसके सिर तक फैला हुआ)

कुछ शताब्दियों पश्चात, पिंगल के चांदसूत्र में एक संस्कृत छंद वर्णित था, जिसको वैदिक भजनों के मीटर को वर्गीकृत करने के लिए एक द्विआधारी प्रणाली के साथ उपयोग किया गया, जिनके अक्षरों में प्रकाश (लघु) या भारी (गुरु) हो सकता हैय गणना के नियमों को एक–से–एक संबंधों में संख्याओं के लिए, बाइनरी नोटेशन में व्यक्त प्रकाश और भारी अक्षरों के सभी संभावित संयोजनों से संबंधित करने के लिए तैयार किया गया था, जो निश्चित रूप से दोनों तरीकों से काम करते थे। उन गणनाओं के दौरान, पिंगल ने शून्य के प्रतीक को संदर्भित किया।

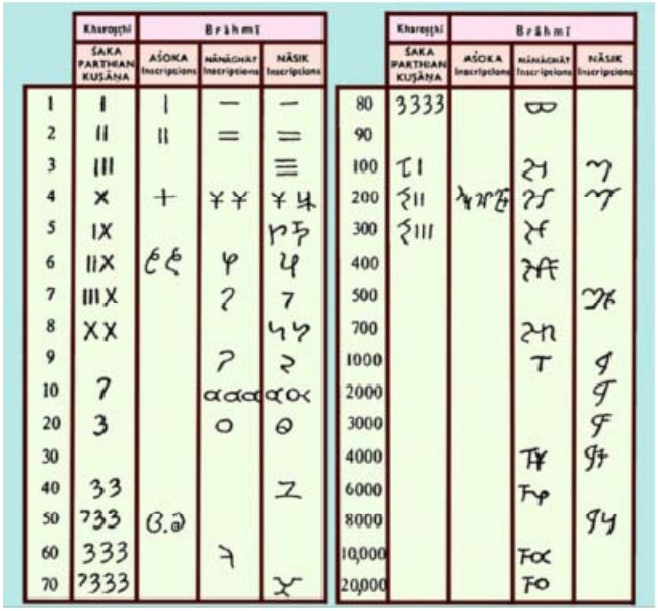

तीसरी सदी ईसा पूर्व से लेकर पहली ईस्वी सदी के दौरान के आरंभिक ग्रंथों में प्रकट हुई संख्याएं। ध्यान रखें कि तब तक वे दशमलव स्थिति प्रणाली का उपयोग नहीं करते थे। उदाहरन के लिए पहले स्तम्भ में 40 को '20, 20' और 60 को '20, 20, 20' के रूप में लिखा गया है। (इंसा से अनुरूपित)

लगभग उसी समय, जैन ग्रंथों ने विशाल संख्याओं को ब्रह्माण्ड संबंधी अटकलों में शामिल किया और ज्यामिति, संयोजन तथा क्रम परिवर्तन, अंश, वर्ग और घन शक्तियों के साथ निपटायाय वे भारत में अज्ञात (यवत–तावत) की धारणा के साथ आने वाले पहले व्यक्ति थे, और $\sqrt{10}$ के बराबर π का मूल्य पेश किया, जो कि कुछ सदियों तक भारत में लोकप्रिय रहा। विशेष रुप से सम्राट अशोक के शासन काल के कुछ शताब्दी ईसा पूर्व, भारत में ब्राह्मी लिपि के आगमन पर किसी भी दशमलव स्थिति मूल्य के बिना हम पहले अंकों पर आते हैं। ये अंक आकार में विकसित होंगेय आखिरकार अरब विद्वानों द्वारा हासिल किया गया, वे आगे बढ़ने के साथ, यूरोप में और हमारे आधुनिक 'अरबी' अंक बने।

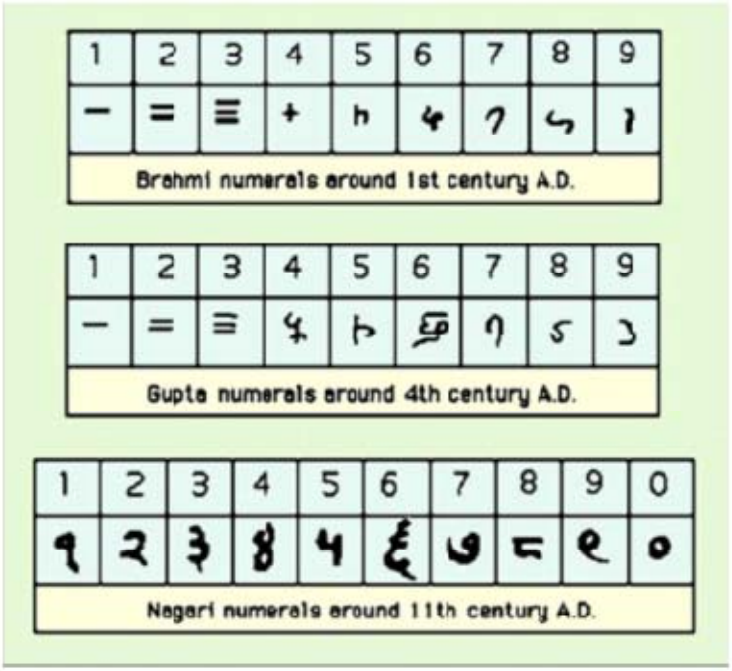

अभिलेखों द्वारा प्रमाणित भारतीय संख्याओं का विकास। पहली लिपि 'ब्राह्मी' का उपयोग सम्राट अशोक द्वारा उनके शीला लेखों में किया गया था, अंतिम लिपि, देवनागरी लिपि की पूर्ववर्ती है। (जे. जे. ओ' कोनोर एंड ई. एफ. राबर्टसन द्वारा अनुरूपित)

शास्त्रीय कालः

खगोल विज्ञान के साथ, भारतीय गणित ने भारत की शास्त्रीय अवधि के दौरान अपना स्वर्ण युग देखा। यह अवधि कमोबेश गुप्त काल के आस पास की थी जो लगभग 400 ईस्वी का कालखंड था।

उस अवधि से कुछ समय पहले, अंक संख्या के पूर्ण स्थान मूल्य प्रणाली संख्याओं को नोट करने के हमारे 'आधुनिक' तरीके, उपरोक्त या रोमन संख्याओं के रूप में वर्णित गैर–स्थितिगत प्रणालियों के विपरीत नौ अंकों के साथ शून्य को एकीकृत किया गया था। यह एक रोचक तथ्य है कि हम कभी नहीं जान पाएंगे कि किसने यह कल्पना की थी। सबसे पहले ज्ञात संदर्भों में से यह बौद्ध दार्शनिक वासुमित्र द्वारा पहली शताब्दी ईसा पूर्व का काम है और यह 458 ईस्वी में लिखा गया जैन ब्रह्माण्ड कार्य लोकविभाग में अधिक स्पष्ट रूप से काम किया गया। जल्द ही इसे पूरे भारत में अपनाया गया और बाद में अरबों द्वारा यूरोप ले जाया गया। यह विज्ञान के विश्व इतिहास में एक प्रमुख मील का पत्थर था, क्योंकि इसने गणित में विकास को तेज गति प्रदान की थी।

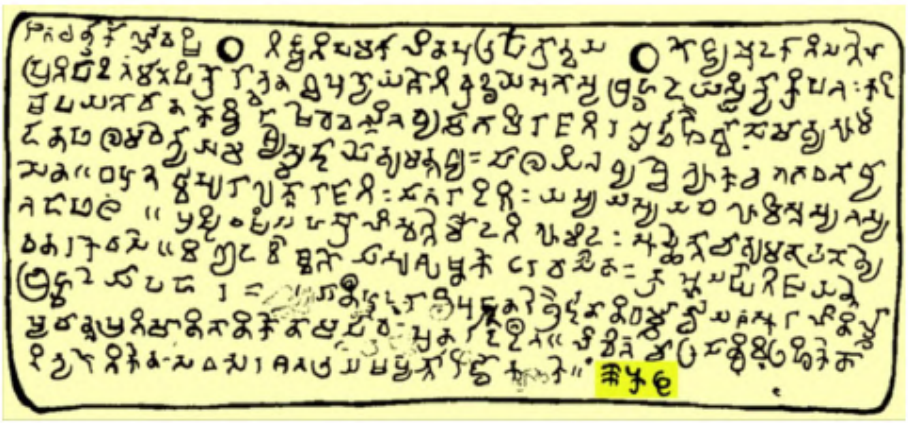

संख्यात्मक संकेत चिह्नों के स्थानमान प्रणाली के साथ लिखे गए एक प्रथम सत्यापित शिलालेख। वह तिथि एक स्थानीय युग के 346 के रूप में पढ़ी जाती है जो 594 ईस्वी को दर्शाती है।
(जार्जेज इफराह से रूपांतरित)

लगभग 499 ईस्वी में आर्यभट्ट प्रथम (जन्म 476 ईसा पूर्व) आज के पटना शहर के पास रहते थे, उन्होंने अपने समय में पहला ग्रंथ आर्यभटीय लिखा, जो उनके काल खंड में गणित और खगोल विज्ञान के ज्ञान की व्यवस्थित समीक्षा करता है। इसका सार बहुत संक्षिप्त (केवल 121 छंद) है जो प्रायः अस्पष्ट है, लेकिन 6वीं और 16वीं शताब्दी के बीच, इसकी विषयवस्तु पर व्याख्या करने और निर्माण करने के लिए बारह प्रमुख टिप्पणियां लिखी गई थीं। अंततः इसे 800 ईसा पूर्व (जिज अल–अरबाज शीर्षक के तहत) में अरबी में अनुवादित किया गया, जिसने बदले में 13वीं शताब्दी में लैटिन अनुवाद का नेतृत्व किया (जिसमें आर्यभट्ट को 'अदब्यूरियस' कहा जाता था)।

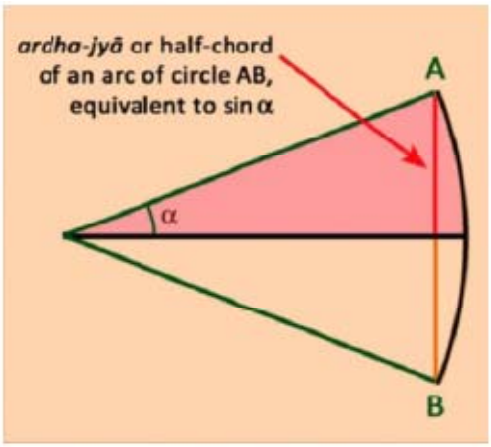

आर्यभट ने अर्ध जीवा (हाफ कार्ड) की अवधारण को आरंभ किया था, जो कि ग्रीक त्रिकोणमिति पर एक महत्वपूर्ण बढ़त थी। इसे वृत्त की एक चाप की पूरी जीवा माना जाता था।

आर्यभट्ट के गणितीय तथ्यों का विश्लेषण साइनों की एक बहुत ही सटीक तालिका से होती है और त्रिभुज के क्षेत्र में π (3.1416, + 'अनुमानित' कहा जाता है) के लिए समान सटीक मूल्य, परिमित अंकगणितीय प्रगति की मात्रा, वर्ग और घन मूल के निष्कर्षण के लिए अंकगणित के सिद्धांत थे और दो अज्ञातों के साथ पहले कोणों के अनिश्चित समीकरणों को हल करने के लिए कुट्टक (पीसना) नामक एक विस्तृत एल्गोरिदमः ax+c¾by भी था। 'अनिश्चित' से इसका मतलब है कि हल अकेले पूर्णांक होना चाहिए, जो नियम हैं, प्रत्यक्ष बीजगणितीय तरीकों से बाहरय ऐसे समीकरण खगोलीय समस्याओं में सामने आए, उदाहरण के लिए किन्हीं दिए गए वर्षों में किसी ग्रह की परिक्रमा की पूरी संख्या की गणना करना।

यह उल्लेखनीय है कि इनके महान योगदान के बावजूद, आर्यभट्ट त्रुटिमुक्त नहीं हैं। पिरामिड और एक प्रकाशवर्ष की मात्रा के लिए इसके सूत्र गलत थे और बाद में उन्हें ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य द्वारा क्रमशः संशोधित किया गया।

आर्यभट्ट के बाद का शास्त्रीय काल

598 ईस्वी में पैदा हुए ब्रह्मगुप्त गणित में काफी उपलब्धियों के साथ एक बड़ा नाम था। अपने ब्रम्हपुत्र सिद्धान्त में, उन्होंने चक्रीय चतुर्भुज (यानी, एक वृत्त में अंकित) का अध्ययन किया और 17वीं शताब्दी के करीब यूरोप में फिर से एक सूत्र खोजा (17वीं शताब्दी यूरोप में फिर से खोजा गया सूत्र): यदि ।ठब्क

की लंबाई के सिरे a, b, c और d हैं तथा अर्ध परिधि s (¼a + b +c +d)/2 है, तो क्षेत्रफल निम्न के द्वारा दिया जाता हैः

क्षेत्रफल ABCD [√[(s – a)(s –b)(s – c) (s – a)]

ब्रह्मगुप्त ने साहसपूर्वक नकारात्मक संख्याओं की धारणा पेश की और गणितीय अनंत संख्या के मूल्य 'जिसे कि स्थान द्वारा विभाजित किया गया है' को परिभाषित करने के लिए प्रेरित किया, खा शून्य उनके कई नामों में से एक है। उन्होंने अभिन्न समाधान के लिए भावना कलन विधि की खोज की। उन्होंने भावना कलन विधि को दूसरे क्रम के अनिश्चित समीकरणों (जिसे वर्ग प्रकृति कहा जाता है) के अभिन्न समाधान के लिए Nx2 + 1 = y2 के रूप में खोजा। वह कई तरह से आधुनिक बीजगणित के संस्थापकों में से एक थे और उनके कार्यों का अनुवाद फारसी में किया गया था और बाद में लैटिन भाषा में भी किया गया।

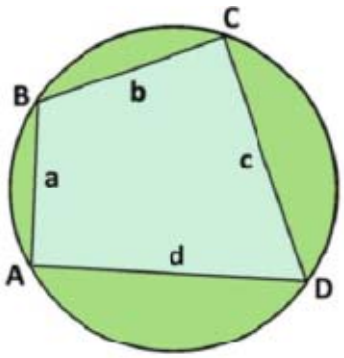

बख्शाली पांडुलिपि से लिए गए कुछ पन्ने (विकिपीडिया)

7वीं शताब्दी के आसपास, बख्शाली पांडुलिपि, जिसे गांव (अब उत्तरी पाकिस्तान में) के नाम पर रखा गया था, जहां यह 1881 में सनोबर की 70 पत्तियों पर लिखा गया था। ये हमें समय की विस्तृत गणितीय गणना तकनीकों में दुर्लभ अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं जिसके विशेष अंश में प्रगति, समय के उपाय, वजन और धन में शामिल है। हैं युग के अन्य शानदार गणितज्ञों में ब्रह्मगुप्त के समकालीन भास्कर प्रथम शामिल थे, जिन्होंने त्रिकोणमिति में श्रीधर और महावीर के साथ मिलकर इस क्षेत्र में अग्रणी काम कियाथा (साइन फंक्शन के लिए उल्लेखनीय सटीक तर्कसंगत अनुमान लगाने का प्रस्ताव)। अंत में, एक जैन विद्वान ने जो 9वीं शताब्दी में राष्ट्रकूट राजा (आज के कर्नाटक में) के दरबार में रहते थे, गणित का पहला सिद्धांत लिखा जो खगोल विज्ञान पर एक पाठ के हिस्से के रूप में नहीं था। इसमें, महावीर ने सीमित श्रृंखला, अंशों, क्रम परिवर्तनों और संयोजनों के विस्तार (पहली बार, क्षेत्र में कुछ मानक सूत्रों के कामकाज), दो अज्ञातों के साथ रैखिक समीकरण, वर्गबद्ध समीकरण और

उल्लेखनीय रूप से निकटतम अनुमान के साथ वर्णित अन्य महत्वपूर्ण परिणामों के बीच, एक अंडाकार की परिधि के लिए एक उल्लेखनीय निकट अनुमान लगाया था।

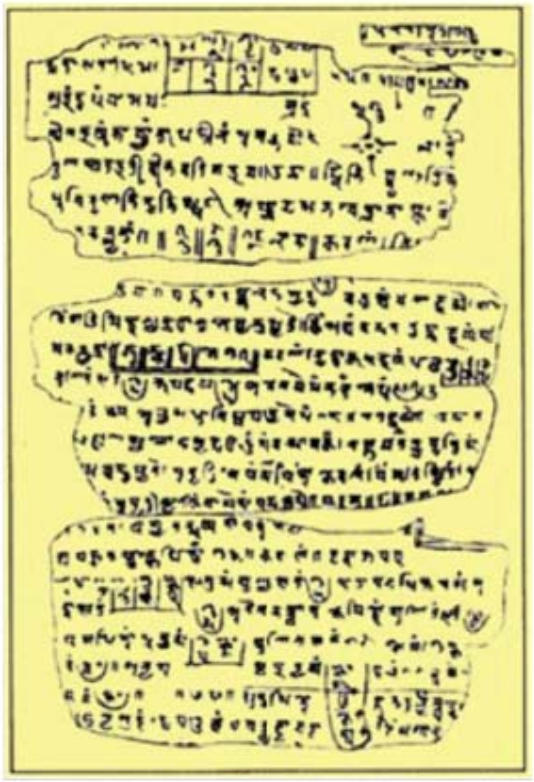

ग्राफ 0 से 180 डिग्री (नीले रंग में) से साइन फंक्शन के लिए भास्कर प्रथम की तर्कसंगत अनुमान की उच्च सटीकता को दर्शाता है। दो वक्रों को अलग करने के लिए साइन फंक्शन (लाल रंग में) को 0.05 तक ऊपर स्थानांतरित किया जाना था। (सौजन्यः आईएफआईएच)

भास्कराचार्य द्वितीय, जिसे अक्सर भास्कराचार्य के नाम से जाना जाता है, 12वीं शताब्दी में रहते थे। उनकी सिद्धांत शिरोमणि ने क्यूबिक और द्विवार्षिक समीकरणों के संबंध में एक नया अध्याय जोड़ा। उन्होंने ब्रह्मगुप्त के काम पर केंद्रित अनिश्चित समीकरणों पर एक और अधिक प्रभावी कलन विधि, चक्रवला (या 'चक्रीय विधि') उत्पन्न करने के लिए बनायाय उदाहरण के लिए, उन्होंने$61x2 + 1 = y2$को दिखाया कि $x= 226153980] y = 1766319049$के सबसे छोटे अभिन्न मान हैं (दिलचस्प रूप से, पांच सदियों बाद, फ्रांसीसी गणितज्ञ फर्मट ने अपने कुछ समकालीन विद्वानों को सामान समीकरण की चुनौती पेश की)। भास्कराचार्य ने सीमित मात्रा की सीमा के रूप में एकीकरण की धारणा को समझ लियाः उदाहरण के लिए, वह अपने क्षेत्र और मात्रा की गणना करने में सक्षम थे, उदाहरण के लिए, कभी भी छोटे गोले में एक और वृत्त खींचकर। वह तत्काल गति (तात्कालिक गति) की धारणा पर चर्चा करके

व्युत्पन्न की आधुनिक धारणा के करीब आए और समझाया कि साइन कार्य का व्युत्पन्न कोसाइन के आनुपातिक होता है।

भास्कराचार्य के सिद्धांतशिरोमणि का पहला भाग लीलावती नामक महिला के नाम से रखा गया है जिससे भास्कराचार्य अपनी गणितीय समस्याओं को कविताई भाषा में पूछा करते थे। समग्र भारत में, गणित के छात्रों के बीच लीलावती इतनी लोकप्रिय हो गई कि चार सदियों के बाद, अकबर के दरबारी कवि द्वारा इसे फारसी भाषा में अनुवाद किया गया था।

केरल संबंधी गणितीय विद्यालय

खगोल विज्ञान के साथ, गणित का केरल स्कूल में पुनरुत्थान हुआ, जो 14वीं से 17वीं शताब्दी तक वहां विकसित हुआ। इसके अग्रदूत, माधव (1340–1425) ने साइन और कोसाइन की क्रियाओं (सामाजिक न्यूटन श्रृंखला) के लिए शक्ति श्रृंखला का विस्तार किया और π के इस मौलिक विस्तार को विश्लेषित करके कैलकुस की कुछ रखीः

इसे ग्रेगरी–लेब्निटज श्रृंखला के रूप में भी जाना जाता है, लेकिन एक दिन इसे भारतीय गणितज्ञ माधव के नाम पर रखा जाना चाहिए। उन्होंने πके लिए एक और तेजी से अभिसरण श्रृंखला का प्रस्ताव दिया थाः

जिसने उन्हें πको दशमलव के 11 स्थानों तक गणना करने में सक्षम बनाया। नीलकंठ सोमयाजी (1444–1545 ईसा पूर्व) और ज्येष्ठदेव (1500–1600 ईसा पूर्व) इस तरह के परिणामों पर एकमत हुए और उन्होंने कैलकुलस के भारतीय सिद्धांतों को विस्तार से समझाया। उदाहरण के लिए, द्विपदीय विस्तार पर काम कियाः

भारतीय गणित की विशेषताएं

अन्यत्र के रूप में, भारत में गणित व्यावहारिक जरूरतों से उत्पन्न हुआः सटीक विनिर्देशों के अनुसार अग्नि वेदियां बनाना, ग्रहों की गति का पता लगाते रहना, ग्रहण की भविष्यवाणी करना आदि। लेकिन भारत का दृष्टिकोण अनिवार्य रूप से व्यावहारिक रहाः ग्रीक की तरह एक स्वैच्छिक विधि विकसित करने के बजाय (प्रसिद्ध रूप से ज्यामिति के लिए यूक्लिड द्वारा पेश किया गया), यह सूत्रों और कलन विधि प्राप्त करने पर केंद्रित था जो सटीक और विश्वसनीय परिणाम प्रदान करते थे।

फिर भी, भारतीय गणितज्ञ अक्सर अपने परिणामों के लिए तर्कसंगत कठोर औचित्य प्रदान करते थे, खासकर लंबे ग्रंथों में। दरअसल, अपने ग्रंथों में भास्कराचार्य कहते हैं कि सबूत प्रस्तुत करना (उपपत्ती) शिक्षण परंपरा का हिस्सा है और ज्येष्ठदेव युक्ति भाषा में काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं। दूसरी तरफ, छोटे ग्रंथ, अक्सर सबूत के विकास के साथ विभाजित किए जा सकते हैं। उसी तरह, एस. रामानुजन ने कई महत्वपूर्ण प्रमेय प्रस्तुत किए लेकिन उन्हें दूसरों को प्रमाण देने में समय नहीं लगता था!

क्या उन विशिष्टताओं ने भारतीय गणित के आगे विकास को सीमित किया है, यह बहस के लिए एक मुक्त मुद्दा है। विज्ञान के इतिहासकारों द्वारा अन्य कारकों पर चर्चा की गई है, जैसे केंद्रों के ऐतिहासिक व्यवधान और सीखने के नेटवर्क (विशेष रूप से उत्तर भारत में), सीमित शाही संरक्षण, या विजय प्राप्त आवेग की अनुपस्थिति (जो यूरोप में, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को बढ़ावा देती है)। जैसा भी हो, इस क्षेत्र में भारत का योगदान किसी भी मानक से बड़ा है। अरब के माध्यम से, अंक संख्या के दशमलव स्थान–मूल्य प्रणाली से लेकर बीजगणित एवं विश्लेषण के कुछ मूल सिद्धांतों तक अनेक भारतीय योगदान के प्रभाव यूरोप तक पहुंचे थे और आधुनिक गणित के विकास के महत्वपूर्ण अवयव बने।

7 भारत में धातु विज्ञान

प्रौद्योगिकी को आज प्रायोगिक विज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया है, लेकिन शुरुआती मानव विकसित प्रौद्योगिकी, जैसे पत्थर के काम, कृषि, पशुपालन, मिट्टी के बरतन, धातु विज्ञान, कपड़ा निर्माण, मनका बनाने, लकड़ी की नक्काशी, गाड़ी बनाने, नाव बनाने और नौकायन आदि जैसी बातों के महत्व को मुश्किल से कोई विज्ञान नकार सकता है। अगर हम आस–पास की दुनिया के बदलते स्वरूप को प्रौद्योगिकी की दृष्टि से परिभाषित करते हैं, तो हम पाते हंन कि भारतीय उपमहाद्वीप में पहले पत्थर का औजार बीस लाख से अधिक वर्षों पहले से बनाया जाता रहा है! इस पूरे युग की यदि बात की जाए तो लगभग 10,000 साल पहले 'नियोलिथिक क्रांति' ने सिंधु और गंगा घाटियों के भूभाग में कृषि का विकास देखा, जिसने बदले में बर्तन, जल प्रबंधन, धातु उपकरण, परिवहन इत्यादि की आवश्यकता को जन्म दिया।

कृषि के अलावा, धातु विज्ञान ने मानव समाज में महत्वपूर्ण बदलाव लाए, क्योंकि इससे हथियारों, औजारों और उपकरणों की एक पूरी नई श्रृंखला का निर्माण हुआ। इनमें से कुछ पहले पत्थर से बने थे, यह सच है, लेकिन वे ठोस होने के साथ भारी भी थे। धातु, कीमती हो या न हो, गहने के लिए वह एक प्रमुख सामग्री है और इस प्रकार धातुओं के होने से हमारा सांस्कृतिक जीवन समृद्ध हुआ है।

धातु विज्ञान को निष्कर्षण, शुद्धिकरण, मिश्र धातु और धातुओं के उपयोग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आज कुछ 86 प्रकार की धातुएं ज्ञात हैं, लेकिन उनमें से अधिकतर पिछले दो शताब्दियों में खोजी गई थीं। 'पुरातनता की सात धातुएं', सोने, तांबा, चांदी, सीसा, टिन, लौह और पारा, जिन्हें कभी–कभी खोज के आधार पर जाना जाता है। 7,000 वर्ष पहले से, भारत में धातुकर्म कौशल की एक उच्च परंपरा विद्यमान रही है। आइए इनके कुछ प्रमाणों को देखें।

हड़प्पा सभ्यता से पहले और उस दौरान धातु विज्ञानः

भारतीय उपमहाद्वीप में धातु का पहला प्रमाण बलुचिस्तान में मेहरगढ़ से आता है, जहां एक छोटे अकार की तांबे की मोती लगभग 6000 ईसा पूर्व पायी गयी थीय हालांकि यह देशी तांबा माना जाता है, न कि अयस्क से निकाली गई गंध धातु। तांबा धातु विज्ञान के विकास को 1500 वर्षों तक इंतजार करना पड़ा, यह वह समय था, जब ग्रामीण समुदाय व्यापार नेटवर्क और प्रौद्योगिकियों का विकास कर रहे थे जो सदियों बाद, हड़प्पा नगरों को बनाने के लिए उन्हें सहयोग देते थे।

पुरातत्व विभाग द्वारा की गयी खुदाई से पता चला है कि हड़प्पा काल के धातु सुनारों ने अरावली पहाड़ियों, बलुचिस्तान या उससे परे तांबा अयस्क (या तो सीधे या स्थानीय समुदायों के माध्यम से) प्राप्त किया था। उन्हें जल्द ही पता चल गया कि तांबा में टिन को मिलाने से कांस्य धातु तैयार होता है, तांबे की तुलना में यह धातु कठोर होता है और संक्षारण प्रतिरोधी भी है। चाहे जानबूझकर अयस्क में जोड़ा गया हो या पहले से मौजूद हो, विभिन्न 'अशुद्धियों' (जैसे कि निकल, आर्सेनिक या शीशा) ने हड़प्पा के कांस्य को और मजबूत करने में सक्षम बनाया, उस बिंदु पर जहां कांस्य चश्मा पत्थरों को तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था! मिश्र धातु श्रृंखला में कांस्य, टिन में 1% –12%, आर्सेनिक में 1% –7%, निकल में 1% – 9% और शीशे में 1% – 32% पाया गया है। तांबे या कांस्य को आकार देने में उसे बनाना, डूबाना, उठाना, ठंडा करना, धातु पर पानी चढ़ाना, कील से जोड़ना और जोड़ जैसी तकनीकें शामिल हैं।

हड़प्पा द्वारा उत्पादित धातु कलाकृतियों में से, नुकीली वस्तुओं के अलावा, भाले, तीर, कुल्हाड़ी, छैनी, दरांती, ब्लेड (चाकू के साथ–साथ रेजर), सुई, हुक, जार, बर्तन और पैन जैसी वस्तुओं का उल्लेख है। जैसे कांस्य दर्पण, उनके चेहरे की तरह थोड़ा अंडाकार आकार लिए हुए थे और एक तरफ अत्यधिक पॉलिश भी हुआ था। हड़प्पा कारीगरों ने दांतों और ब्लेड सेट के आस–पास के हिस्से को वैकल्पिक रूप से ठीक से देखा, जिसे रोमन काल तक अज्ञात माना गया था।

इसके अलावा, कई कांस्य मूर्तियों या मनुष्यों (उदाहरण के लिए प्रसिद्ध नृत्य लड़की') और जानवरों (भेंड़, हिरण, बैल ...) हड़प्पा के स्थल से निकाले गए हैं। उन मूर्तियों को मोम प्रक्रिया द्वारा डाला गया। प्रारंभिक मॉडल मोम से बना था, फिर मिट्टी के साथ मोटे तौर पर लेपित करके एक बार निकाल दिया गया (जिसके कारण मोम पिघल गया), मिट्टी एक मोल्ड में कड़ी हो गई, जिसमें पिघला हुआ कांस्य बाद में डाला गया।

मोम प्रक्रिया द्वारा बनाई गई 'नृत्य करती लड़की' (मोहनजोदड़ो)य मोहनजोदड़ो से एक कांस्य पैर और घुंघरूंय और एक बैल (कालिबंगन) की कांस्य मूर्ति। (आभारः एएसआई)

हड़प्पा ने सोने और चांदी (साथ ही साथ उनके संयुक्त मिश्र धातु, इलेक्ट्रम) का इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के गहने जैसे लटकन, चूड़ियाँ, मोती, अंगूठी या हार को बनाने के लिए किया जाता था, जो आम तौर पर चीनी मिटटी या कांस्य के बर्तनों में पाए जाते थे। जबकि सोने को शायद सिंधु नदी के पानी के अंदर की सतह से प्राप्त किया गया था, चांदी शायद गैलेना, शीशा गंधक से निकाला गया था।

हड़प्पा के बादः

हड़प्पा सभ्यता के दौरान और उसके बाद, अभी भी अस्पष्ट लेखकत्व की 'संचित तांबा' संस्कृति ने मध्य और उत्तरी भारत में बड़ी मात्रा में तांबे के औजारों का उत्पादन किया। बाद में, शास्त्रीय युग में, तांबा–कांस्य सुनारों ने कला के अनगिनत टुकड़े की आपूर्ति की। आइए सुल्तानगंज (भागलपुर जिला, बिहार, अब बर्मिंघम संग्रहालय में) में 500 से 700 सीई के बीच बुद्ध की विशाल कांस्य प्रतिमा का उल्लेख करें, जो 2.3 मीटर ऊंचा, 1 मीटर चौड़ा, और 500 किलोग्राम वजन का था और यह उसी मोम तकनीक द्वारा बनाया गया था जिसे हड़प्पा सभ्यता के समय लगभग तीन सहस्राब्दी पहले इस्तेमाल किया गया था। तो तमिलनाडु में बाद में हजारों मूर्तियां (और आज तक) चोल अवधि की सुंदर नटराज मूर्तियों का निर्माण प्रसिद्ध कांस्य धातु से हुआ था। बेशक, दैनिक उपयोग के सभी प्रकार की कांस्य वस्तुओं का उत्पादन जारी रखा गया, उदाहरण के लिए, आज केरल में अत्यधिक पॉलिश वाले कांस्य दर्पण अभी भी मौजूद हैं, जैसे

कि वे हड़प्पा काल में थे। तो तमिलनाडु में बाद में हजारों मूर्तियां (और आज तक) चोल अवधि की सुंदर नटराज मूर्तियों जैसे अन्य प्रसिद्ध ब्रोंज के बीच बनाई गई थीं।

बुद्ध की एक विशाल कांस्य मूर्ति, सुल्तानगंज (आभारः विकिपीडिया)

भव्य चोल कांस्य मूर्तियांः महालक्ष्मी या नटराज (आभारः माइकल डैनिनो)

yksg /kkrq foKku%

जबकि सिंधु सभ्यता कांस्य युग से संबंधित था, इसके आगे गंगा सभ्यता, जो पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व में उभरा, लौह युग से संबंधित था। लेकिन गंगा घाटी के मध्य भागों और पूर्वी विंध्य पहाड़ियों में हाल की खुदाई से पता चला है कि 1800 ईसा पूर्व संभवतः लोहा का उत्पादन हुआ था। इसका उपयोग लगभग 1000 ईसा पूर्व से व्यापक हो गया और हम बाद के वैदिक ग्रंथों में 'अंधेरे धातु' (कृष्णस) का उल्लेख देखते हैं, जबकि शुरुआती ग्रंथों (जैसे ऋग्वेद) केवल अयास के बारे में बात करते हैं, जो कि अब स्वीकार्य हो चुका है और जिसे तांबे या कांस्य के साथ संदर्भित किया गया था। क्या भारत के अन्य हिस्सों ने गंगा क्षेत्र से लौह प्रौद्योगिकी सीखी है या स्वतंत्र रूप से इसके साथ आना आसान नहीं है। हालांकि, यह स्पष्ट है कि भारत में तांबा–कांस्य और लौह प्रौद्योगिकियों की शुरुआत एशिया माइनर (आधुनिक तुर्की) और काकेशस के साथ व्यापक रूप से मेल खाती है, लेकिन यह एक स्वतंत्र विकास था, आयात नहीं।

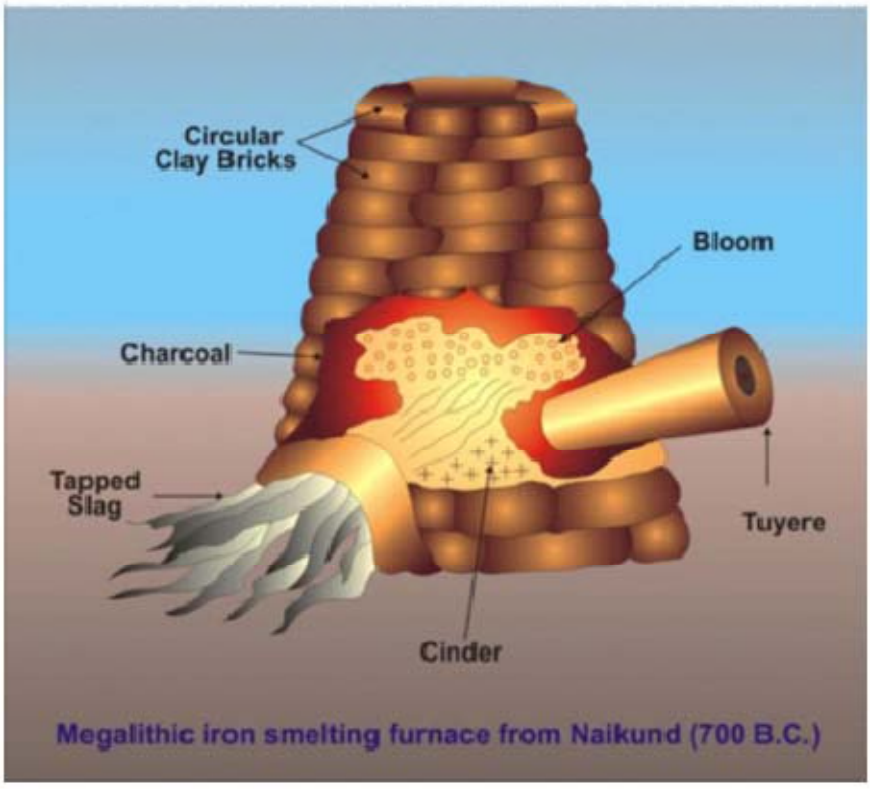

<u>पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व में एक आम लोहे की गंध भट्ठी (आभारः राष्ट्रीय विज्ञान केंद्र, नई दिल्ली)</u>

वुट्ज स्टीलः

इसके बजाए, भारत में यह एक प्रमुख नवप्रवर्तनक था, जिसमें दो अत्यधिक उन्नत प्रकार के लौह धातु उत्पादित होते थे। दक्षिण भारत में 300 ईसा पूर्व से उत्पादित पहला, वुट्ज स्टील जिसमें लोहे को नियंत्रित स्थितियों के तहत कार्बराइज्ड किया गया था। डेक्कन से सीरिया के लिए सभी तरह से निर्यात किया गया था, इसे वहां 'दमिश्क तलवार' में अपनी तीखेपन और क्रूरता के लिए जाना जाता था। लेकिन ऐसा लगता है कि 'दमिश्क' शब्द सीरिया के राजधानी शहर से नहीं, बल्कि 'दमिश्क' या उन तलवारों की सतह की लहर पैटर्न की विशेषता है। इस प्रकार, इस भारतीय इस्पात को 'ओरिएंट की आश्चर्य सामग्री' कहा जाता था। एक रोमन इतिहासकार, क्विंटियस कर्टियस ने रिकॉर्ड किया कि सिकंदर या अलेक्जेंडर द ग्रेट ने उन उपहारों में से जो टैक्सिला के पोरस (326 ईसा पूर्व में) से प्राप्त हुए थे, वहां ढाई टन वुट्ज स्टील था, यह स्पष्ट रूप से सोने की तुलना में अधिक मूल्यवान था। बाद में, अरबों ने इसे तलवारों और अन्य हथियारों में ढाल लिया तथा धर्म युद्ध के दौरान, यूरोपियों को भारी दमिश्क तलवारों से पीड़ित किया गया। यह मुगल युग के माध्यम से हथियार के लिए एक पसंदीदा धातु बना रहा, जब वुट्ज तलवारें, चाकू और कवच को कलात्मक रूप से सजाया गया था। हथियारों पर कलात्मक रूप से पीतल, चांदी और सोने की नक्काशी की गयी थी। गोलकुंडा और हैदराबाद के निजाम, टीपू सुल्तान, रणजीत सिंह, राजपूत और मराठों की कवचों तथा इन धातुओं से बने हथियारों का रहना अपने आप में एक शान थी।

<u>वुट्ज स्टील (लगभग 18 वीं शताब्दी) से बना एक ठेठ तलवारय जिसका झुका हुआ सिरा लोहे का बना है और सोने की मोटी परत के साथ लेपित है (आभारः आर बालासुब्रमण्यम)</u>

वुत्ज स्टील मुख्य रूप से लोहा होता है जिसमें कार्बन का उच्च अनुपात मौजूद होता है (1.0 – 1. 9:)। इस प्रकार शब्द वुट्ज (उक्कू का एक अंग्रेजी अनुवाद, स्टील के लिए कन्नड़ शब्द है) क्रूसिबल प्रक्रिया द्वारा उत्पादित उच्च कार्बन मिश्र धातु पर लागू होता है। मूल प्रक्रिया पहले स्पंज (या छिद्रपूर्ण) लौह तैयार करने की थी, फिर उसके स्लैग को निकालने के लिए गरम किया गया, उसे तोड़ा गया, फिर लकड़ी के चिप्स या बंद क्रूसिबल (मिट्टी के कंटेनर) में तारकोल के साथ सील कर दिया गया, जिससे लोहा कार्बन की मात्रा को अवशोषित कर लेता हैय क्रूसीबल्स को तब ठंडा कर दिया गया, जिसमें वुट्ज स्टील ठोस पिंड के साथ अवशेष के रूप में था।

17वीं शताब्दी के ठीक बाद, कई यूरोपीय यात्रियों ने भारत के लौह और इस्पात बनाने वाली भट्टियों को लिखित में संकलित किया था। (दक्षिण भारत के फ्रांसिस बुकानन के खाते वुट्ज के संबंध में जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं)। 18वीं शताब्दी से, इंग्लैंड (पियरसन, स्टोडार्ट और फैराडे) में विद्वानों ने फ्रांस और इटली वुट्ज के रहस्यों को जानने की कोशिश की। फ्रांसीसी जीन–रॉबर्ट ब्रैंट, स्टील को विभिन्न धातुओं को जोड़कर 300 से अधिक प्रयोगों का संचालन करते हुए, वुट्ज में उच्च कार्बन अनुपात की भूमिका को समझते थे और वह पहला यूरोपीय था जिसने सफलतापूर्वक स्टील ब्लेड का उत्पादन भारतीयों के साथ किया था। साथ में, इस तरह के शोधों ने इस्पात में कार्बन की भूमिका और स्टील बनाने में नई तकनीकों की समझ बढ़ाने में योगदान दिया।

दिल्ली लौह स्तंभः

दूसरा उच्च कोटि का लौह प्रसिद्ध 1600 वर्ष पुराने दिल्ली लौह स्तंभ में उपयोग किया गया, जो कि 7.67 मीटर की ऊंचाई पर लगभग छह टन लोहे से निर्मित है। इसकी आरंभिक अंकित छह पंक्तियों के संस्कृत शिलालेख के अनुसार, शुरुआत में इसे विष्णुदागिरी में विष्णु के मानक के रूप में चंद्र द्वारा बनाया गया था। मध्य प्रदेश में सांची के पास आधुनिक उदयगिरी के साथ 'विष्णुपदगिरी' की पहचान की गई है और गुप्त राजा, चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (375–414 ईसा पूर्व) के साथ 'चंद्र' को खोजा गया। सन 1233 में, इस स्तंभ को नई दिल्ली के कुतुब परिसर में क्वावत–उल इस्लाम मस्जिद के आंगन में इसके वर्तमान स्थान पर लाया गया था, जहां लाखों लोग आते रहते हैं और इस 'विशुद्ध आश्चर्य' को देखते हैं।

शिलालेख के क्लोज-अप के साथ दिल्ली लौह स्तंभ (आभारः आर बालसुब्रमण्यम)

लेकिन यह कच्चा या अधिक सटीक या जंग प्रतिरोधी क्यों है? यहां फिर से, भारतीय और पश्चिमी दोनों के कई विशेषज्ञों ने इस लौह स्तंभ के निर्माण के रहस्य को समझने की कोशिश की। हाल ही में इसकी जंग प्रतिरोधी गुणों को पूरी तरह से समझा गया है (विशेष रूप से आर. बालासुब्रमण्यम द्वारा)। वे मुख्य रूप से लौह में फॉस्फरस की उपस्थिति के कारण होते हैंः यह तत्व, हवा से लौह और ऑक्सीजन के साथ, सतह पर पतली सुरक्षात्मक निष्क्रिय कोटिंग के गठन में योगदान देता है, जो खरोंच से क्षतिग्रस्त होने पर पुनर्निर्मित हो जाता है। इसका श्रेय भारतीय लोहारों को जाता है कि परीक्षण और त्रुटि के माध्यम से वे सही प्रकार के लौह अयस्क का चयन करने में सक्षम थे और इस तरह के विशाल स्तंभों के लिए इसे सही तरीके से संसाधित करते थे।

अन्य लौह स्तंभ और बीमः

भारत में ऐसे और भी स्तंभ मौजूद हैं, उदाहरण के लिए धार (मध्य प्रदेश) और कोडाचद्री हिल (तटीय कर्नाटक) में। इसके अलावा, उसी तकनीक का उपयोग उड़ीसा के कुछ मंदिरों, दिल्ली लौह स्तंभ में शिलालेख के करीब होने के साथ विशाल लौह बीम बनाने के लिए किया गया था। (आभारः आर. बालासुब्रमण्यम) जैसे पुरी के जगन्नाथ (12वीं शताब्दी), कोणार्क के प्रसिद्ध सूर्य मंदिर में लौह बीम के बड़े आयाम हैं। बीमों में से एक के रासायनिक विश्लेषण ने पुष्टि की कि यह एक फॉस्फोरिक प्रकृति का लोहा था (99.64% Fe, 0.15% PC निशान, के निशान और कोई मैंगनीज नहीं)।

जस्ताः

भारतीय धातुकर्मी कई अन्य धातुओं से परिचित थे, जिनमें से जस्ता प्रमुख था क्योंकि कम क्वथनांक (907 डिग्री सेल्सियस) पर, यह अयस्क को गलाने के समय वाष्पीकृत होता है। जस्ता, एक चांदी जैसा सफेद धातु, तांबे के साथ संयोजन में महत्वपूर्ण है, जिसके परिणामस्वरूप बेहतर गुणवत्ता का पीतल प्राप्त होता है। कभी–कभी तांबा अयस्क का हिस्सा, शुद्ध जस्ता केवल एक परिष्कृत 'डाउनवर्ड' आसवन तकनीक के बाद ही बनाया जा सकता है जिसमें वाष्प को कम कंटेनर में रखा जाता है और संघनित किया जाता है। यह तकनीक, जिसे पारे पर भी अपनाया गया था, जिसका वर्णन 14वीं सदी के संस्कृत ग्रंथ रसरत्नसमुच्चय में किया गया है।

जवार खानों में जस्ता धातु विज्ञान (आभारः राष्ट्रीय विज्ञान केंद्र, नई दिल्ली)

6वीं या 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व से जवार में राजस्थान की खानों में जस्ता उत्पादन के पुरातात्विक साक्ष्य पाए गए हैं। सदियों से मौजूद इस तकनीक को और परिष्कृत किया जाना चाहिए। भारत, किसी भी मामले में, जस्ता आसवन में महारत हासिल करने वाला पहला देश था और अनुमान लगाया गया है कि जवाड़ में 13वीं से 18वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक 50000 से 100000 टन जस्ता को पिघलाया गया था। 1760

के बाद, वास्तव में, एक दस्तावेजी सबूत मौजूद हैं कि एक अंग्रेज ने 17वीं शताब्दी में डाउनवर्ड डिस्टिलेशन की तकनीक सीखी और इसे इंग्लैंड ले गया जिसमें प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का मामला था जो वुट्ज स्टील के समानांतर है।

सामाजिक प्रसंगः

अंततः हमें इस दिशा में ध्यान देना चाहिए कि भारत के अधिकांश धातु उत्पादन को विशिष्ट सामाजिक समूहों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जिसमें तथाकथित जनजातियां शामिल हैं, जिनमें से अधिकांश भारतीय समाज के निचले भाग से हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के अग्ररिया लुहार हैं और झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल, केरल तथा तमिलनाडु में भी ऐसे समुदाय बिखरे हुए हैं। साथ में, उन्होंने भारत की संपत्ति में काफी योगदान दिया, क्योंकि भारत लंबे समय से लौह का एक प्रमुख निर्यातक देश था। 1600 ईस्वी के उत्तरार्ध में, हजारों वुट्ज की सिल्लियां के शिपमेंट हर साल फारस के लिए कोरोमंडल तट भेजे गए। भारत का लौह और इस्पात उद्योग 18वीं शताब्दी तक बेहद सघन था और इसे केवल तब ही अस्वीकार कर दिया गया जब अंग्रेजों ने भारतीय उत्पादों पर उच्च अधिकारों का प्रयोग करते हुए भारत में अपने उत्पादों को बेचना शुरू कर दिया। औद्योगिक रूप से उत्पादित लौह और इस्पात ने अनिवार्य रूप से भारत के पारंपरिक उत्पादन में अंतिम रोक लगा दी थी।

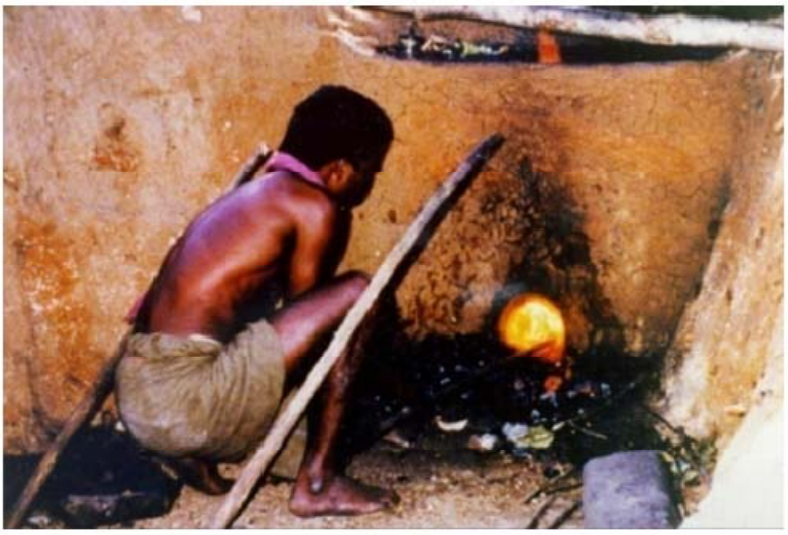

घाटगांव (मध्य प्रदेश) में एक भूमिगत भट्ठी में लौह अयस्क को पिघलाता हुआ एक आदिवासी (आभारः ए. वी. बालसुब्रमण्यम)

8 पर्यावरण संरक्षण पर भारतीय परंपरागत ज्ञान

परिचयः

भारत के कई हिस्सों में, जन समुदायों ने उम्र के माध्यम से प्रकृति के लिए प्यार और सम्मान की समृद्ध परंपरा विरासत में ग्रहण की है। इस संबंध में धार्मिक अनुष्ठान, परंपराओं और रीति–रिवाजों ने बड़ी भूमिका निभाई है। भारतीय धर्म आम तौर पर पर्यावरणवाद के समर्थक रहे हैं। उन्होंने ऐसे दिशा निर्देशों के लिए प्रचार किया जो प्रकृति में एक अंतरंग संपर्क और भावना को सुनिश्चित करते थे। यह विश्वास कुछ संस्कार और अनुष्ठान करने के निर्देशों के रूप में आया, ताकि यह उनके जीवन का एक अंग बन सके। कभी–कभी पर्यावरण संरक्षण और संरक्षण के संदेश प्रछन्न रूप में होते हैं। आज, जब दुनिया पारिस्थितिकीय असंतुलन और पर्यावरणीय गिरावट के गंभीर संकट से गुजर रही है, तो ऐसी परंपराओं को समझना हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रकृतिः

प्रकृति के संरक्षण की संस्कृति प्राचीन वैदिक काल में निहित पाई जाती है। चार वेदः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद विभिन्न प्राकृतिक संस्थाओं की सर्वोच्चता के लिए समर्पित स्तोत्रों से भरे पड़े हैं। ऋग्वेदिक स्तोत्र सूर्य, चंद्रमा, गरज, प्रकाश, बर्फ, पानी, नदियां, पेड़, बारिश आदि के साथ कई देवी–देवताओं को संदर्भित करते हैं। उन्हें स्वास्थ्य, धन और समृद्धि के लाभ के रूप में गौरव प्राप्त है और उनकी पूजा की गई है। बारिश–देवता इंद्र में उससे जुड़े स्तोत्रों की सबसे बड़ी संख्या है।

वैदिक पूजा में सूर्य पूजा का महत्व हैय सूर्य की पूजा सूर्य, मार्तण्ड, उषा, पूरन, रुद्र आदि जैसे देवताओं के रूप में की जाती थी। आज यह साबित हुआ है कि सौरऊर्जा ऊर्जा का अंतिम स्रोत है जो खाद्य श्रृंखला के माध्यम से ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करता है, विभिन्न पोषक तत्वों को चलाता है और इस प्रकार पूरे पृथ्वी पर पारिस्थितिकी तंत्र को नियंत्रित करता है, लेकिन यह संभवतः प्राचीन लोगों द्वारा भी समझा जाता रहा है और महसूस किया जाता रहा है। ऋग्वेद का गायत्री मंत्र, जिसे हर शुभ अवसर पर गाया जाता है, जिसमें सूर्य की काफी प्रशंसा की गयी है। ठीक उसी प्रकार, अथर्ववेद में प्रकृति के महत्व पर प्रकाश डाला गया है और पृथ्वी की प्रशंसा में एक सुंदर स्तोत्र है। उल्लेखनीय दूरदर्शिता के साथ, दक्षिण भारत से तमिल में एक प्राचीन पाठ तिरुवल्लुवर के कुरल ने प्रकृति की सुरक्षा के तहत रहने की

आवश्यकता पर जोर दियाः 'चमकदार पानी, खुली जगह, पहाड़ियों और जंगलों में एक किले का गठन होता है।' गुरु ग्रंथ साहेब कहते हैं, 'वायु गुरु है, पानी पिता है, और पृथ्वी सभी की महान मां है।'

वनस्पति और जीवः

प्राचीन भारतीय परंपरा में पेड़ों को भी महत्व दिया गया है। चारों वेदों में विभिन्न जड़ी बूटियों, पेड़ों और फूलों का वर्णन किया गया हैं। पेड़ों और पौधों को जीवित प्राणियों के रूप में माना जाता था और उन्हें नुकसान पहुँचाना एक अभिशाप माना जाता था। अथर्ववेद विभिन्न जड़ी बूटियों के औषधीय मूल्यों की महिमा का वर्णन करता है। प्राचीन ग्रंथों में हम पौराणिक शक्तियों की दृष्टि से कलवक्का और पजाता जैसे पेड़ों के बारे में जानते हैं। पद्मा (कमल) और वावक्का (बरगद) जैसे पेड़ या जंगल की ज्वाला (पलाश) जैसे पेड़ों पर विशेष जोर दिया गया था। पीपल पेड़ की पूजा (जिसे बोधी पेड़ के रूप में भी जाना जाता है, संस्कृत में अष्टवथा, फिकस धर्मियोसा) एक लोक अनुष्ठान बन गया और पीपल को ब्रह्म पुराण में वृक्षों का राजा कहा जाता था। समय के दौरान, ऐसे कई पौधे और पेड़ विभिन्न देवताओं और देवियों से जुड़े रहें तथा तदनुसार उनकी पूजा की गई थी।

अपने अपने इलाके में, महिलाओं को हर सुबह एक पेड़ के चारों ओर एक घेरे में घूमते देखा होगा। क्या आपने कभी कारण समझने की कोशिश की? उन मान्यताओं के तहत कुछ वैज्ञानिक कारण हैं। पीपल का पेड़ लगातार वायुमंडल में ऑक्सीजन मुक्त करता है और इसलिए, इस तरह के ज्ञान को हमारे पूर्वजों द्वारा आध्यात्मिक रूप में रखा जाना चाहिए।

इसी प्रकार, बेल (एगल मार्मेलोस), अशोक (सरका एसोका), चन्दन और नारियल के पेड़ विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों में विशेष महत्व रखते हैंय तो दूब घास (सिनोडन डैक्टिलॉन), तुलसी (ओसीमिम), केला, कमल, गेंदा, गुड़हल (हिबिस्कस) और दूध के रंग जैसे दिखने वाले फूल (आक, कैलोट्रोपिस) का अपना अलग ही महत्व है। भारत में पेड़ की उत्पत्ति के लिए तीन प्रमुख कारक जिम्मेदार थेः उनकी लकड़ी, पत्तियां, फल इत्यादि मनुष्यों के लिए उपयोगी थींय ऐसा माना जाता था कि वृक्षों को पर्यावरणीय संरक्षण पर भारतीय पारंपरिक ज्ञान था, जो आत्माओं को संकट में निर्देशित करते थे और मनुष्यों ने पेड़ों के प्रति सम्मान दिखाया जो अक्सर उन्हें औषधीय पौधों के विकल्प के रूप में मिलते थे।

वनस्पतियों और जीवों और मनुष्यों के साथ उनके संगठनों को महाभारत, रामायण, और कालिदास के अभजानककुंटाला आदि जैसे इंजेपिक्स दिखाए गए थे। इनमें पेड़, लता, जानवरों और पक्षियों के रंगीन चित्र दिखाए गए हैं जो लोगों के साथ बातचीत करते हैं और अपनी खुशी व दुःख को साझा करते हैं तथा दर्शाता है कि लोग मनुष्य और प्रकृति के बीच पारस्परिक सौहार्द में कितना विश्वास करते थे।

प्रसिद्द संस्कृत कृति मनुस्मृति, पौधों और उनकी अवस्थाओं का एक अलग वर्गीकरण देता है कि जिसमें उनके आनंद और दर्द का अनुभव कर सकते हैं और जागरूकता रख सकते हैं। यह शास्त्रों में भी चिह्नित है कि एक पेड़ पुत्र के रूप में अपनाया जा सकता हैय कई पुराण इस अनुष्ठान को तरुपुत्रविधि के रूप में वर्णित करते हैं। उपनयन (दीक्षा) समारोह अश्वता वृक्ष (पीपल) के पेड़ के नीचे किया जाता है, बरगद और नीम के पेड़ के पास किए गए विवाह अनुष्ठान भी उल्लेखनीय हैं। पौधों को पानी देना धर्मशास्त्र ग्रंथों में बहुत ही फायदेमंद माना गया है।

कौटिल्य के अनुसार, पेड़ों या इसकी शाखाओं को काटना एक अपराध माना गया है और उन्होंने इसके लिए विभिन्न दंड निर्धारित किए हैं।

देववनः

प्राचीन काल में देववनों की परंपरा भी आम थी और अभी भी लोक और आदिवासी समुदायों द्वारा इसका अभ्यास किया जाता है। एक पवित्र देववन में आम तौर पर एक गांव के बाहरी इलाके में पुराने वृक्षों का एक झुण्ड होता था, जिसे गांव में बसने वाले लोग इस छोटे जंगल को मंजूरी देते थे। इस तरह के उपवनों को देवताओं, देवियों या आत्माओं के निवास के रूप में माना जाता था और इसलिए इन्हें अत्यंत सावधानी से संरक्षित किया जाता था। इन क्षेत्रों में पेड़ काटने पर रोक होती थी और किसी ने भी धार्मिक विश्वास के कारण और आंशिक रूप से देवताओं, देवियों और आत्माओं के क्रोध का सामना करने के डर के कारण निषेध की अवज्ञा करने की हिम्मत नहीं की थी। कई देववनों में, ग्रामीण त्योहारों और अन्य अवसरों के दौरान देवताओं को बलिदान और प्रसाद देने का भी वर्णन है। देववनों की इस परंपरा को जीवमंडल भंडार की समकालीन धारणा से मेल किया जा सकता है।

भारत में देववनों की राज्यवार संख्याएं (आभारः पृथ्वी से नीचे)

मदुरै क्षेत्र में आकर्षक घोड़े युक्त एक देववन

वन्यजीवः

वेल्लूर की नाग-नागिन मूर्तिकला (आभारः कामत की पोटपोरी ,www.kamat.com)

जंगली जानवरों और यहां तक कि पालतू जानवरों को प्राचीन परंपरा में स्थान और सम्मान का गौरव प्रदान किया गया था। कई हिंदू देवताओं और देवियों के पास उनके वाहन या वाहन के रूप में कुछ विशेष पशु या पक्षी होते हैं। इनमें शेर, बाघ, हाथी, बैल, घोड़ा, मोर, हंस, उल्लू, गिद्ध, बैल, चूहा आदि शामिल हैं। लोगों के धार्मिक मान्यताओं के साथ जंगली जानवरों के संघ ने भारत में इतने लंबे समय तक अपने संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जब तक औपनिवेशिक शासन गहन शिकार में शामिल नहीं हो जाता। वन्यजीवन से जुड़ी पवित्रता की भावना ने इसे संरक्षित किया और पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने में योगदान दिया। उदाहरण के लिए, भगवान शिव और सांप (या नाग) दोनों की एक साथ पूजा होती है, पूजा के साथ सांप का संबंध हमारे संतों द्वारा जानवर को संरक्षित करने का एक सचेत प्रयास था, जो कथित विषैले प्रकृति की

वजह से पैदा करता है । वास्तव में, सांप खाद्य चक्र में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मनुस्मृति में, पौधों और जानवरों के संरक्षण के बारे में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष निर्देशों के संदर्भ हैं। इसमें पेड़ों या जानवरों को नुकसान पहुंचाने के लिए विशिष्ट दंड के प्रावधान का वर्णन है।

प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता के कई कलाकृतियों और मुहरों में जानवरों को बैल (बिना कूल्हे के साथ या बिना), बाघ, हाथी, गलियारे, भैंस, घड़ियाल मगरमच्छ) जैसे जानवरों को दर्शाया गया है, लेकिन अक्सर पौराणिक जानवरों जैसे कि गेंडा, यद्यपि इस पशु की प्रतीकात्मकता का सटीक महत्व अभी भी बहस का विषय बना हुआ है, लेकिन हड़प्पा सभ्यता में इसको स्पष्ट रूप से बहुत महत्व दिया गया है। उन्होंने पेड़ की पूजा भी की है, जैसा कि निम्नवत चित्र से प्रमाणित है, (बाएं चित्र में) जिसमें एक पेड़ को एक मंच पर उठाया गया है।

सिंधु सभ्यता के मुहर एक बैल, एक हाथी, और दो गैंडे (एक सींग वाला एक पौराणिक जानवर) दर्शाते हैं जो एक पीपल वृक्ष के दोनों ओर दर्शाये गए हैं। (आभारः एएसआई)

वैदिक काल के दौरान, गाय को एक बहुत मूल्यवान जानवर माना जाता थाय ऋग्वेद में देवताओं की मां अदिति को अक्सर 'दिव्य गाय' कहा जाता था। महाभारत में, पूरी धरती की तुलना एक गाय से की जाती है, जो मनुष्यों, देवताओं और राक्षसों, पेड़ और पहाड़ों को दूध से पोषित करती थी। कई शस्त्रों ने जानवरों की अनावश्यक हत्या को निर्धारित किया। बाद में, मौर्य शासक अशोक ने जानवरों को शिकार और

क्रूरता के अपने संपादनों में भी निषिद्ध कियाय गुजरात के गिन्नार में आवश्यक होने पर उनके लिए चिकित्सा उपचार का आदेश दिया था।

तालिका एक : पौधों की सुरक्षा		
क्रम सं.	**अपराध की प्रेंति**	**सजा निर्धारण**
1. (A) (B)	इन बातों के लिए जीवित पेड़ को काटना खदान, कारखाना, बड़े पुल या बांध आदि बनाने के लिए जलाऊ लकड़ी	 एक अपराधी व्यक्ति के अपराध की निंदा होनी चाहिए (XI 64) एक अपराधी व्यक्ति के अपराध की निंदा होनी चाहिए (XI 65)
2.	फल लदे पेड़ों या झाड़ी, बेल, फूल या जड़ी बूटी की कटाई।	अपराधी को सौ दफा अपने अपराध का बोध होना चाहिए। (XI .143)
3.	पौधों को नष्ट करना – खेती या मोनोकार्पस या जंगली।	पाप का प्रायश्चित करने के लिए, अपराधी को पूरे दिन एक गाय के सहारे रहना पड़ता है, और केवल दूध पर ही निर्भर रहना पड़ता है। (XI 145)
तालिका 2: पशु की सुरक्षा		
क्रम सं.	**अपराध की प्रेंति**	**सजा निर्धारण**
1.	जानवरों को छेड़ना	भारी भरकम सजा होनी चाहिए (VIII 286)
2.	जानवरों को घाव देना, खून बहाना, इशारा करते हुए घायल करना	अपराधी को उपचार की कीमत अदा करनी चाहिए (VIII. 287)
3.	अप्रशिक्षित वाहन चालक द्वारा किसी जानवर को नुकसान पहुँचाना	वाहन के मालिक को दो सौ पैन का जुर्माना देना है (VIII 293)
4.	गाय, हाथी, ऊंट, घोड़े, आदि जैसे बड़े जानवरों को नुकसान पहुँचाना	अपराधी को पांच सौ पेनी का जुर्माना देना है (VIII 296)

मनुस्मृति में पर्यावरण के प्रति शत्रुतापूर्ण कृत्यों के लिए निर्धारित दंड (प्रियदर्शन सेन शर्मा, ''मनु में जैव विविधता का संरक्षण संहिता'', इंडियन जर्नल अ,फ साइंस, 33 (4),1998)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वनों और पशु अभयारण्यों का भी उल्लेख किया गया, जहां जानवरों को शिकार से बचाया गया था। वन के एक अधीक्षक अपने रखरखाव और वन उत्पादन के उचित प्रबंधन के लिए जिम्मेदार थेय शिकार को विभिन्न दंड के साथ दंडित किया गया था।

बौद्ध धर्म और जैन धर्म में संरक्षण शिक्षाएं:

बौद्ध धर्म और जैन धर्म, दो सबसे लोकप्रिय धर्म विरूद्ध प्राचीन काल के संप्रदायों ने भी प्रकृति संरक्षण की वकालत की। बौद्ध धर्म और जैन धर्म, प्राचीन काल के दो सबसे लोकप्रिय हेटरोडॉक्स संप्रदायों ने भी प्रकृति संरक्षण की वकालत की। बौद्ध धर्म सहिष्णुता, प्रेम, करुणा, क्षमा और अहिंसा में विश्वास करता है। जैन धर्म पूरी अहिंसा की वकालत करता हैय यह पृथ्वी पर हर प्राणी को सबसे छोटी कीड़े या सूक्ष्म जीवों सहित समान महत्व के रूप में मानता है और हर तरह से उनकी हत्या को रोकता है। यह धारणा जैव विविधता को संरक्षित करने की दिशा में एक लंबा सफर तय करती है। जबकि जैन धर्म पूरी तरह से

अहिंसा का प्रचार करता है, बौद्ध धर्म मध्य मार्ग का पालन करता है और कहता है कि जानवरों की हत्या या पेड़ों की गिरफ्तारी पूरी तरह जरूरी नहीं होनी चाहिए। महावीर अपने अनुयायियों को आचार्य सूत्र में पर्यावरण के बारे में निम्नलिखित प्रचार देता है। प्रकृति, उनके अनुसार, सभी तरीकों से संरक्षित है, कोई अपशिष्ट नहीं, कोई बहाना नहीं, कोई दुर्व्यवहार नहीं, कोई प्रदूषण नहीं। यदि हम इन सिद्धांतों का पालन करते हैं, तो हम अपने पर्यावरण को नष्ट करना बंद कर देंगे और साथ ही उन संसाधनों को संरक्षित करेंगे जो साझा करने के लिए उपलब्ध हैं। यदि सभी के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध हैं, तो गरीबों को भी इसका उचित हिस्सा मिलेगा (आर. पी. चंदरिया)।

भारहुत (मध्य प्रदेश) से एक बेस-रिलीफ, जिसमें बुद्ध की पूजा को दर्शाया जा रहा है सिंहासन और इसके पीछे, पवित्र पीपल या बोधी वृक्ष (फिकस धर्मियोसा) है। (आभारः एएसआई)

बिश्नोइस और संरक्षणः

मध्ययुगीन काल के दौरान कई धार्मिक संप्रदायों लोकप्रिय हो गए जो प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण की वकालत करते थे। ऐसा एक संप्रदाय बिश्नोइस था, जो राजस्थान के जलवायु रूप से शत्रुतापूर्ण क्षेत्र में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया था। संप्रदाय के अनुयायियों ने वृक्षारोपण पर प्रतिबंध लगाने की वकालत की क्योंकि वे मानते थे कि पेड़ सामंजस्यपूर्ण और समृद्ध वातावरण का आधार हैं। सामंजस्यपूर्ण और समृद्ध वातावरण। पेड़ के लिए प्यार।

खेजरी पेड़ का एक नमूना (आभारः विकिपीडिया)

पेड़ों के लिए प्यार बिश्नोई समाज के लोगों के दिमाग और आत्मा में बहुत अधिक प्रश्न कर रहा था राजस्थान के खेजराली गांव में लगभग 363 युवा और बूढ़े पुरुषों और महिलाओं ने खेज के पेड़ (प्रोसोपिस सीनेरिया) को राजा के आदमियों द्वारा गिरने से बचाने के लिए गले लगा लिया। स्थानीय शासक

ने खेजरी के पेड़ों को अपने चूने के भट्टियों के लिए ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने का आदेश दिया थाय बिश्नोइस ने उन्हें गले लगा लिया और कई चरणों में मारे गए। बाद में, बिश्नोई के शहीदों के सम्मान में एक मंदिर बनाया गया था। आंदोलन की प्रमुख महिलाओं में से एक अमृता देवी बिश्नोई थी। बाद में राजा ने पश्चाताप करते हुए बिश्नोई–नियंत्रित भूमि में वृक्षों और जानवरों की रक्षा करने के लिए एक आदेश जारी किया। अर्द्ध शुष्क क्षेत्र के आम लोगों ने पेड़ों के वास्तविक मूल्य को समझ लिया था। खेजरी पत्तियां पश्चिमी राजस्थान जैसे रेगिस्तानी इलाके में पशुधन के लिए एक महत्वपूर्ण आहार बनाती हैं, क्योंकि उनके ऊंट, मवेशी, भेड़ और बकरी के लिए उच्च पौष्टिक आहार है। इस पेड़ की एक अनूठी विशेषता यह है कि शुष्क सर्दियों के महीनों में भी यह हरे पत्ते पैदा करता है जबकि सूखे इलाकों में कोई अन्य हरा चारा उपलब्ध नहीं है। पश्चिमी राजस्थान के अर्ध–शुष्क हिस्सों के लोगों ने खेती के मैदानों और चरागाहों के बीच खेजरी पेड़ के विकास को प्रोत्साहित किया क्योंकि इसकी व्यापक जड़ प्रणाली ने स्थानांतरण रेत के कणों को स्थिर करने में मदद की। यह जीवाणु गतिविधि के माध्यम से नाइट्रोजन भी ठीक करता है। इसके अलावा, ग्रामीणों ने गैर–उपजाऊ मिट्टी को फिर से जीवंत करने के लिए खेजरी पत्तियों का कार्बनिक पदार्थ के रूप में उपयोग किया। महिला गर्भपात के खिलाफ सुरक्षा के रूप में अपनी गर्भावस्था के दौरान चीनी के साथ मिश्रित इनके फूलों का उपयोग करें, और इसकी छाल अतिसार, दमा, सामान्य ठंड और संधिशोथ (गठिया) के इलाज में प्रभावी है।

प्रतिरोध की परंपराः

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में वन काटने के खिलाफ प्रतिरोध के अधिक उदाहरण सामने आए। उन आंदोलनों में से ज्यादातर बड़े पैमाने पर अन्यायपूर्ण औपनिवेशिक वन कानूनों के खिलाफ थे, जो स्थानीय लोगों, विशेष रूप से जनजातियों की आजीविका को प्रभावित करते थेः औपनिवेशिक सरकार द्वारा सरकारी संरक्षित जंगलों का निर्माण आदिवासियों के लिए विनाशकारी था, जो पूरी तरह से वन उत्पादन पर निर्भर थे। इस प्रकार आदिवासी समुदायों को सरकारी वन विभागों द्वारा सबसे ज्यादा प्रभावित किया गया था।

9 जीवन, स्वास्थ्य और कल्याण के लिए आयुर्वेदः एक सर्वेक्षण

आयुर्वेद क्या है?

आयुर्वेद की परिभाषा की अगर बात करें तो आयुर्वेद दो शब्दों से मिलकर बना है, पहला 'आयु' जिसका अर्थ है जीवन और दूसरा 'वेद' जिसका अर्थ है ज्ञान। इस प्रकार आयुर्वेद जीवन या जीवन विज्ञान से जुड़ा ज्ञान होता है। एक पारम्परिक अध्ययन के अनुसार, आयुर्वेद एक ज्ञान की तरह है, जो स्वस्थ (हितम), अवांछित (अहितम), खुश (सुखम) और दुखी (असुखम) के रूप में जीवन को परिभाषित करता है और जीवन व दीर्घायु होने के लिए जो भी अच्छा और वांछित है, को सूचित करता है।

उपरोक्त विश्लेषण से हम देख सकते हैं कि आयुर्वेद का लक्ष्य अनुभव के सभी स्तरों पर व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण दोनों को बढ़ावा देना है। आयुर्वेद का लक्ष्य उच्चतम स्तर पर स्वास्थ्य को स्थापित करना है, जिसे प्राप्त करने में मनुष्य सक्षम होता है और इसका दायरा बीमारियों को ठीक करने के लिए प्रतिबंधित नहीं है। स्वास्थ्य शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक कल्याण का सामूहिक प्रकटीकरण होता है।

हजारों साल पहले, आयुर्वेद की परंपरा ने स्वास्थ्य की सबसे आधुनिक परिभाषा की उम्मीद की थी जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा घोषित किया गया है, 'स्वास्थ्य पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण के मिलन का परिणाम है, सामूहिक प्रकटन है, जो न केवल बीमारी या बीमारी की अनुपस्थिति में 'स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेदिक आध्यात्मिक आयाम जोड़ता है, अपितु बताता है कि मनुष्य त्रिआयामी है और जिसे तन, मन तथा आत्मा से स्वस्थ होना चाहिए। स्वास्थ्य, जीवन के चार गुना लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन हैः धार्मिक गतिविधि – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा प्राप्त संसाधनों के माध्यम से आध्यात्मिक और भौतिक कल्याण को बढ़ावा देना है।

आयुर्वेद इस बात पर जोर देता है कि व्यक्तिगत कल्याण सामाजिक कल्याण का एक साथ टकराव नहीं होना चाहिए। एक खुशहाल जीवन वह है जो व्यक्तिगत कल्याण प्राप्त करता है, जबकि एक स्वस्थ जीवन वह है जो सामाजिक कल्याण के लिए अनुकूल है। ये अवधारणाएं वर्तमान समय में प्रचलन में हैं और हमारा देश व्यक्तिगत और राष्ट्रीय कल्याण सूचकांक प्रदान कर रहा है, जो एक खुशहाल और स्वस्थ जीवन की आयुर्वेदिक धारणा से मेल खाता है।

स्वास्थ्य देखभाल के लिए एकीत –ष्टिकोणः

शायद आयुर्वेद मानवता द्वारा प्रचलित एकीकृत चिकित्सा का सबसे पुराना रूप है। आयुर्वेद की परिभाषा एकीकृत चिकित्सा के आधुनिक विचारों के अनुरूप है। एकीकृत चिकित्सा एक ही समय में शरीर, दिमाग और आत्मा को ठीक करने का प्रयास करती है या इंसान को पूरी तरह से पूर्ण बनाती है। एकीकृत चिकित्सा मुख्यधारा के चिकित्सा उपचार और वैकल्पिक चिकित्सा उपचार के पूरकों को एक साथ जोड़ती है जिसके लिए सुरक्षा और प्रभावशीलता के कुछ उच्च गुणवत्ता वाले वैज्ञानिक प्रमाण मौजूद हैं।

आयुर्वेद का कहना है कि मानव जीवन, शरीर, दिमाग और आत्मा के त्रिकोण पर आधारित है। आयुर्वेदिक ग्रंथों ने यह भी सलाह दी है कि दुनिया में प्रचलित उपचार के लिए कई दृष्टिकोण हैं और हमें उपचार की पूरी प्रणाली बनाने के लिए सबसे प्रभावी तरीकों की जांच को और एकीकृत करना होगा।

आंतरिक पर्यावरण और व्यक्तिगत दवा का संतुलनः

आयुर्वेद स्वास्थ्य को आंतरिक वातावरण के गतिशील संतुलन के रूप में परिभाषित करता है जो अंगों, दिमाग और स्वयं को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। जैसे सूरज की तरह, चंद्रमा और हवा बाहरी पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखती है, ठीक वैसे ही शरीर एनाबोलिक (निर्माण) और केटाबोलिक (विखंडन) गतिविधियों द्वारा निर्मित संतुलन से स्वयं को बनाए रखता है। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय होता है और इसकी एक विशिष्ट मानसिक और शारीरिक संरचना होती है, जो स्वास्थ्य के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए बीमारी की कमजोरी और दायरे को परिभाषित करता है। आयुर्वेद ऐतिहासिक रूप से व्यक्तिगत दवा के दृष्टिकोण की वकालत करने में हमेशा से अगुआ रहा है। मानव आनुवंशिकी और चिकित्सा आनुवंशिकी में हुई प्रगति ने आज चिकित्सा के लिए एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण की उत्पत्ति को जन्म दिया है, जो व्यक्तिगत जरूरतों के अनुरूप चिकित्सा में हस्तक्षेप करता है।

बाहरी पर्यावरण के साथ सौहार्दः

आयुर्वेद बताता है कि आंतरिक पर्यावरण के संतुलन को केवल बाहरी पर्यावरण के साथ सौहार्द स्थापित करके ही बनाए रखा जा सकता है। आयुर्वेद का मत है कि मानव ब्रह्मांड का प्रतीक होता है। सूक्ष्मदर्शी, मैक्रोकास्म के एक लघु रूप का प्रतिनिधित्व करता है और मानव शरीर प्राकृतिक तत्वों से मिलकर बना है। इस प्रकार आयुर्वेद द्वारा स्वास्थ्य की देखभाल पारिस्थितिक प्रणाली में विकसित हुई है। एक इलाके के व्यक्ति विशेष के लिए, उनके चारों ओर बढ़ रहे पौधे सबसे उपयुक्त स्रोत हैं। प्रत्येक व्यक्ति को जीवनशैली बनाना पड़ता है जो भौगोलिक क्षेत्र के साथ–साथ बदलते मौसमों को भी मानता है।

आयुर्वेदिक उपचार के सिद्धांतः

आयुर्वेद निवारक और उपचारात्मक दवा दोनों के साथ समान व्यवहार करते हैं। निवारक दवा एक ऐसी जीवनशैली विकसित करने के मुद्दे पर केंद्रित है जो किसी के शारीरिक और मानसिक संविधान के साथ–साथ भौगोलिक और जलवायु स्थितियों के अनुकूल होता है। इसमें व्यक्ति की ताकत और प्रतिरक्षा को बढ़ाने के लिए डिटॉक्सिफिकेशन और कायाकल्प कार्यक्रम भी शामिल रहते हैं। आयुर्वेद एक दैनिक नियम विकसित करने के लिए दिशा निर्देश निर्धारित करता है जिसे मौसम के अनुसार गतिशील रूप से संशोधित किया जाना होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दैनिक गतिविधि और पाचन तंत्र की स्थिति के आधार पर आहार योजना तैयार करनी होती है। न केवल आहार को प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं के लिए वैयक्तिकृत किया जाना चाहिए, बल्कि बाहरी पर्यावरण स्थितियों के अनुसार इसे भी संशोधित किया जाना चाहिए।

प्रेंति में पांच तत्व मानव शरीर को बनाते हैंः

भौतिक ब्रह्मांड पांच मुख्य तत्वों या पंच महाभूतियों से मिलकर बना है, जो प्रतीकात्मक रूप से पृथ्वी, पानी, आग, वायु और आकाश द्वारा दर्शाए जाते हैं। सरल बनाने के लिए, वे भौतिक पदार्थ के अंतरिक्ष और ठोस, तरल, तापीय व गैसीय अवस्थाओं को दर्शाते हैं और ध्वनि, गंध, स्वाद, रंग तथा स्पर्श की पांच भावना धारणाओं के अनुरूप होते हैं। मानव शरीर समेत प्रत्यक्ष ब्रह्मांड में सबकुछ विभिन्न अनुक्रमों और पांच तत्वों के संयोजनों से बना है। इस प्रकार, मानव शरीर में असंतुलन यह चित्र उन सामग्रियों के बीच संवाद को दर्शाता है जो बाहरी दुनिया और जीवित शरीर को बनाते हैं, साथ ही साथ शरीर के ऊतकों में भोजन का परिवर्तन भी करते हैं। उचित पदार्थों का उपयोग करके बाहरी वातावरण को सही किया जाता है।

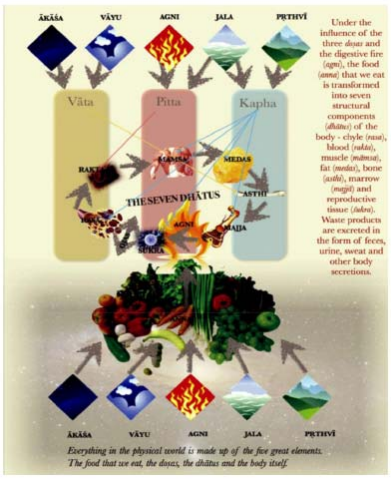

<u>यह चित्र विश्व की निर्माणकारी सामग्रियों और जीवधारी के बीच संवाद को दर्शाता है और साथ ही साथ शरीर के ऊतकों में भोजन परिवर्तन को भी।</u>

पंच तत्व शरीर के तीन कार्यों में गतिशील रूप से व्यवस्थित होते हैं, ये एनाबोलिक और कैटाबोलिक गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं। वात, पित्त और बलगम तीन कार्य हैं जो शरीर की कार्यात्मक इकाइयों के रूप में कार्य करते हैं। बलगम पृथ्वी के सिद्धांतों का संयोजन है और पानी मोटे तौर पर एनाबोलिज्म का प्रतिनिधित्व करता है।

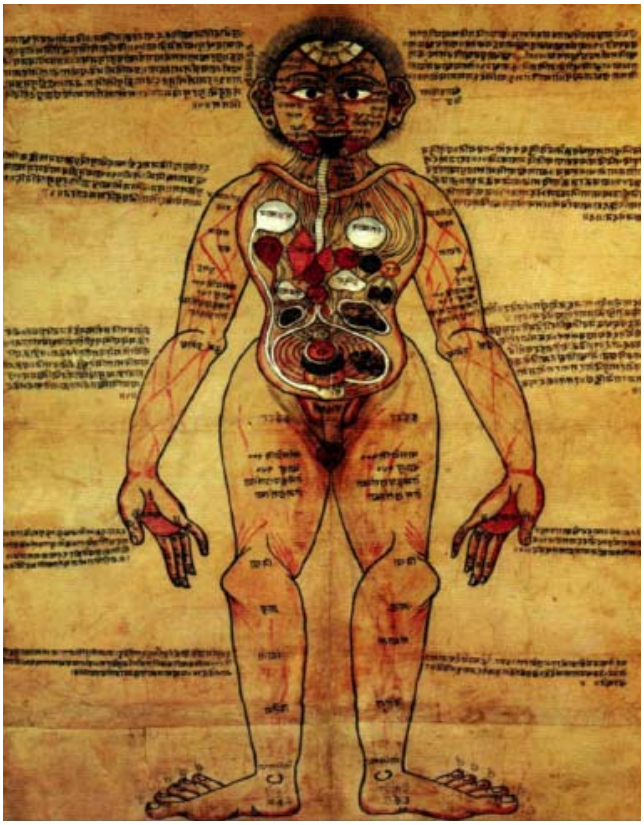

एनाट,मिकल मैन। संस्कृत चिकित्सा एनोटेशन के साथ रचनात्मक पेंटिंग। यह नेपाली चित्रकला आयुर्वेद की परंपरा में शरीर विज्ञान पर एक सचित्र चिकित्सा पाठ का एकमात्र ज्ञात उदाहरण है।
(आभारः वेलकम इंस्टीट्यूट फार दी हिस्ट्री आफ मेडिसिन, लंदन)

पित्त पानी और आग के सिद्धांतों का संयोजन है, यह परिवर्तन और संश्लेषण का प्रतिनिधित्व करता है। वात हवा और अंतरिक्ष के सिद्धांतों का संयोजन हैय यह विनियमन और नियंत्रण का प्रतिनिधित्व करता है। तीनो अवयवों और पाचन आग (अग्नि) के प्रभाव में, जो भोजन हम खाते हैं, वह शरीर के सात संरचनात्मक घटकों में परिवर्तित हो जाता हैः पायस (रस), रक्त, मांसपेशी, वसा, अस्थि, मज्जा और प्रजनन ऊतक आदि। अपशिष्ट उत्पादों को मल, मूत्र, पसीना और शरीर के अन्य स्राव के रूप में उत्सर्जित किया जाता है। जब यह परिवर्तन पूरा हो जाता है, तो सहज जीवनशैली और प्रतिरक्षा होती है जो स्वास्थ्य और कल्याण के उच्च स्तर को बनाये रखती है।

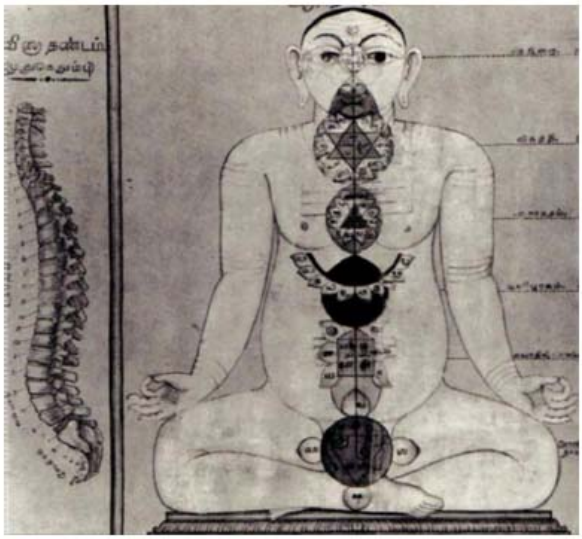

19वीं शताब्दी में तमिलनाडु के तंजावुर से इस चित्रकला में, चक्रों की स्थिति शारीरिक रूप से सही रीढ़ की हड्डी के साथ-साथ विभिन्न देवताओं से संबंधित है। (आभारः राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)।

स्वास्थ्य बहाल करने के लिए बीमारियों का इलाजः

रोग तब उत्पन्न होता है जब तीनों अवयव संतुलन से बाहर होते हैं जिससे धातु या शरीर के संरचनात्मक घटकों की अव्यवस्थित व्यवस्था होती है। आहार और व्यवहार संबंधी परिवर्तनों द्वारा समर्थित संयोजन और प्रसंस्करण द्वारा दवाओं में बने पौधे, पशु और खनिज पदार्थों का एक औचित्यपूर्ण उपयोग स्वास्थ्य को बहाल कर सकता है। आयुर्वेदिक उपचार के तीन आवश्यक घटक चिकित्सा, आहार और व्यवहार हैं।

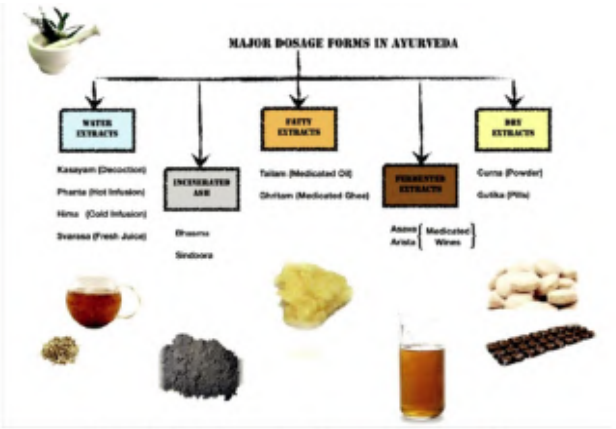

Chart listing the major dosage forms used in Ayurveda for administering medicines.

चार्ट में उपयोग की जाने वाली आयुर्वेदिक दवाइयों के वितरण के लिए प्रमुख खुराक के रूपों की सूची।

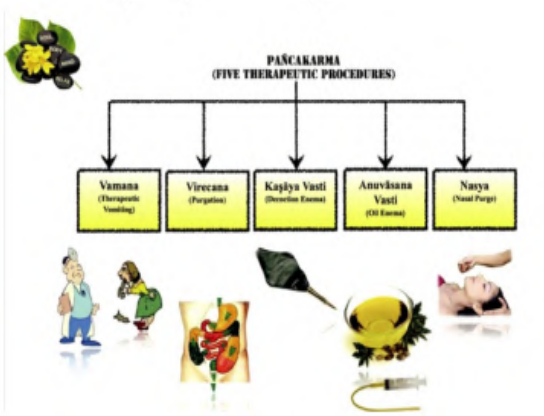

fp= l[;k 5% चार्ट पांच चिकित्सीय प्रक्रियाओं को सूचीबद्ध करता है जिन्हें पंचकर्म कहा जाता है।

चिकित्सा आंतरिक या बाहरी, विनियामक या शुद्ध और सर्जिकल या गैर शल्य चिकित्सा है। आंतरिक दवाएं विभिन्न खुराक के रूप में तैयार की जाती हैं जैसे काढ़ा, औषधीय वाइन, गोलियां, औषधीय घी, औषधीय जैम, हर्बल पाउडर, भस्म राख, ताजा रस आदि। बाहरी उपचार में मालिश और तेल लगाने और फोमेंटेशन के विभिन्न तरीके शामिल हैं। विनियामक उपचार में शरीर को साफ किए बिना दवा, आहार और व्यवहार संबंधी परिवर्तन शामिल होते हैं। शुद्ध उपचार में उपचारात्मक उत्सर्जन (प्रेरित उल्टी), शोधक, एनीमा, नाक शुद्धता और रक्तचाप शामिल हैं। जब उत्सर्जन, शोधक, तेल एनीमा, डीकाक्शन एनीमा और नाक शुद्धता अनुक्रम में दिया जाता है, तो इसे पंचकर्म या पांच प्रक्रियाओं के रूप में जाना जाता है।

आयुर्वेद भी मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक हस्तक्षेप जैसे प्रार्थना, ध्यान, भावना अंगों के नियंत्रण और इसी तरह के शारीरिक उपचार को संयोजित करने की सलाह देता है।

10 भारत के नोबेल पुरस्कार विजेता

1. सर रोनाल्ड रॉस

रोनाल्ड रॉस का जन्म सन् 1857 में आधुनिक उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले में हुआ था। उनके पिता ब्रिटिश सेना में जनरल थे, जिनकी तैनाती भारत में थी। रोनाल्ड रॉस आठ वर्ष की उम्र तक भारत में रहे। उसके बाद उन्हें इंग्लैंड के आवासीय विद्यालय में भेजा गया। उन्होंने लंदन के सेंट बार्थोलोम्यू अस्पताल से चिकित्साविज्ञान की पढ़ाई की।

जब रॉस छोटे थे, तब उन्होंने देखा था कि भारत में मलेरिया के कारण अनेक लोगों की मौत हो जाती थी। कारगार दवाओं की कमी के कारण हर साल लगभग दस लाख लोग मलेरिया के कारण मर जाते थे। जब रॉस भारत में थे तब उनके पिता को भी मलेरिया हो गया था, लेकिन सौभाग्य से वह ठीक हो गए थे। इस भयावह बीमारी ने उनके मन पर अमिट छाप छोड़ी। जब रॉस ब्रिटिश–इंडियन चिकित्सा सेवाओं के अंतर्गत भारत वापिस लौटे तब उन्हें मद्रास भेजा गया। वहां उनका ज्यादातर काम सेना के मलेरिया पीड़ित मरीजों के उपचार से संबंधित था।

रोनाल्ड रॉस ने सन् 1897 में मच्छरों और मलेरिया के बीच के संबंध को साबित कर दिया। ऐसा करके उन्होंने वैज्ञानिकों अल्फोनस लेवरेन और सर पेट्रिक द्वारा पहले से स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए इस संबंध में प्रस्तुत अवधारणा की पुष्टि की।

उस समय तक ऐसा माना जाता था कि मलेरिया का कारण गंदी हवा और ऐसे स्थान पर रहना है जो काफी गर्म, आर्द्र एवं दलदली हो। रॉस ने सन् 1882 से 1899 तक मलेरिया पर अध्ययन किया। ऊटी में तैनाती के दौरान वो खुद मलेरिया से पीड़ित हो गए। उसके बाद, उनका तबादला सिकंदराबाद में उस्मानिया विश्वविद्यालय के आयुर्विज्ञान विभाग में हुआ। उन्होंने मच्छरों की एक विशिष्ट प्रजाति, 'एनोफीलीज़' में मलेरिया के परजीवी की खोज की। आरंभ में उन्होंने इस प्रजाति को चितकबरा–पंख नाम दिया। रॉस ने मलेरिया से पीड़ित व्यक्ति का खून चूसने वाले एक मच्छर के पेट का विच्छेदन करने के

बाद उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण खोज की। उन्होंने मलेरिया के रोगी के शरीर में देखे गए परजीवी को मच्छर के पेट में देखा। आगे विस्तृत शोध के बाद उन्होंने मलेरिया परजीवी के पूरे जीवन चक्र की व्याख्या की। उनका मुख्य योगदान मलेरिया जैसी महामारी पर गहन अध्ययन करके इसके सर्वेक्षण एवं आंकलन की विधि का विकास करना था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने इसके अध्ययन के लिए गणितीय मॉडल भी विकसित किए थे। रॉस को चिकित्साविज्ञान में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए सन् 1902 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। चिकित्सा के क्षेत्र में उनके इस महान कार्य के लिए उन्हें नाइट की उपाधि से सम्मानित किया गया था। सन् 1926 में रॉस लंदन में उनके सम्मान में स्थापित रॉस संस्थान एवं उष्णकटिबंधी रोग चिकित्सालय (रॉस इंस्टिट्यूट एंड हॉस्पिटल फॉर ट्रापिकल डिज़ीज़) के निदेशक बने। रॉस के सर्वेक्षणों द्वारा विभिन्न देशों में मलेरिया के कारणों और उनकी रोकथाम पर कार्य आरंभ हुए। उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पश्चिम अफ्रीका, ग्रीस, मॉरीशस, श्रीलंका, साइप्रस और मलेरिया से प्रभावित कई क्षेत्रों में मलेरिया की रोकथाम संबंधी योजनाओं की पहल की।

भारत में रॉस को सम्मान और प्रेम के साथ याद किया जाता है। भारत के कई कस्बों और शहरों के मार्गों का नामकरण उनके नाम पर किया गया है। उनकी सेवाओं के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए भारत में हैदराबाद स्थित क्षेत्रीय संक्रामक रोग चिकित्सालय का नामकरण सर रोनाल्ड रॉस उष्णकटिबंधीय और संचारी रोग संस्थान किया गया। सिकंदराबाद में पुराने बेगमपेट हवाई अड्डे के पास स्थित जिस ईमारत में कार्य करते हुए उन्होंने मलेरिया परजीवी की खोज की थी उसे आज एक विरासत स्थल का रूप देने के अलावा उससे लगे मार्ग का नामकरण सर रोनाल्ड रॉस मार्ग किया गया है।

कोलकाता के एसएस के एम चिकित्सालय की दीवार को एक स्मारक का रूप देते हुए रॉस की खोजों को लिखा गया है। इस स्मारक का आनावरण स्वयं रॉस की उपस्थित में लॉर्ड लिटन द्वारा 7 जनवरी, 1927 को किया गया था।

2. सर सी वी रामन

चंद्रशेखर वेंकट रामन का जन्म 7 नवंबर, 1888 को तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में हुआ था। उनके पिता, चंद्रशेखर अय्यर स्थानीय महाविद्यालय में भौतिक विज्ञान के व्याख्याता थे। उनकी माता पार्वती कुशल गृहणी थी। उन्होंने 11 वर्ष की उम्र में अपनी मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके बाद उन्होंने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया। जहां से उन्होंने विज्ञान विषय में स्नातक और स्नातकोत्तर की परीक्षाएं उच्च श्रेणी में पास की। उनकी भौतिकी में गहरी रुचि थी।

स्नातकोत्तर करते हुए रामन ने भौतिकी विषय पर एक लेख लिखा और इसे फिलोसोफिकल पत्रिका एवं इंग्लैंड की प्रख्यात विज्ञान पत्रिका नेचर को भेजा।

उनके इस लेख को पढ़कर लंदन में अनेक विख्यात वैज्ञानिकों ने इस युवा भारतीय की प्रतिभा की सराहना की। रामन आईसीएस परीक्षा को पास करना चाहते थे। लेकिन इस परीक्षा के लिए उन्हें लंदन जाना पड़ता। लेकिन गरीबी के कारण वह वहां जाने का खर्चा वहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने भारत में आयोजित होने वाली भारतीय वित्त सेवा परीक्षा की तैयारी की। इस परीक्षा में उनका चयन हो गया और उस समय अंग्रेजों के अधीन रहे बर्मा (अब म्यांमार) स्थित रंगून में उनकी पदस्थापना की गयी।

इससे पहले कोलकाता में कार्य करते हुए वह 'इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइंस' नामक संस्था से जुड़े थे, जो उस समय कार्यरत एकमात्र शोध संस्थान था। यहां पर कार्य करते हुए उनके शोध कार्यों की ओर कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति का ध्यान गया। इस प्रकार कुलपति महोदय ने उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया। सर रामन वित्तीय सेवा में उच्च पद पर थे। उन्होंने अपने पेशे को छोड़ कर शैक्षणिक पेशे को अपनाया। जब वह प्रोफेसर के पद पर कार्यरत थे तब उन्हें एक विज्ञान सम्मेलन में भाग लेने के लिए इंग्लैंड आमंत्रित किया गया।

जब जहाज भूमध्यसागर से गुजर रहा था, रामन के मन में एक प्रश्न उठा। उन्होंने सोचा कि समुद्र का पानी नीला क्यों दिखता है। उनकी इस जिज्ञासा ने उन्हें प्रकाश पर शोध को प्रेरित किया। उन्होंने प्रयोगों के द्वारा पाया कि समुद्र 'सूर्यप्रकाश के प्रकीर्णन (छितराव)' के कारण नीला दिखता है। उनकी इस खोज को 'रामन प्रभाव' के नाम से जाना जाता है। अनेक वैज्ञानिकों के लिए चुनौती बने इस यक्ष प्रश्न को रामन ने सरलता से हल कर लिया था। उनके इस अग्रणी कार्य ने उन्हें सन् 1924 में लंदन की रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन का सदस्य बनने में मदद की। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा सन् 1929 में उन्हें नाइट की उपाधि से सम्मानित किया गया था। सर रामन को सन् 1930 में भौतिकी का नोबल पुरस्कार भी मिला। इस प्रकार वह नोबल पुरस्कार पाने वाले पहले भारतीय वैज्ञानिक बने। रामन ने 28 फरवरी, 1928 को रामन प्रभाव की खोज की थी। उनकी इस खोज के सम्मान में प्रत्येक वर्ष 28 फरवरी को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के रूप में मनाया जाता है। सन् 1933 में उन्होंने बेंगलोर स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान में निदेशक का पदभार संभाला। बाद में उन्होंने निदेशक के पद से त्यागपत्र देकर भौतिकी विभाग में अपना शोध कार्य आगे बढ़ाया। कैंब्रिज विश्वविद्यालय ने उन्हें प्रोफेसर पद का प्रस्ताव दिया, लेकिन उन्होंने यह कहकर प्रस्ताव मना कर दिया कि भारतीय होने के कारण वह अपने देश की सेवा करना चाहते हैं। डा. होमी भाभा और डा. विक्रम साराभाई उनके छात्र थे। सर सी.वी. रामन की मृत्यु 21 नवंबर, 1970 को हुई।

3. सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर

सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर का जन्म 19 अक्टूबर, 1910 को लाहौर में हुआ था। उनके पिता सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर अय्यर भारतीय लेखापरीक्षा में एक अधिकारी थे। उनकी माता सीतालक्ष्मी एक उच्च बौद्धिक महिला थीं। नोबेल पुरस्कार पाने वाले पहले भारतीय वैज्ञानिक सर सी.वी.रामन उनके चाचा थे। 12 वर्ष की उम्र तक उन्होंने अपने अभिभावकों से और निजी शिक्षकों से घर पर ही शिक्षा ग्रहण की। सन् 1922 में उन्होंने हिंदू हाई स्कूल में प्रवेश लिया। सन् 1925 में उन्होंने मद्रास प्रेसिडेंसी महाविद्यालय में दाखिला लिया। जून 1930 में चन्द्रशेखर ने भौतिक विज्ञान (ऑनर्स) में स्नातक की उपाधि उत्तीर्ण की। जुलाई, 1930 में उन्हें भारत सरकार ने इंग्लैंड स्थित कैंब्रिज में स्नातक अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की।

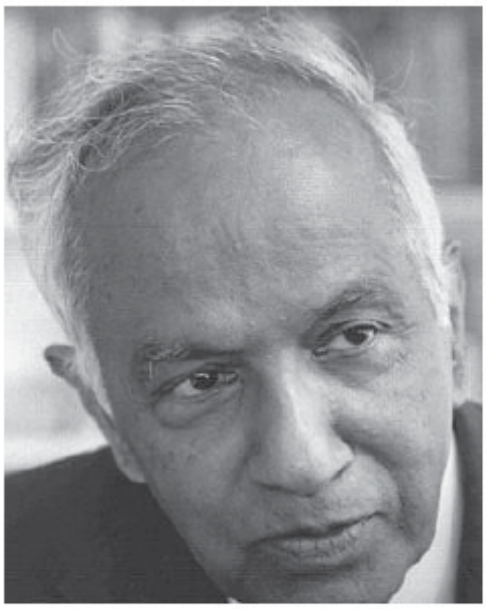

सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर ने 1933 में ग्रीष्म ऋतु में कैंब्रिज से पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। अक्टूबर 1933 को चन्द्रशेखर का चयन 1933 से 1937 की अवधि के लिए ट्रिनिटी कॉलेज की पुरस्कार छात्रवृत्ति के लिए हुआ। सन् 1936 में जब चन्द्रशेखर हॉवर्ड विश्वविद्यालय के अल्पावधि भ्रमण पर थे तब शिकागो विश्वविद्यालय ने उनके सामने शोध सहायक के पद का प्रस्ताव रखा। उन्होंने उसे स्वीकार किया और इस तरह वह अमेरिका में बस गए। सितंबर, 1936 में चन्द्रशेखर ने लोमिता डोरोस्वॉमी से शादी की। वह मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में उनसे कनिष्ठ थीं।

सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर को मुख्यतया चन्द्रशेखर सीमा संबंधी उनकी खोज के लिए जाना जाता है। उन्होंने साबित किया कि तारे के द्रव्यमान की अधिकतम सीमा, गुरुत्व बल को उसके भीतर स्थित इलेक्ट्रॉनों व नाभिकीय कणों के दबाव से संतुलित किए जाने के बराबर होती है। यह सीमा सूर्य के द्रव्यमान के लगभग 1.44 गुना के बराबर होती है। चन्द्रशेखर सीमा तारकीय विकास को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि किसी तारे का द्रव्यमान इस सीमा से अधिक होता है तो वह ताराश्वेत वामन तारा बन जाएगा। फिर वह लगातार गुरुत्वीय बलों के उच्च दाब के कारण सिकुड़ जाएगा। चन्द्रशेखर सीमा के सूत्रीकरण ने, न्यूट्रॉन तारों और कृष्ण विवरों (ब्लैक होल्स्) की खोज की दिशा आसान की। द्रव्यमान के अनुसार तारों की तीन अवस्थाएं श्वेत वामन, न्यूट्रॉन तारा और कृष्ण विवर हो सकती हैं।

चन्द्रशेखर सीमा की खोज के अलावा, सुब्रह्मण्यन् द्वारा किए गए मुख्य कार्यों में तारकीय गतिशीलता, ब्राउनी गति सिद्धांत (1938–1943); विकिरण स्थानान्तरण के सिद्धांत, तारकीय वायुमंडल के सिद्धांत, हाइड्रोजन ऋणात्मक आयन के क्वांटम सिद्धांत और ग्रहीय वायुमंडल सिद्धांत, प्रदीप्ति का सिद्धांत और सूर्य प्रकाश के ध्रुवीकरण संबंधी सिद्धांत (1943–1950); द्रवगति विज्ञान और द्रव चुम्बकीय स्थायित्व, रेले बेनर्ड संवहन (1952–1961) साम्यावस्था और दीर्घ वृत्तजीय पिंडों की स्थिरता, आंशिकी रूप से नार्मन आर. लेबोविट्ज के साथ किए कार्य (1961–1968); आपेक्षिकता (सापेक्षता) का व्यापक सिद्धांत और आपेक्षिकीय खगोलभौतिकी (1962–1971); और कृष्ण विवरों का गणितीय सिद्धांत (1974–1983) आदि शामिल हैं।

सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर को सन् 1983 में (संयुक्त रूप से नाभिकीय खगोलभौतिकविद् डब्ल्यू. ए. फॉवलर के साथ) नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनकी मृत्यु 21 अगस्त 1995 को हुई।

4. डा. हरगोविंद खुराना

हरगोविंद खुराना का जन्म 9 जनवरी, 1922 को पंजाब के एक छोटे से गांव रायपुर (अब पाकिस्तान में है) में हुआ था। वह पांच भाई–बहनों में सबसे छोटे थे। उनके पिता पटवारी थे उस समय ब्रिटिश भारत में वह कृषि कराधान क्लर्क के रूप में कार्य करते थे।

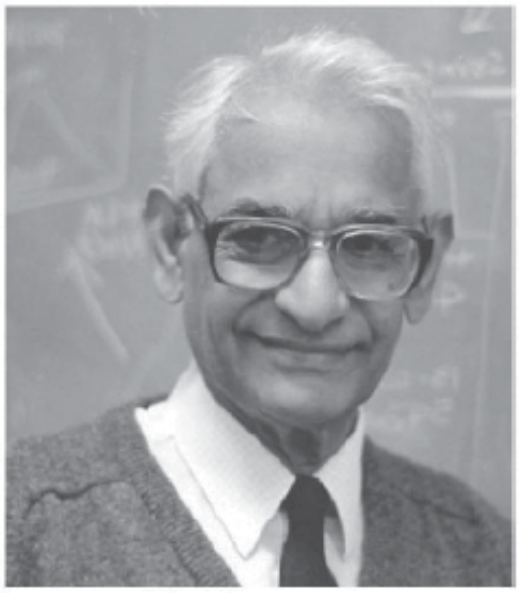

खुराना की आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। बाद में उन्होंने मुल्तान के डीएवी हाई स्कूल में प्रवेश लिया। उन्होंने 1943 में लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद सन् 1945 से उन्होंने स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने अपने पी–एच.डी. कार्य के लिए यूनिवर्सिटी ऑफ लिवरपूल को चुना और सन् 1948 में वहां से पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने स्विट्जरलैंड के फेडरल इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से पोस्टडॉक्टरेट शोध कार्य किया, जहां उनकी मुलाकात एस्थर सिब्लर से हुई जो बाद में उनकी पत्नी बनीं। बाद में उन्होंने वेंकुवर में ब्रिटिश कोलंबिया अनुसंधान परिषद् में नौकरी की जहां कार्य करते हुए उन्होंने प्रोटीनों और न्यूक्लिक अम्लों पर कार्य किया, जो उनका विज्ञान जगत में प्रमुख योगदान है।

खुराना ने सन् 1960 में विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय में कार्य किया और बाद के दस वर्ष उन्होंने मैसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में कार्य करते हुए बिताए।

डा. खुराना को मार्शल वारेन नीरेनबर्ग तथा रॉबर्ट विलियम होली के साथ सन् 1968 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। यह पुरस्कार उन्हें संयुक्त रूप से किए गए आनुवंशिक कूट की व्याख्या तथा प्रोटीन संश्लेषण में इसके प्रकर्य' कार्य हेतु प्रदान किया गया था। मृत्यु पर्यंत उन्होंने एमआईटी में जीवविज्ञान और रसायनविज्ञान के एल्फ्रेड पी. सीलन प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। भारत सरकार ने उन्हें सम्मानित करते हुए सन् 1969 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया।

उन्हें चिकित्सा सम्मान के लिए अल्बर्ट लश्कर सम्मान, नेशनल मेडल फॉर साइंस, एलीस आइसलैंड मेडल ऑफ ऑनर आदि अनेक प्रख्यात सम्मानों से सम्मानित किया गया था। इन सबके बावजूद वह जीवनभर सहज बन कर प्रचार की चकाचौंध से दूर रहे।

नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद लिखी अपनी टिप्पणी में डा. खुराना ने लिखा थाः ''निर्धन होने के बावजूद मेरे पिता अपने बच्चों की शिक्षा के लिए समर्पित थे और जिस गांव में लगभग 100 लोग बसते थे, उसमें हमारा परिवार व्यवहारतः एकमात्र साक्षर परिवार था।'' अपने पिता के पद्चिन्हों पर चलते हुए डा. खुराना ने आधी सदी के दौरान हजारों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की। वह अपनी अगली परियोजना और प्रयोग में और अधिक रुचि से कार्य करते और इसी से उनकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी। वह पंजाब के एक छोटे से गांव के एक गरीब परिवार में जन्में थे लेकिन उनकी बुद्धिमत्ता और कार्यों ने उन्हें विज्ञान के क्षेत्र में अमर बना दिया। 9 नवंबर, 2011 को डा. हर गोविंद खुराना की कांकॉर्ड मैसाचुसेट्स में मृत्यु हुई।

5- oSdVjkeu jkeÑ".ku

वेंकटरामन रामकृष्णन का जन्म सन् 1952 में कुड्डालोर जिले के एक छोटे से गांव चिदंबरम में हुआ था। उनके अभिभावक सी.वी. रामकृष्णन और राजालक्ष्मी गुजरात में बड़ौदा की महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में जैव रसायन के व्याख्याता थे। वेंकी, नाम से प्रसिद्ध वेंकटरामन ने बड़ौदा के कान्वेंट ऑफ जीजस एंड मैरी स्कूल से विद्यालयीन शिक्षा पूरी की। फिर वह भौतिक विज्ञान में उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका चले गए। वहां उन्होंने अपना विषय बदलकर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में जीवविज्ञान का अध्ययन किया।

फिर वह कैंब्रिज की एमआरसी लेबोरेट्रीज़ ऑफ मॉलिक्युलर बायोलॉजी में कार्य करने चले गए। यहां उन्होंने राइबोसोम की संरचना और उसकी जटिल कार्यप्रणाली को समझा जिसके कारण उन्हें सन् 2009 में टॉमस ई. स्टेट्ज यू.एस.ए. और अडा ई. योनथ, इजराइल के साथ संयुक्त रूप से रसायन का नोबेल पुरस्कार संयुक्त रूप से प्रदान किया। वह नोबेल पुरस्कार पाने वाले भारतीय मूल के चौथे वैज्ञानिक थे इनसे पहले सर सी. वी. रमन, हर गोविंद खुराना और सुब्रह्मण्यन् चन्द्रशेखर को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका था।

वेंकटरामन रामकृष्णन ने अपना कैरियर येल विश्वविद्यालय में पोस्ट–डॉक्टरेट फैलो के रूप में पीटर मूरे के साथ राइबोसोम पर अनुसंधान कार्य करते हुए आरंभ किया। अपने शोध कार्य को पूर्ण करने के बाद उन्होंने अमेरिका के लगभग 50 विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक पद के लिए आवेदन किया। लेकिन वह असफल रहे। इसके परिणामस्वरूप, रामकृष्णन ने सन् 1983 से लेकर 1995 तक ब्रोकेवुन नेशनल लेबोलेट्री में राइबोसोम पर अपना कार्य जारी रखा। सन् 1995 में उन्हें यूथ युनिवर्सीटी से जैवरसायन विज्ञान के प्रोफेसर पद का प्रस्ताव मिला। उन्होंने लगभग चार वर्षों तक वहां काम किया और फिर इंग्लैंड जाकर वहां मेडिकल रिसर्च कांउसिल लेबोरेट्री ऑफ मॉलिक्यूलर बायोलॉजी में कार्य आरंभ किया। यहां पर उन्होंने राइबोसोम पर व्यापक शोध कार्य किया।

सन् 1999 में उन्होंने अपने साथियों के साथ राइबोसोम के 30S उपघटक के 5.5 ''ऐंगस्ट्राम'' संकल्पना संरचना को प्रकाशित किया। उसके बाद के वर्षों में वेंकटरामन ने राइबोसोम के 30S उपघटक की पूर्ण संरचना को प्रस्तुत किया और संरचनात्मक जीवविज्ञान के क्षेत्र में सनसनी फैला दी।

वेंकटरामन को कैंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज और रॉयल सोसायटी से छात्रवृत्ति मिली। वह अमेरिका की नेशनल एकेदमी ऑफ साइंसेज़ के मानद सदस्य हैं। चिकित्सा में उनके योगदान के लिए उन्हें सन् 2007 में लुविस–ज्यवूंट सम्मान से सम्मानित किया। सन् 2008 में उन्हें ब्रिटिश बॉयोकेमेस्ट्री सोसायटी द्वारा हैथेले मेडल प्रदान किया गया।

सन् 2010 में विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए, उन्हें भारत के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया।

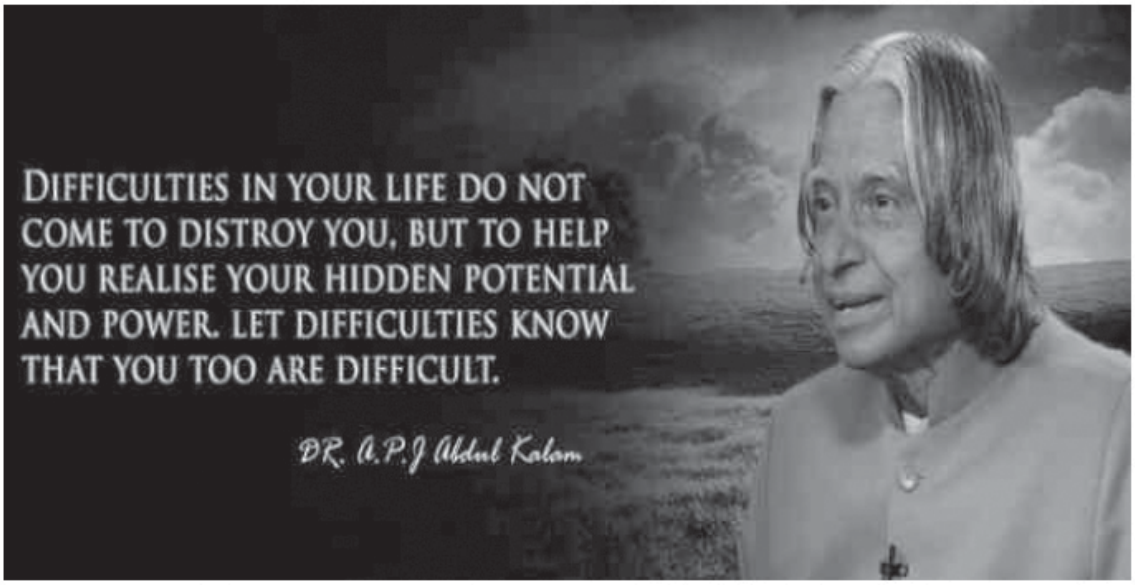

***

1. सुश्रुत

लगभग 2500 वर्ष पूर्व भारत में सुश्रुत नामक एक प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक हुए है। सुश्रुत का शल्यचिकित्सा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्हें शल्यचिकित्सा का जनक भी कहा जाता है। उनके द्वारा लिखित पुस्तक सुश्रुत संहिता में 300 से भी अधिक प्रकार की शल्यचिकित्सा विधियों, 120 शल्यचिकित्सा उपकरणों एवं शल्यचिकित्सा का विस्तृत वर्णन किया है। गंगा नदी के तट पर रहकर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और बाद में वहीं अपनी चिकित्सा कला का अभ्यास किया। यह स्थान आज उत्तर भारत में वाराणसी के नाम से जाना जाता है।

सुश्रुत के महत्वपूर्ण योगदानों में चीरा लगाने की तकनीकों का प्रदर्शन, दूसरे शरीर का निष्कर्षण, क्षारीय और तापीय दाग़ना, दांत निकालना एवं काटना आदि शामिल हैं। इसके अलावा उन्होंने पुरःस्थ (प्रॉस्टैट) ग्रंथि को निकालने एवं मूत्रमार्ग, हर्निया शल्यचिकित्सा, सीज़ेरियन आदि की भी व्याख्या की। उन्होंने हड्डियों के खिसकने के छह प्रकारों, अस्थिभंग के 12 प्रकारों की व्याख्या करने के साथ ही हड्डियों का वर्गीकरण करते हुए चोट के समय उनकी प्रतिक्रिया को भी समझाया। उन्होंने आँखो की बीमारियों के विभिन्न प्रकार के 76 संकेतों, लक्षणों, रोग के निदान, चिकित्सा/शल्य चिकित्सा एवं हस्तक्षेत्र का उल्लेख करते हुए मोतियाबिंद शल्यचिकित्सा के बारे में भी लिखा है। उन्होंने सिलाई के पदार्थ के रूप में चींटी के सिरों का उपयोग करते हुए आंतों की सिलाई की विधि का वर्णन भी किया। उन्होंने शल्यचिकित्सा के दौरान होने वाले दर्द को कम करने के लिए शराब के उपयोग को भी आरंभ किया।

सुश्रुत ने जानवरों, वनस्पतियों और खनिजों से निर्मित लगभग 650 प्रकार की दवाओं का उल्लेख किया है। सुश्रुत संहिता के अन्य अध्यायों में नवजात एवं गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी सुझावों पर जोर दिया गया है। सुश्रुत ने विष और विषाक्तत्ता के वर्गीकरण के साथ ही विषाक्तता के लक्षणों सहित उसकी प्राथमिक

एवं दीर्घकालिक उपचार संबंधी विधियों पर विस्तृत जानकारी दी है। सुश्रुत संहिता को बाद में अरबी और फारसी में अनुवादित किया गया। इन अनुवादों ने भारत से बाहर आयुर्वेद के ज्ञान का प्रसार किया।

2. भास्करा–द्वितीय

भास्करा–द्वितीय को भास्कराचार्य के नाम से जाना जाता है। इनका जन्म सन् 1114 में वर्तमान कर्नाटक राज्य के बीजापुर या विज्ज्यडाविड नामक स्थान पर हुआ था। विद्वानों के परिवार में जन्में भास्कराचार्य ने अपने पिता महेश्वर से गणित सीखा। वह 12वीं सदी के अग्रणी गणितज्ञ थे। उन्होंने अपना सबसे पहला कार्य दशमलव संख्या पद्धति के व्यवस्थित उपयोग पर किया। वह उज्जैन स्थित खगोलीय बेधशाला के प्रमुख भी रहे जो उस समय मध्य भारत का प्रमुख गणितीय केन्द्र था।

उनका मुख्य कार्य *सिद्धांत शिरोमणि* नामक ग्रंथ में संग्रहित है जिसके चार मुख्य खंड है जिनका नाम लीलावती (या पारीगणित), बीजगणित, गणिताध्याय एवं गोलाध्याय हैं जिनमें क्रमशः अंकगणित, बीजगणित, ग्रहों की गणित और वृत्त (गोला) आदि का वर्णन है। भास्कराचार्य को मुख्यतया उनके द्वारा प्रतिपादित अवकल गणित के सिद्धांतों एवं खगोल विज्ञान एवं गणना आदि में इन सिद्धांतों के उपयोग के लिए जाना जाता है। अवकल एवं समाकल गणित का श्रेय जहां न्यूटन एवं लैब्नीज़ को दिया जाता है वहीं इस बात के पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध है कि अवकल गणित के सिद्धांत संबंधी कुछ अग्रणी कार्य भास्कराचार्य द्वारा किया गया था। ऐसा माना जाता है कि शायद उनके द्वारा ही पहली बार अवकल और समाकल गणना प्रमेयों की व्युत्पत्ति की गयी थी।

उन्होंने आधुनिक गणितीय खोज की व्युत्पत्ति की थी जिसके अनुसार किसी संख्या में शून्य से भाग देने पर भागफल का मान अनन्त होगा। उन्होंने सातवीं सदी के विद्वान ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रस्तुत मॉडलों का उपयोग करके अनेक खगोलीय राशियों को शुद्धता से परिभाषित किया था। उदाहरण के लिए, उन्होंने गणना करके बताया कि पृथ्वी को सूर्य की कक्षा में एक चक्कर लगाने के लिए 365.2588 दिनों की आवश्यकता होती है। आधुनिक स्वीकार्य गणना के अनुसार यह समय 365.2563 का है यानी उनकी गणना में केवल 3.5 मिनट का फर्क था। भास्कराचार्य ने 'करणकुतूहल' नामक पुस्तक लिखी जिसमें गणितीय गणनाएं थी जिनका उपयोग आज भी पंचांगों (कैलंडरों) के निर्माण में किया जाता है। भास्करा–द्वितीय एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे एवं उन्होंने अपने आरंभिक कार्य को लीलावती नामक ग्रंथ का रूप दिया। लीलावती उनकी पुत्री एवं प्रख्यात गणितज्ञ थी।

3. आर्यभट्ट

आर्यभट्ट प्राचीन भारत के सबसे प्रसिद्ध गणितज्ञ एवं खगोलविज्ञानी थे। आर्यभट्ट की जीवनअवधि 476 से 440 ईसा की मानी जाती है, हालांकि उनके जन्म स्थान को लेकर संशय है। अनेक लोगों के अनुसार उनका जन्म वर्तमान बिहार के पटना में हुआ था जो उस समय मगध के अंतर्गत पाटिलीपुत्र नामक स्थान था। कुछ लोगों ने उनका जन्म केरल में माना है। ऐसे लोगों का मानना है कि वह गुप्त शासन के दौरान मगध में रहे थे।

उनकी प्रमुख रचना आर्यभट्टीय थी जिसके मुख्य विषय गणित और खगोलविज्ञान थे। इसी ग्रंथ से आर्यभट्ट को सबसे अधिक प्रसिद्ध मिली। आर्यभट्टीय के गणितज्ञ खंड में अंकगणित, बीजगणित और त्रिकोणमितीय विषय शामिल थे। इसमें अपरिमेय भिन्न, द्विघात समीकरण, घातांक श्रेणियों का योग और द्विज्या की तालिका आदि शामिल हैं। आर्यभट्ट को कम से कम तीन खगोलीय ग्रंथों और कुछ मुक्त पदों का रचियता माना जाता है। आर्यभट्ट प्रखर प्रतिभाशाली थे उनकी बुद्धिमत्ता एवं कार्य वर्तमान में भी अनेक गणितज्ञों को प्रभावित करते हैं। यूनान और अरब ने उनके कार्यों को अपनी भाषाओं में अनुवादित कर अपनी आवश्यकतानुसार विकसित किया।

उन्होंने लिखा कि यदि 100 में 4 को जोड़ा जाए और फिर उसे आठ से गुणा किया जाए फिर उसमें 62,000 जोड़ कर प्राप्त संख्या को 20,000 से भाग दिया जाए तो जो उत्तर मिलेगा वह किसी 20,000 व्यास वाले वृत्त की परिधि के बराबर होगा। उनकी गणना 3.1416 के बराबर थी जो पाई के वास्तविक मान (3.14159) के सन्निकट थी। उन्होंने ही प्रसिद्ध सूत्र $(a + b)^2 = a^2 + b^2 + 2ab$ दिया था।

उनका दूसरा ग्रंथ आर्य–सिद्वांत था जिसमें खगोलविज्ञान संबंधी गणनाओं का जिक्र था जिसके साक्ष्य आर्यभट्ट के समकालीनों वाराहमिहिर और उनके बाद के प्रख्यात गणितज्ञों एवं टिप्पणीकारों जिनमें ब्रह्मगुप्त एवं भास्कराचार्य–प्रथम शामिल हैं, की रचनाओं में मिलते हैं। इसमें अनेक खगोलीय उपकरणों जैसे नोमोन (शंकु यन्त्र), एक परछाई यन्त्र (छाया–यन्त्र), संभवतः कोण मापी उपकरण, अर्धवृत्ताकार और वृत्ताकार (धनुर–यन्त्र एवं चक्र–यन्त्र), एक बेलनाकार छड़ी यस्ती–यन्त्र, एक छत्र–आकर का उपकरण जिसे छत्र–यन्त्र कहा गया है और कम से कम दो प्रकार की जल घड़ियाँ–धनुषाकार और बेलनाकार आदि शामिल हैं।

आर्यभट्ट जानते थे कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। उन्होंने नौ ग्रहों की स्थिति को उनके घूर्णन के आधार पर दर्शाते हुए सूर्य से उनकी स्थिति को परिभाषित किया। उन्होंने सूर्य एवं चंद्र ग्रहण की व्याख्या करने के अलावा दिन और रात की अवधि को समझाया। इसके अलावा उन्होंने एक वर्ष की यथार्थ अवधि की गणना कर बताया कि एक वर्ष में 365 दिन होते हैं। आर्यभट्ट ने इस बात का भी पता लगाया कि पृथ्वी की परिधि 24,835 मील

(39,968 कि.मी.) है। आधुनिक समय में वैज्ञानिकों ने गणना करके इसका मान 24,900 मील (40,072 कि. मी.) बताया है। आर्यभट्ट ने सूर्य एवं चंद्र ग्रहण की वैज्ञानिक व्याख्या की। भारत ने उनके सम्मान में पहले उपग्रह को नाम आर्यभट्ट रखा।

4. जगदीश चन्द्र बोस

जगदीश चन्द्र बोस का जन्म 30 नवंबर, 1858 में मेमनसिंह गांव में (अब बांग्लादेश में) हुआ था। उनके पिता भगवान चंद्र बोस डिप्टी–मैजिस्ट्रेट थे। बोस ने अपनी आरंभिक शिक्षा गांव के विद्यालय में मातृभाषा में प्राप्त की थी। 11 वर्ष की उम्र में उन्हें कोलकाता भेजा गया जहां उन्होंने अंग्रेजी सीखी और फिर सेंट जेवियर स्कूल और कॉलेज से अपनी पढ़ाई पूरी थी। वह एक प्रखर विद्यार्थी थे। उन्होंने सन् 1879 में भौतिक विज्ञान से स्नातक की परीक्षा पास की।

सन् 1880 में बोस इंग्लैंड गए। वहां उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय में एक वर्ष तक चिकित्साविज्ञान की पढ़ाई की लेकिन स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वह वहां से कैंब्रिज चले गए जहां उन्हें छात्रवृत्ति मिली और वहां क्राइस्ट महाविद्यालय से प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन किया। सन् 1885 में वह विदेश से बीएससी और प्राकृतिक विज्ञान में ट्राइपोस (कैंब्रिज में अध्ययन के लिए एक विशेष पाठ्यक्रम) की उपाधि प्राप्त कर वापस स्वदेश लौट आए।

स्वदेश लौटकर उन्हें कोलकाता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में भौतिक विज्ञान के सहायक प्राध्यापक का पद मिला लेकिन वहां उनका वेतन, अंग्रेज शिक्षकों की तुलना में एक तिहाई था। इस असमानता के विरोध में उन्होंने प्राध्यापक पद तो स्वीकार कर लिया लेकिन वेतन लेने से मना कर दिया। तीन साल बाद कॉलेज ने उनकी मांग मान ली और जगदीश चन्द्र बोस को उनके पद ग्रहण करने के समय से तब तक का पूरा वेतन दिया गया। शिक्षक के रूप में, जगदीश चन्द्र बोस बहुत प्रसिद्ध हुए और वो वैज्ञानिक प्रदर्शनों के द्वारा विद्यार्थियों की रुचि अध्ययन में जाग्रत करते थे। प्रेसिडेंसी कॉलेज में बोस के कुछ छात्र जैसे सत्येन्द्र नाथ बोस और मेघनाद साहा आगे चलकर काफी प्रसिद्ध हुए।

सन् 1894 में, जगदीश चन्द्र बोस ने अपने को पूर्णतः शोध कार्य में लगाने का मन बनाया। उन्होंने प्रेसिडेंसी कॉलेज में बाथरूम से लगे एक छोटे से बाड़े को प्रयोगशाला में बदल दिया। उन्होंने परावर्तन, अपवर्तन और ध्रुवीकरण से संबंधित प्रयोग किए। उन्हें वायरलेस (बेतार) टेलीग्राफी का अविष्कारक कहना गलत नहीं होगा। सन् 1895 में, गुल्येल्मो मार्कोनी ने अपनी खोज को पेटेंट कराया उसके एक वर्ष बाद बोस ने उसकी कार्यप्रणाली को सार्वजनिक प्रदर्शित किया था। जगदीश चन्द्र बोस ने बाद में भौतिक विज्ञान से धातुओं और फिर वनस्पतियों का अध्ययन किया। उन्होंने सबसे पहले यह साबित किया कि

वनस्पतियां भी संवेदनशील होती हैं। उन्होंने एक ऐसे उपकरण का विकास किया जो वनस्पतियों की संवेदना को महसूस करता था। आचार्य जगदीश चन्द्र बोस ने विज्ञान के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवा की।

उनके कार्य को भारत में उस समय सराहा गया जब पश्चिमी जगत ने बोस के कार्यों को महत्व दिया। उन्होंने कलकत्ता में बोस संस्थान की नींव रखी, जो मुख्यतया वनस्पतियों के अध्ययन को समर्पित है। आज यह संस्थान अन्य क्षेत्रों में भी शोध कार्य कर रहा है। 23 नवंबर, 1937 को जगदीश चन्द्र बोस की मृत्यु हो गयी।

5. आचार्य प्रफुल्ल चंद रे

प्रफुल्ल चंद्र रे का जन्म 2 अगस्त, 1861 को वर्तमान बांग्लादेश में स्थित खुलना जिले में हुआ था। उनके पिता हरिश्चंद्र रे स्थानीय जमींदार थे। नौ साल की उम्र तक प्रफुल्ल चंद्र रे ने अपनी आरंभिक पढ़ाई गांव के विद्यालय में की। सन् 1870 में उनका परिवार कलकत्ता बस गया और रे और उनके बड़े भाई को हेयर विद्यालय में भर्ती कराया गया। जब रे चौथी कक्षा में थे तब उन्हें पेचिश की बीमारी लग गयी जिसके कारण कई सालों तक उन्हें अपनी पढ़ाई रोक कर गांव के पेतृक घर लौटना पड़ा। हालांकि, उन्होंने अपना समय साहित्य अध्ययन में लगाया।

भारत में रसायनिक शोध कार्य के अग्रणी रहे प्रफुल्ल चंद्र रे ने एडिनबर्ग विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करके 1889 में प्रेसिडेंसी कॉलेज में रसायन के व्याख्याता के रूप में कार्य आरंभ किया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी रसायनतज्ञ ब्रर्थलेट की मदद से उन्होंने आयुर्वेद संबंधी सराहनीय कार्य किया। सन् 1902 में उनकी पुस्तक हिंदू रसायनविज्ञान का प्रकाशन हुआ। सन् 1892 में, उन्होंने बंगाल केमिकल्स एण्ड फार्मास्युटिकल्स कंपनी की स्थापना की, यह भारत की पहली फार्मास्युटिकल्स कंपनी थी, जो उनके मार्गदर्शन में लगातार आगे बढ़ती गयी। उन्होंने अनेक अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेसों और संगोष्ठियों में भारतीय विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि के रूप में भागीदारी की। सन् 1920 में उन्हें भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ का अध्यक्ष चुना गया।

प्रफुल्ल चंद्र रे का मुख्य उद्देश्य विज्ञान की विभिन्न विधाओं का उपयोग करके आम जनता का उत्थान करना था। उन्होंने विज्ञान संबंधी विषयों पर अनेक लेख लिखे जिनका प्रकाशन उस समय की प्रमुख शोधपत्रिकाओं में हुआ। सन् 1922 में उत्तरी बंगाल में आए अकाल के समय उन्होंने एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपना योगदान दिया था। उन्होंने खादी का समर्थन करते हुए अनेक कुटिर उद्योगों की स्थापना की। बुद्धिवाद में दृढ़ विश्वास रखते हुए उन्होंने अनेक सामाजिक रीति–रिवाजों जैसे अस्पृश्यता आदि की घोर निंदा की। उन्होंने मृत्यु–पर्यंत सामाजिक सुधार के कार्यों को जारी रखा।

6. बीरबल साहनी

एक प्रसिद्ध पुरा–वनस्पति विज्ञानी बीरबल साहनी का जन्म 14 नवंबर, 1891 को शाहपुर जिले में हुआ

था जो अब पाकिस्तान में है। वह ईश्वरी देवी और लाला रुचि राम साहनी की तीसरी संतान थे। सरकारी कॉलेज, लाहौर और पंजाब विश्वविद्यालय से अध्ययन करने के बाद वह कैंब्रिज गए जहां के इम्मैनुएल कॉलेज से सन् 1914 में उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा पूरी करने के बाद बीरबल साहनी भारत लौट आए। स्वदेश आने पर उन्होंने कुछ सालों तक वाराणासी के बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा पंजाब विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक पद पर कार्य किया। सन् 1920 में उनकी विवाह सावित्री सुरी से हुआ, उन्होंने भी उनके कार्यों में रुचि ली और उनके कार्यों में उनका साथ दिया।

बीरबल साहनी ने भारतीय उपमहाद्वीप के जीवाश्मों का अध्ययन किया। वे लखनऊ में बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के संस्थापक थे। पुराविज्ञान ऐसा विषय है जिसमें वनस्पतिविज्ञान और भूविज्ञान का ज्ञान आवश्यक होता है। बीरबल साहनी पहले ऐसे वनस्पति वैज्ञानिक थे जिन्होंने भारतीय गोंडवाना क्षेत्र की वनस्पतियों का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया। साहनी ने बिहार की राजमहल पहाड़ी पर उत्खनन किया जिसे प्राचीन वनस्पतियों के जीवाश्मों का संपदा घर माना जाता था। यहां उन्होंने वनस्पतियों की कई नयी प्रजातियों को खोजा।

बीरबल साहनी वनस्पति–वैज्ञानिक के अलावा एक भू–वैज्ञानिक भी थे। सरल उपकरणों और प्राचीन वनस्पतियों संबंधी अपने विलक्षण ज्ञान से वह पुरानी चट्टानों की आयु का अनुमान लगा लेते थे। उन्होंने लोगों को बताया कि नमक रेंज जो अब पाकिस्तान में है, वह लगभग 4 से 6 करोड़ साल पुरानी है। उन्होंने मध्य प्रदेश के डेक्कन जाल को टर्शरी पीरियड के समय का यानी करीबन 6.2 करोड़ वर्ष पुराना बताया था। इससे भी अधिक साहनी की पुरातत्व में गहरी रुचि थी। सन् 1936 में उनके अनुसंधानों ने रोहतक में सिक्कों के सांचों को खोजा गया। प्राचीन भारत में सिक्कों की ढलाई तकनीक के अध्ययन के लिए उन्हें भारत की सिक्का सोसायटी ने नेल्सन राइट पदक से सम्मानित किया था।

एक अध्यापक होने के कारण साहनी ने वनस्पति विज्ञान विभाग में शिक्षण के स्तर को ऊंचा उठाया। विश्व में पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान अपनी तरह का पहला संस्थान है। 10 अप्रैल, 1949 की रात को साहनी की मौत हो गयी। उनके संस्थान की आधारशीला रखे जाने के एक सप्ताह से भी कम समय में उनकी मौत हो गयी थी। उनकी पत्नी ने उनके द्वारा आरंभ किए गए कार्य को पूर्ण किया। आज इस संस्थान को बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के नाम से जाना जाता है।

7. पी.सी. महालनोबिस

प्रसिद्ध भारतीय सांख्यिकीविद् एवं वैज्ञानिक महालनोबिस उनके द्वारा विकसित नमूनों (मॉडलों) की नयी विधियों के लिए प्रसिद्ध हैं। सांख्यिकी के क्षेत्र में उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान उनके द्वारा

विकसित 'महालनोबिस दूरी' है। इसके अलावा उन्होंने मानवमिति (ऐन्थ्रपामिट्री) के क्षेत्र में अग्रणी कार्य किया एवं भारतीय सांख्यिकीय संस्थान की आधारशीला भी रखी।

महालनोबिस का परिवार मुख्यतया बांग्लादेश के बिक्रमपुर गांव से संबंध रखता था। उनका बचपन सामजिक सुधारक और बुद्धिजीवियों के मध्य में गुजरा। उनकी आरंभिक शिक्षा कलकत्ता के ब्रह्मों ब्वायज स्कूल में हुई। फिर उन्होंने स्वयं प्रेसिडेंसी कॉलेज में दाखिला लेकर भौतिक विज्ञान को विशिष्ट विषय लेकर वहां से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। सन् 1913 में, महालनोबिस उच्च अध्ययन के लिए इंग्लैंड गए और वहां श्रीनिवास रामानुजन् जो भारत के प्रसिद्ध गणितज्ञ थे के संपर्क में आए। अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद, वह भारत लौट आए और प्रेसिडेंसी कॉलेज के प्रिंसिपल द्वारा आमंत्रित करने पर भौतिक विज्ञान की कक्षाओं में अध्यापन करने लगे। जल्द ही उन्होंने सांख्यिकी के महत्व को समझा और यह महसूस किया कि मौसम विज्ञान और मानव विज्ञान संबंधित समस्याओं को हल करने में सांख्यिकी का उपयोग काफी महत्वपूर्ण साबित हो सकता है। उनके अनेक सहयोगियों ने भी सांख्यिकी में रुचि ली जिसके परिणामस्वरूप प्रेसिडेंसी कॉलेज में एक छोटी सी सांख्यिकी प्रयोगशाला विकसित होने लगी जहां पर प्रेमाथा नाथ बनर्जी, निखिल रंजन सेन और सर आर. एन. मुखर्जी जैसे विद्वान सभी चर्चाओं में हिस्सा लेते थे। ये बैठकें और चर्चाएं भारतीय सांख्यिकीय संस्थान की औपचारिक स्थापना का आधार साबित हुईं और 28 अप्रैल, 1932 को इसका पंजीकरण किया गया। आरंभ में यह संस्थान प्रेसिडेंसी कॉलेज के भौतिकी विभाग में था लेकिन बाद में इसका विस्तार किया गया।

महालनोबिस का सबसे बड़ा योगदान विशाल स्तर पर नमूनों सर्वेक्षण से संबंधित था। वह पायलट सर्वेक्षण और नमूना विधियों की संकल्पनाकर्ताओं में अग्रणी थे। उन्होंने फसल की पैदावार मापने की विधि का विकास किया। अपने जीवन के अंतिम चरण में, महालनोबिस भारत के योजना आयोग के सदस्य चुने गए। योजना आयोग के सदस्य के रूप में उन्होंने अपने कार्यकाल में पंचवर्षीय योजनाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना में महालनोबिस मॉडल को अपनाया गया जिसके कारण भारत में तीव्र औद्योगिकीकरण को मदद मिली। इसके अलावा उन्होंने भारत की जनगणना कार्यप्रणाली संबंधी त्रुटियों को भी सुधारा। सांख्यिकी के अलावा महालनोबिस के मन में संस्कृति के प्रति गहरी रुचि थी। उन्होंने महान कवि रविन्द्रनाथ टैगार के सचिव (विशेषकर विदेश भ्रमण के दौरान) के रूप में कार्य किया। उन्होंने विश्व भारती विश्वविद्यालय में भी अपनी सेवाएं दीं। महालनोबिस को विज्ञान के क्षेत्र में उनके अमूल्य योगदान के लिए देश के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया था।

28 जून, 1972 को 78 वर्ष की आयु में महालनोबिस की मृत्यु हुई। लंबी उम्र तक भी वो अपने शोध कार्यों में भागीदारी करते और अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह अच्छी तरह से करते रहे। सन् 2006 में भारत सरकार ने महालनोबिस की जन्मतिथि यानी 29 जून को राष्ट्रीय सांख्यिकी दिवस के रूप में मनाने का ऐलान किया।

8. मेघनाद साहा

रॉयल सोसायटी के फैलो रहे मेघनाद साहा एक प्रसिद्ध खगोलभौतिकविद् थे जिन्हें उनके द्वारा विकसित साहा समीकरण के लिए जाना जाता है। इस समीकरण का उपयोग तारों की रासायनिक और भौतिकीय परिस्थितियों की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। मेघनाद साहा का जन्म 6 अक्टूबर, 1893 को बांग्लादेश में ढाका के पास सेओराताली गांव में हुआ था। उनके पिता जगन्नाथ साहा की गांव में किराने की छोटी सी दुकान थी। उनके पिता की वित्तीय हालत अच्छी नहीं थी। वह अपने गांव की प्राथमिक विद्यालय में पढ़ते और खाली समय में अपने घर की दुकान पर बैठते। माध्यमिक शिक्षा के लिए उन्हें गांव से सात मील दूर जाना पड़ता था। वह अपने घर के पास वाले डॉक्टर के घर में रहते और उनके घर का काम करते जिससे उनका खर्च निकलता। ढाका माध्यमिक विद्यालय परीक्षा में वो प्रथम स्थान पर आए और इस प्रकार उन्हें ढाका कॉलेजिएट विद्यालय में प्रवेश मिला।

साहा ने गणित को मुख्य विषय लेकर प्रेसिडेंसी कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और पूरे कलकत्ता विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान प्राप्त किया, पहले स्थान पर सत्येन्द्र नाथ बोस थे, जो बाद में भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुए। सन् 1915 में एस. एन. बोस और मेघनाद दोनों ने एम. एस–सी. परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। मेघनाद ने अनुप्रयुक्त गणित में प्रवेश लिया और बोस ने शुद्ध गणित में। मेघनाद ने भौतिक विज्ञान और अनुप्रयुक्त गणित में शोध करने का निश्चय किया। कॉलेज के दौरान वह स्वतंत्रता संग्राम में शामिल रहे और उस समय के महान नेताओं जैसे सुभाष चन्द्र बोस और बाघा जतिन के संपर्क में रहे।

मेघनाद साहा ने खगोलभौतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दो वर्षों की विदेश यात्रा के दौरान साहा लंदन और जर्मनी रहे। सन् 1927 में मेघनाद साहा को लंदन की रॉयल सोसायटी के फेलो चुना गया। उन्होंने सन् 1923 में इलाहबाद विश्वविद्यालय में नौकरी आरंभ की जहां वह अगले पंद्रह सालों तक रहे। इस दौरान उन्होंने खगोलभौतिकी में कार्य करते हुए काफी नाम कमाया और वह सन् 1925 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ के भौतिक विज्ञान अनुभाग के अध्यक्ष बन गए।

सन् 1938 में वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्ति किए गए। वहां उन्होंने कई

नए कार्य आरंभ किए जिनमें भौतिक विज्ञान के एम.एस–सी. पाठ्यक्रम में नाभिकीय भौतिकी को शामिल करना और नाभिकीय विज्ञान में एम.एस–सी. के बाद पाठ्यक्रम को आरंभ करना एवं देश में अपनी तरह का पहला सायक्लोट्रॉन के निर्माण संबंधी पहल करना शाामिल था।

साहा ने सौर विकिरणों के भाप और दबाव मापने के लिए उपकरणों का विकास और अनेक वैज्ञानिक संस्थानों जैसे इलाहबाद विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग और कलकत्ता में नाभिकीय भौतिकी संस्थान के गठन में मदद की। उन्होंने *साइंस एंड कल्चर* नाम जर्नल का आरंभ किया और मृत्युपर्यंत उसके संपादक भी रहे। वह अनेक वैज्ञानिक समुदायों जैसे नेशनल अकादमी ऑफ साइंस (1930), द इंडियन फिजिक्स सोसायटी (1934), इंडियन इंस्ट्टियूट ऑफ साइंस (1935) और द इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइंस (1944) आदि के आयोजनों में अग्रणी भूमिका निभाते थे। उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए सन् 1943 में कोलकाता में साहा इंस्ट्टियूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स की स्थापना की गयी।

एक महान वैज्ञानिक होने के साथ ही वह संस्थान निर्माता भी थे। उन्होंने सन् 1935 में कलकत्ता में इंडियन साइंस न्यूज़ एसोशिएशन एवं सन् 1950 में इंस्ट्टियूट ऑफ साइंस (1935) इंस्ट्टियूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स की स्थापना की थी। दामोदर घाटी परियोजना की मौलिक योजना को तैयार करने का श्रेय भी उन्हें दिया जाता है।

एक वैज्ञानिक होने के अलावा वह संसद सदस्य के रूप में भी चुने गए थे। भारतीय कैलेंडर सुधार संबंधी उनका कार्य काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ। वह सन् 1952 में भारत सरकार द्वारा गठित की गयी कैलेंडर सुधार समिति के अध्यक्ष थे। साहा के प्रयत्नों से ही समिति का निर्माण हो सकता था। समिति का लक्ष्य, पूर्णतया वैज्ञानिक आधार पर एक परिशुद्ध कैलेंडर का निर्माण करना था। यह कार्य काफी जटिल था लेकिन उन्होंने इसे सफलतापूर्वक पूर्ण किया। 16 फरवरी, 1956 को साहा की मृत्यु हो गयी थी।

9. सत्येन्द्र नाथ बोस

हाल ही में 'हिग्स बोसान' जो 'गॉड पार्टिकल' के नाम से प्रसिद्ध है, से संबंधित होने के कारण सत्येन्द्र नाथ बोस का नाम चर्चा में रहा। सत्येन्द्र नाथ बोस एक अद्वितीय भारतीय भौतिकविद् थे। उन्हें क्वांटम भौतिकी में किए गए उनके कार्यों के लिए जाना जाता है। 'बोस–आइंस्टीन सिद्धांत' के कारण भी उन्हें प्रसिद्ध मिली। अणु के एक प्रकार के कण का नामकरण उनके नाम पर 'बोसान' रखा गया।

सत्येन्द्र नाथ बोस का जन्म 1 जनवरी, 1894 को कोलकाता में हुआ था। उनके पिता सुरेन्द्र नाथ बोस ईस्ट इंडिया रेलवे के इंजीनियरिंग

विभाग में कार्यरत थे। सात भाई–बहनों में सत्येन्द्र नाथ बोस सबसे बड़े थे। सत्येन्द्र ने कोलकाता से हिंदू हाई स्कूल से अपनी आरंभिक पढ़ाई पूरी की। वह प्रखर विद्यार्थी थे। उन्होंने प्रेसिडेंसी कॉलेज कोलकाता से गणित विषय का अध्ययन किया। वह विश्वविद्यालय में स्नातक और स्नातकोत्तर की परीक्षाओं में प्रथम स्थान पर रहे थे। सन् 1916 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आधुनिक गणित एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान में एम.एस–सी. की कक्षाएं आरंभ की। एस. एन. बोस ने सन् 1916 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से व्याख्याता के रूप में अपना कैरियर शुरू किया था। वहां उन्होंने सन् 1916 से 1921 तक अपनी सेवाएं दी। उन्होंने सन् 1921 में, नवस्थापित ढाका विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में रीडर की नौकरी कर ली। सन् 1924 में, 'प्लैंकस गेसेट्स लिफ्ट क्वांटेस हाइपोथिसिस' विषय पर सत्येन्द्र नाथ बोस का एक लेख प्रकाशित हुआ। इस लेख को अल्बर्ट आइंस्टीन को भेजा गया। आइंस्टीन ने इसकी सराहना करते हुए स्वयं इसका अनुवाद जर्मन भाषा में करके इसे जर्मनी के प्रसिद्ध पत्रिका 'जेइट्स स्क्रिफ्ट फॉर फिज़िक' में प्रकाशन के लिए भेजा। उस क्षेत्र में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों द्वारा बोस की इस अवधारणा को काफी सराहा गया। बाद में उनकी यह अवधारणा वैज्ञानिकों के मध्य 'बोस–आइंस्टीन सिद्धात' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सन् 1926 में, सत्येन्द्र नाथ बोस ढाका विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनाए गए। यद्यपि उस समय तक उनकी डॉक्टरेट पूरी नहीं हुई थी। उन्हें आइंस्टीन की सिफारिश पर प्रोफेसर नियुक्त किया गया था। सन् 1929 में सत्येन्द्र नाथ बोस को भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भौतिकी सत्र का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1944 में उन्हें भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1945 में, उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के खैरा प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया। वह कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1956 में सेवानिवृत्त हुए। विश्वविद्यालय ने उनकी सेवानिवृत्ति पर उन्हें सम्मानित करते हुए उन्हें एमेरिटस प्रोफेसर नियुक्त किया। बाद में वह विश्वभारती विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त किए गए। सन् 1958 में उन्हें लंदन स्थित रॉयल सोसायटी के फैलो के रूप में चुना गया।

सत्येन्द्र नाथ बोस की असाधारण उपलब्धियों को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया। 4 फरवरी, 1974 को कोलकाता में उनकी मृत्यु हुई।

10. सलिम अली

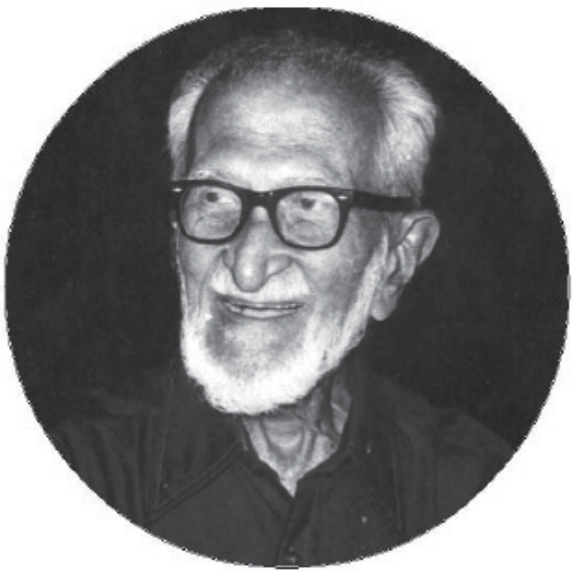

डॉ. सालिम मुईनुद्दीन अब्दुल अली या डॉ. सलिम अली का नाम पक्षियों का पर्याय है। इस प्रसिद्ध पक्षी विज्ञानी और प्रकृतिवादी का जन्म 12 नवम्बर 1896 को मुम्बई में हुआ था। उन्हें 'भारत के बर्डमैन' के रूप में जाना जाता है। वह भारत में व्यवस्थित रूप से पक्षी सर्वेक्षण करने वालों में अग्रणी व्यक्ति थे। उनके शोध कार्यों ने भारत में पक्षी–विज्ञान के विकास में काफी मदद की।

एक महान दूरदर्शी होने के कारण इन्होने पक्षियों को गंभीर विषय बनाया जबकि पहले कुछ लोगो के लिए पक्षी केवल मनोरंजन मात्र

थे। बहुत ही कम उम्र में अनाथ हो गए सलिम अली को उनके मामाजी अमिरुद्दीन तैयाबाजी ने पाला और उन्हें प्रकृति से परिचित कराया।

दस वर्ष के होने पर सलिम ने एक दिन आकाश में एक पक्षी को उड़ते हुए देखा और फिर उसे गोली लगने से गिरते हुए देखा। उनको दिल दहल गया और उन्होंने दौड़ कर उसे उठा लिया। वह एक गौरेया थी, लेकिन उसके गले पर गहरा पीला रंग था। जिज्ञासा से उन्होंने उस गौरेया को अपने मामा को बताया और उस पक्षी के बारे में ओर अधिक जानना चाहा। उत्तर देने में असमर्थ उनके मामा उन्हें, बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी (बीएनएचएस) के सचिव डब्ल्यू.एस. मिलार्ड के पास ले गए। इस किशोर बच्चे में पक्षियों के प्रति असामान्य रुचि देखते हुए मिलार्ड ने उन्हें अनेक पक्षियों को दिखाया। जब सलिम बचपन में देखे गए पक्षी के समान ही पक्षी को देखते तो वह काफी उत्सुक हो जाते। इसके बाद तो किशोर सलिम उस स्थान पर लगातार आते रहे।

विश्वविद्यालय की औपचारिक डिग्री न होने के कारण जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के एक पक्षी विज्ञानी पद को हासिल करने में सलिम अली असमर्थ रहे। हालांकि 1926 में, मुंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय में शुरू हुए एक प्राकृतिक इतिहास खंड में गाइड के रूप में व्याख्याता नियुक्त होने के बाद उन्होंने आगे पढ़ाई करने का फैसला किया। सन् 1928 में उन्होंने जर्मनी के लिए अध्ययन अवकाश लेने का फैसला किया, जहां वो बर्लिन विश्वविद्यालय के प्राणिशास्त्र संग्रहालय में प्रोफेसर इरविन स्ट्रेसमैन के अधीन कार्य करते हुए प्रशिक्षित हुए। 1930 में भारत लौटने पर उन्होंने पाया कि गाइड व्याख्याता के पद को पैसों की कमी के कारण समाप्त कर दिया गया है। और एक उपयुक्त नौकरी खोजने में असमर्थ होने के कारण सालिम अली और उनकी पत्नी तहमीना मुम्बई के निकट किहिम नामक एक तटीय गांव में स्थानांतरित हुए। यहां पर उन्हें बया या वीवर पक्षी को नजदीक से अध्ययन करने का अवसर मिला। सन् 1930 में सलिम अली द्वारा उनके अनुसंधान और अध्ययन के प्रकाशनों ने उन्हें 'पक्षी विज्ञान' में पहचान दिलाई।

सलिम अली बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (बीएनएचएस) की उत्तरजीविता सुनिश्चित करने में बहुत प्रभावशाली रहे। उन्होंने वित्तीय सहायता के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू को पत्र लिख कर 200 साल पुराने संस्थान को किसी तरह बचा पाए। अली के हस्तक्षेप से भरतपुर पक्षी अभयारण्य और साइलेंट वैली नेशनल पार्क को बचाया जा सका। 1990 में, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा कोयंबटूर के अनाईकट्टी में सलिम अली पक्षी–विज्ञान एवं प्रकृति विज्ञान (अली सेंटर फॉर ओर्निथोलोजी एंड नेचुरल हिस्टरी–एसएसीओएन) को स्थापित किया गया। सन् 1976 में उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया। 20 जून, 1987 को 90 वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु हो गयी।

11. पंचानन महेश्वरी

प्रसिद्ध जीवविज्ञानी पंचानन महेश्वरी का जन्म सन् 1904 में राजस्थान के जयपुर में हुआ था। अपने कॉलेज के दिनों में, वह एक अमेरिकी मिशनरी शिक्षक डा. डब्ल्यू डुडजीओन से काफी प्रभावित हुए। माहेश्वरी ने वनस्पतियों में टेस्ट ट्यूब निषेचन तकनीक का आविष्कार किया। उस समय तक किसी ने भी ऐसा नहीं सोचा था कि फूलदार वनस्पतियों को टेस्ट–ट्यूब द्वारा निषेचित किया जा सकता है। माहेश्वरी की तकनीक ने वनस्पति भ्रूण विज्ञान में नए रास्ते खोल दिए और आर्थिक एवं प्रयुक्त वनस्पति विज्ञान में इसके उपयोगों को नयी दिशा दी। अनेक ऐसे फूलदार पौधों में जिनमें प्राकृतिक रूप से

क्रॉस–प्रजनन नहीं होता था अब उनमें क्रॉस–प्रजनन संभव हो सका था। महेश्वरी के शिक्षक ने एक बार कहा था कि यदि उनके छात्र आगे बढ़ते हैं तो उन्हें बहुत अधिक संतुष्टि होगी। इन शब्दों ने पंचानन को प्रोत्साहित किया और वह हमेशा सोचते रहते कि वह ऐसा क्या करें जिससे उनके शिक्षक का सपना पूरा हो सके। वह बदले में अपने शिक्षक के लिए क्या करें, इस बात ने पंचानन को प्रोत्साहित किया। डुडजीओन ने उन्हें जवाब दिया था कि ''जो मैंने आपके लिए किया है वही आप अपने विद्यार्थियों के लिए कीजिए''। उनके शिक्षक के सुझाव के अनुसार, उन्होंने अनेक विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया। उन्होंने इलाहबाद विश्वविद्यालय से वनस्पति विज्ञान में स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी की।

उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग के अंतर्गत भ्रूण विज्ञान और ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) के क्षेत्र में अनुसंधान के एक महत्वपूर्ण केंद्र की स्थापना की। इस विभाग को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा वनस्पति विज्ञान में उन्नत अध्ययन के केंद्र के रूप में मान्यता दी गई थी।

माहेश्वरी की पत्नी अपने घरेलू कार्यों के अलावा उनके लिए स्लाइड्स की तैयारी कर उनके कार्यों में योगदान देती थी। 1950 में वापस उन्होंने भ्रूण विज्ञान, शरीर विज्ञान और आनुवंशिकी के बीच संबंध स्थापित किया। उन्होंने अपरिपक्व भ्रूण के कृत्रिम संवर्धन के काम को आरंभ करने की आवश्यकता पर बल दिया। इन दिनों विज्ञान के क्षेत्र में ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) मील का एक पत्थर बन गया है। उनके द्वारा किए गए टेस्ट ट्यूब निषेचन और इंट्रा–डिम्बग्रंथि परागण ने दुनिया भर में उन्हें प्रसिद्धि दिलाई। उन्होंने सन् 1950 में एक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका 'सायटोमॉर्फालोजी' और एक लोकप्रिय पत्रिका 'द बोटेनिका' को आरंभ किया। उन्होंने अपनी मृत्यु पर्यंत यानी मई 1966 तक 'सायटोमॉर्फालोजी' पत्रिका का संपादन किया। उन्हें रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन (एफआरएस), भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (इंसा) और कई अन्य उत्कृष्ट संस्थाओं द्वारा छात्रवृत्ति से सम्मानित किया गया। उन्होंने विद्यालयों में जीव विज्ञान शिक्षण के स्तर में सुधार के लिए पुस्तकें भी लिखी। सन् 1951 में, उन्होंने इंटरनेशनल सोसायटी ऑफ प्लांट मार्फालोजिस्टस् की स्थापना की।

12. बी.पी. पाल

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक, डॉ. बी.पी. पाल का जन्म 26 मई, 1906 को पंजाब में हुआ था। उनका परिवार बाद में बर्मा (वर्तमान में म्यांमार) चला गया जो उस समय एक ब्रिटिश कॉलोनी थी, वहां उन्होंनें एक चिकित्सा अधिकारी के रूप में काम किया। पाल ने बर्मा के म्यामों के सेंट माइकल स्कूल में अध्ययन किया। एक मेधावी छात्र होने के अलावा पाल को बागवानी और पेंटिंग का भी शौक था।

1929 में पाल ने रंगून विश्वविद्यालय से वनस्पति विज्ञान में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। जहां

विश्वविद्यालय में विज्ञान की सभी शाखाओं में शीर्ष स्थान प्राप्त करने के लिए उन्हें मैथ्यू हंटर पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें एक छात्रवृत्ति प्रदान की गई जिसके द्वारा उन्हें कैंब्रिज में अपनी स्नातकोत्तर शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए अनुमति दी गयी। डॉ. पाल ने प्रतिष्ठित प्लांट ब्रीडिंग संस्थान में सर फ्रैंक एंग्लेडू के साथ मिलकर गेहूं में संकर वैधता पर काम किया। इससे गेहूं संकर के वाणिज्यिक दोहन के आधार पर हरित क्रांति के डिजाइन को आधार मिला।

मार्च 1933 में, डा. पाल को बर्मा के कृषि विभाग में सहायक चावल अनुसंधान अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया। उसी वर्ष अक्टूबर में, वह बिहार के पूसा में चले गए, जहां वह इम्पीरियल कृषि अनुसंधान संस्थान में दूसरे आर्थिक वनस्पति वैज्ञानिक बने। सन् 1947 में इस संस्थान का नाम बदलकर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआई) रखा गया। आईएआरआई पहले बिहार के पूसा में स्थित था। लेकिन एक तेज भूकंप ने इसकी मुख्य ईमारत को काफी नुकसान पहुंचाया जिससे सन् 1936 में इस संस्थान को नई दिल्ली में स्थानांतरित कर दिया गया। डा. पाल को नई दिल्ली स्थित आईएआरआई संस्थान का पहला भारतीय निदेशक बनाया गया। सन् 1950 में इसका नामकरण पूसा किया गया। वह मई 1965 तक इस पद पर रहे। उसके बाद वह भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के पहले महानिदेशक बने। उन्होंने मई 1965 से जनवरी 1972 तक इस पद पर कार्य किया। इसी समयावधि में अत्याधिक सफलता के साथ हरित क्रांति को आरंभ किया गया था।

डॉ. पाल का प्रमुख योगदान हरित क्रांति के वैज्ञानिक पहलुओं के अंतर्गत गेहूं आनुवंशिकी और प्रजनन के क्षेत्र में था। उन्होंने कम पैदावार के लिए गेहूं में लगने वाले रतुआ रोग को जिम्मेदार माना। उन्होंने व्यवस्थित प्रजनन विधि द्वारा रतुआ रोग से प्रतिरोधी फसलों की किस्मों को विकसित किया। उस समय भारत एक गंभीर खाद्य संकट से जूझ रहा था और दुनिया में इस देश को भूखे लोगों के देश के रूप में जाना जाता था। डॉ. पाल ने भारत की वैश्विक छवि को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसके कारण जल्द ही भारत खाद्यान्न का निर्यातक बन गया।

डॉ. पाल गुलाब प्रजनक भी थे और उन्होंने गुलाब की अनेक किस्मों का विकास किया। वह रोज सोसायटी और बोगेनिविला सोसायटी के संस्थापक अध्यक्ष थे। इसके अलावा उन्होंने इंडियन सोसायटी ऑफ जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग की भी स्थापना की। वह 25 वर्षों तक इंडियन जर्नल ऑफ जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग के संपादक रहे। सन् 1972 में उन्हें रॉयल सोसाइटी का फैलो चुना गया। उन्हें पद्म विभूषण सहित कई पुरस्कार प्रदान किए गए थे। सन् 1959 में उन्हें पद्मश्री से, सन् 1968 में पद्मभूषण से और सन् 1987 में पद्मविभूषण से सम्मानित किया गया। 14 सितंबर, 1989 में उनकी मृत्यु हो गयी।

13. होमी जहांगीर भाभा

भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के जनक होमी जहांगीर भाभा का जन्म 30 अक्टूबर, 1909 को मुम्बई में एक संपन्न पारसी परिवार में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा मुम्बई के कैथेड्रल ग्रामर स्कूल में संपन्न हुई। फिर उन्होंने एल्फिंसन कॉलेज में प्रवेश लिया। उनके पिता और फूफा दोराबजी टाटा द्वारा प्रोत्साहित करने पर भाभा कैंब्रिज विश्वविद्यालय चले गए। भाभा वहां मे मैकेनिकल इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त करके स्वदेश लौटे। स्वदेश आकर उन्होंने जमशेदपुर स्थित टाटा मिलस् में धातु वैज्ञानिक के रूप में कार्य आरंभ किया।

भाभा को अपने परिवार से देश की सेवा करने और सीखने की ललक विरासत में मिली थी। उनके परिवार का (माता और पिता दोनों का) टाटा परिवार से गहरा रिश्ता था। बीसवीं सदी के आरंभिक समय में, टाटा परिवार धातुकर्म, ऊर्जा उत्पादन एवं विज्ञान तथा इंजीनियरिंग में अग्रणी भूमिका निभा रहा था। यह परिवार महात्मा गांधी एवं अन्य राष्ट्रवादी नेताओं से प्रेरित होकर राष्ट्रभक्ति की प्रबल भावना से ओतप्रोत थे। इस परिवार की विभिन्न कलाओं विशेषकर शास्त्रीय संगीत और चित्रकारी में गहरी रुचि थी, जिसके कारण भाभा में अनोखी सौंदर्य बोध संवेदना का विकास हुआ, जिसकी झलक हमें उनके द्वारा उनके जीवन में किए गए सभी रचनात्मक कार्यों पर दिखाई देती है।

इंजीनियरिंग पूर्ण करने के बाद भाभा की रुचि **भौतिक विज्ञान** में हुई। 1930–1939 की अवधि के दौरान भाभा ने ब्रह्मंड (कॉस्मिक) किरणों पर असाधारण मौलिक शोध कार्य किए। उनके इन कार्यों के कारण मात्र 31 वर्ष की युवा उम्र में उन्हें रॉयल सोसायटी से छात्रवृत्ति मिली। भाभा सन् 1939 में भारत लौट आए और द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होने के कारण भारत में ही रह गए। उन्हें बेंगलोर स्थित भारतीय विज्ञान कांग्रेस में कार्य करने के लिए चुना गया, जहां विज्ञान के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार पाने वाले भारत के पहले वैज्ञानिक सर सी.वी. रामन, भौतिकी विभाग के प्रमुख थे। आरंभ में रीडर के पद पर नियुक्त किए गए भाभा को शीध्र ही ब्रह्मांड किरणों पर शोध के लिए प्रोफसेर पद प्रदान किया गया।

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में भाभा के प्रखर नेतृत्व की अवधि करीबन 22 वर्षों यानी सन् 1944 से 1966 के दौरान रही। दिसंबर 1945 में भाभा मौलिक अनुसंधान संस्थान की स्थापना भाभा के पेतृक घर की 'केनिल्ग्रोथ' नामक ईमारत में की गयी। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की बैठक में भाग लेने के लिए वियना जाते हुए आल्प्स पर्वत की मोंट ब्लॉट चोटी पर 24 जनवरी, 1966 को हुई विमान दुर्घटना में भाभा की असमय मृत्यु हो गई।

14. विक्रम अम्बालाल साराभाई

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के जनक के रूप में विख्यात विक्रम अम्बालाल साराभाई का जन्म 12 अगस्त, 1919 को इलाहबाद में एक संपन्न परिवार में हुआ था। उनके जीवन के आरंभिक दिनों में निजी विद्यालय में अध्ययन के दौरान वो वैज्ञानिक प्रवृत्ति की ओर आकर्षित हुए। अपने कस्बे के गुजराती कॉलेज में अध्ययन के बाद सन् 1937 में वह इंग्लैंड गए और वहां कैंब्रिज के सेंट जॉन कॉलेज में भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया। वहां साराभाई ने ट्राईपोस किया। सन् 1940 के दौरान विश्व, दूसरे विश्व युद्ध का सामना कर रहा था। इसीलिए साराभाई भारत लौट आए और बेंगलोर में भारतीय विज्ञान संस्थान में शोधार्थी के रूप में जुड़ गए जहां उन्होंने कॉस्मिक विकिरणों पर अध्ययन किया।

बेंगलोर में नोबेल पुरस्कार विजेता सर सी.वी.रमन के मार्गनिर्देशन में उन्होंने बेंगलोर, पुणे और हिमालय में बेधशालाओं को स्थापित किया। जल्द ही विश्व युद्ध खत्म हो गया और वह वापिस थोड़े समय

के लिए इंग्लैंड चले गए। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में किए गए उनके महत्वपूर्ण कार्य के लिए साराभाई को पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गयी।

उनका वास्तविक कार्य 1947 में एक मौसमविज्ञानी के. आर. रामनाथन् के साथ आरंभ हुआ जिन्होंने उन्हें अहमदाबाद में भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला की स्थापना में मदद की। आरंभ में अहमदाबाद के विज्ञान शिक्षा संस्थान की सोसायटी में इस संस्था ने कार्य किया। कॉस्मिक विकिरणों और वायुमंडलीय भौतिकी के विश्लेषण और अध्ययन पर वैज्ञानिकों को दो समूहों को बांटा गया। साराभाई के समूह ने अनुभव किया कि मौसम का विश्लेषण ही कॉस्मिक विकिरणों में होने वाले विचलनों के लिए पर्याप्त नहीं है, उन्होंने इसे सौर गतिविधियों से संबंधित माना। सौर भौतिकी की दिशा में उन्होंने अग्रणी कार्य किया।

इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए साराभाई को जल्द ही भारतीय वैज्ञानिक एवं अंतरिक्ष अनुसंधान परिषद् और परमाणु विभाग से वित्तीय सहायता मिली। लेकिन यह सहयोग इतना ही नहीं था। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष–1957 में भारतीय कार्यक्रमों के आयोजन को कहा। उस समय, सोवियत संघ ने स्पूतनिक–प्रथम को प्रक्षेपित किया था। भारत इस दिशा में पीछे नहीं रहना चाहता था इसीलिए साराभाई की अध्यक्षता में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम की राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गयी।

इस दूरदर्शी वैज्ञानिक ने परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष होमी भाभा के सहयोग से, 21 नवंबर, 1963 को अरब सागर के तट पर थुम्बा में देश के प्रथम उपग्रह प्रक्षेपण केन्द्र की स्थापना की। भाभा की असमय मौत के बाद सन् 1966 में साराभाई को भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान की स्थापना साराभाई की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। 31 दिसम्बर, 1971 को 52 वर्ष की उम्र में सोते हुए उनकी मृत्यु हो गयी थी।

अंतरिक्ष विज्ञान में किए गए उनके अग्रणी अनुसंधान कार्यों के सम्मान में डा. विक्रम साराभाई को सन् 1962 में शांतिस्वरूप भटनागर मेडल एवं 1966 में पद्म भूषण सम्मान से सम्मानित किया गया था।

15. वर्गीस कुरियन

भारत के दुग्ध–पुरुष के नाम से जाने वाले वर्गीस कुरियन का जन्म 26 नवंबर, 1921 को केरल के कालीकट में हुआ था। उनके पिता कोचीन में सिविल सर्जन थे। उन्होंने सन् 1940 में मद्रास के लोयला कॉलेज से भौतिक विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त कर मद्रास यूनिवर्सिटी से बीई (मेकेनिकल) की उपाधि प्राप्त की। डिग्री प्राप्त करने के बाद उन्होंने जमशेदपुर स्थित टाटा स्टील टेक्नीकल इंस्टिट्यूट में नौकरी की, जहां से उन्होंने 1946 में स्नातक किया था। उसके बाद सरकारी छात्रवृत्ति पर अमेरिका की मिशीगन राज्य विश्वविद्यालय से उन्होंने धातुविज्ञान इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की।

उन्हें ऑपरेशन फ्लड के संस्थापक के रूप में जाना जाता है जो विश्व में डेयरी विकास का सबसे

बड़ा कार्यक्रम था। कुरियन ने सहकारी डेयरी विकास के आनंद मॉडल का आधुनिकीकरण किया, जिसके कारण भारत में श्वेत क्रांति की आधारशिला रखी गयी।

इससे विश्व में भारत सबसे अधिक दूध उत्पादन करने वाला देश बना। वह गुजरात सहकारी दूध संगठन के संस्थापक थे। इस सहकारी संगठन द्वारा अमूल ब्रांड के खाद्य को प्रबंधित किया गया। किसानों के प्रत्यक्ष नियंत्रण वाला अमूल, वैश्विक मानकों पर खरा उतरने वाला भारतीय ब्रांड बना, जिसने लाखों भारतीयों को जोड़ा। कुरियन और उनके समुह ने गाय के दुध की बजाय भैंस के दुध को संघनित करके उससे दूध पावडर बनाने की विधि को खोजने में अग्रणी भूमिका निभाई। आज देश के विभिन्न हिस्सों में 1000 से अधिक शहरों में दूध के गुणवत्ता युक्त पैक उपलब्ध हैं। और इस दूध का पाश्चुरीकरण, पैकिंग और ब्रांड सीधे किसानों के नियंत्रण में है। उन्हें सन् 1999 को पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया। सितंबर, 2012 में उनकी मृत्यु हो गयी।

16. एम.एस. स्वामिनाथन

मनकोम्बू सम्बमिनाथन स्वामीनाथन का जन्म 7 अगस्त, 1925 को तमिलनाडू के कुंभकोणम में हुआ था। स्वामीनाथन भारत में हरित क्रांति को अमलीजामा पहनाने वाले प्रमुख व्यक्ति थे। हरित क्रांति द्वारा उच्च उत्पादक फसलों की खेती ने क्रांति ला दी थी। प्रसद्धि पत्रिका टाईम द्वारा 20वीं सदी के प्रमुख 20 एशियाई व्यक्तियों की सूची में उनके नाम को शामिल किया गया है। वह एम. एस. स्वामीनाथन शोध संस्थान के संस्थापक एवं अध्यक्ष हैं।

उनके चिकित्सक पिता गांधीजी के उत्कट अनुयायी थे जिसके कारण उनमें राष्ट्रभक्ति की भावना का विकास हुआ। महाविद्यालय में उन्होंने अन्य आकर्षक पाठ्यक्रमों की बजाय कृषि का अध्ययन किया। वह लगभग एक पोलिस ऑफिसर बन गए थे, लेकिन सन् 1949 में उन्हें नीदरलैंड में आनुवंशिकी में अनुसंधान के लिए छात्रवृत्ति मिले, जिससे उनके कैरियर में महत्वपूर्ण मोड़ आया। उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय से आनुवंशिकी में पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय में आगे पढ़ाई जारी रखी। फिर उन्होंने प्रोफेसर के पद पर कार्य किया। वह इस

बात को लेकर स्पष्ट थे कि उन्हें देश के खाद्यात्र की कमी को पूरा करने के लिए देश लौटकर कार्य करना है।

उन्होंने विश्व से भुखमरी को दूर करने का सपना देखा और धारणीय विकास का समर्थन किया। उन्होंने जैवविविधता संरक्षण पर भी जोर दिया। स्वामीनाथन ने अमेरिका के कृषि वैज्ञानिक नार्मन बोरलॉग द्वारा मैक्सिको में विकसित प्रजातियों के बीजों को भारत लाकर उनका स्थानीय प्रजातियों से क्रास प्रजनन कराया जिसके कारण गेहूं की ऐसी प्रजाति प्राप्त हुई, जिनसे परंपरागत प्रजातियों से अधिक उपज होती थी। उसी समय अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (आईआरआरआई) के वैज्ञानिकों ने ऐसा ही विलक्षण कार्य चावल के साथ किया।

एशिया की आसन्न त्रासदी अब आशा के नए युग में बदल गयी जिसके कारण 1980 और 1990 के दशक के दौरान एशिया के आर्थिक विकास का रास्ता साफ हो गया। आज भारत में एक वर्ष के दौरान लगभग 70 लाख टन गेहूं होते हैं, जबकि साठ के दशक में गेहूं का उत्पादन प्रतिवर्ष 12 लाख टन था। सन् 1972 से 1979 तक वह भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के महानिदेशक भी रहे थे। वह 1979 से 1980 के दौरान वह केन्द्रीय कृषि मंत्री बनाए गए। वो आईआरआरआई के महानिदेशक भी रहे और बाद में प्रकृति और प्राकृतिक संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ के अध्यक्ष भी बने। सन् 1971 में सामुदायिक नेतृत्व के लिए उन्हें रेमन मेग्सेस पुरस्कार प्रदान किए। सन् 2013 में उन्हें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता सम्मान से सम्मानित किया गया।

17. एम. के. वेणु बप्पू

मनाली कालात वेणु बप्पू का जन्म 10 अगस्त, 1927 को हैदराबाद स्थित निजामिया वेधशाला में कार्यरत खगोलविद् के यहां हुआ। भारतीय ताराभौतिकी संस्थान के निर्माण के पीछे एम. के. वेणु बप्पू ही थे। स्वतंत्र भारत में प्रकाशीय खगोल विज्ञान के पुनरुद्धार के पीछे ये ही महान खगोलविद् थे। मद्रास विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त करने के प्रश्चात बप्पू को प्रख्यात हावार्ड विश्वविद्यालय से छात्रवृत्ति मिली।

अध्ययन के कुछ ही दिनों के बाद, उन्होंने एक धूमकेतु को खोजा, जिसका नामकरण उनके बाद उनके सहयोगियों बार्क जे. बॉक और गार्डन न्यूर्किक ने उनके सम्मान में बप्पू–बॉक–न्यूर्किक रखा गया। उन्होंने 1952 में अपनी पी–एच.डी. पूरी की और पोलेमर विश्वविद्यालय में नौकरी आरंभ की। उन्होंने और कॉलिन विल्सन ने एक विशेष प्रकार के तारे की दीप्ति के बारे में एक महत्वपूर्ण अवलोकन किया और इसे बप्पू–विल्सन प्रभाव के रूप में जाना जाने लगा। वह सन् 1953 में भारत लौट आए और नैनीताल में उत्तर प्रदेश राज्य वेधशाला के निर्माण में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई। सन् 1960 में, उन्होंने

कोडाइकनाल वेधशाला के निदेशक के रूप में पदभार संभाला और फिर इसके आधुनिकीकरण में अहम योगदान दिया। उन्होंने तमिलनाडु के कावलूर में एक शक्तिशाली दूरबीन के साथ वेधशाला की स्थापना की।

प्रशांत खगोलिय संघ द्वारा सन् 1949 में उन्हें प्रख्यात डोन्हे धूमकेतु पदक से सम्मानित किया गया। सन् 1979 में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय खगोलीय संघ के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था। उन्हें बेल्जियम विज्ञान अकादमी के विदेशी मानद फेलो के रूप में चुना गया था। इसके अलावा वह अमेरिकी खगोलीय संघ के मानद सदस्य भी रहे। आज बप्पू को आधुनिक भारतीय खगोलविज्ञान का जनक माना जाता है।

18. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

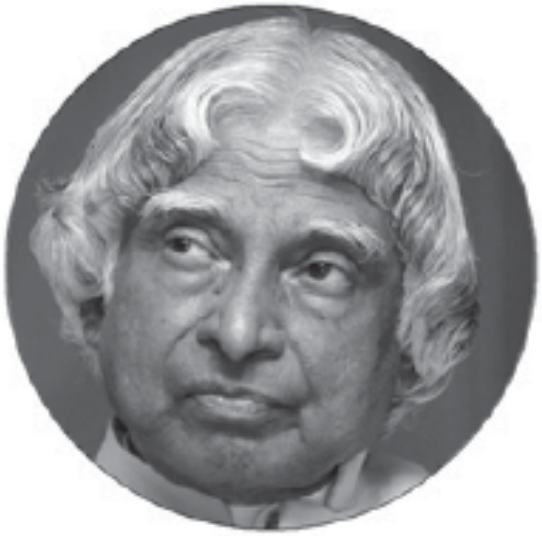

डा. अवुल पाकिर जेनुलब्दीन अब्दुल कलाम का जन्म 15 अक्टूबर, 1931 को तमिलनाडु के रामेश्वरम में हुआ था। अब्दुल कलाम विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। विश्व भर में मिसाईल पुरुष के नाम से विख्यात, डा. कलाम भारत के बहुत ही प्रसिद्ध राष्ट्रपति थे। वह भारत के ग्यारहवें राष्ट्रपति थे।

डा. कलाम को अपने अभिभावक से ईमानदारी और अनुशासन के गुण विरासत में मिले जिन्होंने पूरा जीवन उनकी मदद की। उन्होंने मद्रास तकनीकी विश्वविद्यालय से वैमानिकी इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। राष्ट्रपति बनने से पहले, उन्होंने रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) में वैमानिकी अभियंता के रूप में कार्य किया। कलाम के योगदानों में बैलेस्टिक मिसाइलों और अंतरिक्ष रॉकेट प्राद्योगिकी का विकास प्रमुख है। उन्होंने सन् 1998 में भारत द्वारा किए गए दूसरे परमाणु परिक्षण में संगठनात्मक, तकनीकी और राजनैतिक भूमिका का निर्वाह किया।

वह भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम), अहमदाबाद एवं आईआईएम, इंदौर में विजिटिंग प्रोफेसर रहे। वह भारतीय अंतरिक्ष संस्थान, तिरुवनंतपुरम के कुलपति भी रहे। इसके अलावा वह अनेक संस्थानों से जुड़े रहे। डा. कलाम ने परियोजना निदेशक के तौर पर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हुए भारत के पहले स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (एसएलवी–तृतीय) को विकसित किया जिससे जुलाई 1980 में रोहिणी उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित किया गया और इस प्रकार भारत को अंतरिक्ष क्लब का सदस्य बनाया गया। वह इसरो के प्रक्षेपण वाहन कार्यक्रम, विशेषकर पीएसएलवी के विन्यास के विकास के लिए भी जिम्मेदार रहे। डा. कलाम अग्नि और पृथ्वी मिसाइलों के विकास और संचालन से भी जुड़े रहे। उनकी पुस्तकों में विंग्स ऑफ फायर, इंडिया 2020, अ विज़न फॉर दी न्यू मिलेनियम, माई जर्नी एवं इग्नाइटेड मांडडः इनलीशिंग द पॉवर विदिन इंडिया प्रमुख हैं। इन पुस्तकों को अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवादित किया गया है।

डा. कलाम भारत के बहुत ही असाधारण वैज्ञानिकों में से एक थे। उन्हें 30 से भी अधिक विश्वविद्यालयों और संस्थाओं द्वारा मानद डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की गयी थी। उन्हें पद्म भूषण (1981), पद्म विभूषण (1990) और देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न (1997) प्रदान किए गए। 27 जुलाई, 2015 को उनकी मृत्यु शिलांग में हुई।

19. सेम पित्रोडा

सेम पित्रोडा के नाम से विख्यात सत्यनारायण गंगाराम पित्रोडा का जन्म 4 मई, 1942 को ओडिशा के तिटलागढ़ में हुआ था। उनके अभिभावक मूलतः गुजराती थे जो गांधीवादी विचारधारा के समर्थक थे। इसलिए पित्रोडा को गांधी जी के विचारों को समझने के लिए गुजरात भेजा गया। उन्होंने वड़ोदरा के वल्लभ विद्यानगर स्कूल से गुजराती भाषा में अपनी आरंभिक शिक्षा पूरी की। इसके बाद उन्होंने महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान और इलेक्ट्रानिकी में स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूर्ण की। इसके बाद वह अमेरिका चले गए और शिकागों में इलिनोइस संस्थान से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की।

वह एक प्रौद्योगिकीविद्, प्रर्वतक, उद्यमी और नीतिनिर्माता हैं। वह जन सूचना बुनियादी ढांचा एवं नवाचार विषय में प्रधानमंत्री (डा. मनमोहन सिंह) के सलाहकार रहे हैं। उन्हें भारत के दूरसंचार क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए जिम्मेदार माना जाता है। सन् 1984 में, प्रधानमंत्री राजीव गांधी के प्रौद्योगिकी सलाहकार के रूप में, डॉ. पित्रोदा ने भारत में न केवल दूरसंचार क्रांति की शुरुआत की बल्कि दूरसंचार से संबंधित कई मिशनों के माध्यम से प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए समाज की विकास के लिए इसका उपयोग साक्षरता, डेयरी, पानी, टीकाकरण, तिलहन आदि क्षेत्रों में किया।

सेम पित्रोडा ने राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के अध्यक्ष (2005–2008) के रूप में भी कार्य किया है। इस आयोग को भारत में ज्ञान आधारित संस्थानों और बुनियादी ढांचे में सुधार के लिए सीधे, प्रधानमंत्री के समक्ष नीति सिफारिशें प्रस्तुत करनी थीं। डॉ. पित्रोडा के पास करीब 100 प्रमुख प्रौद्योगिकी पेटेंट है। वह अनेक स्टार्ट–अप में शामिल रहे हैं। विश्व भर में उन्होंने अनेक व्याख्यान दिए हैं। वह सन् 1964 से उनकी पत्नी और दो बच्चों के साथ अधिकतर शिकागो स्थित इलिनोइस स्थान पर रहते हैं।

20. अनिल काकोडकर

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डा. अनिल काकोडकर का जन्म 11 नवंबर, 1943 को मध्यप्रदेश के बड़वानी में हुआ था। उनकी माता कमला काकोडकर और पिता पी. काकोदकर दोनों गांधीवादी थे। उन्होंने मुंबई में

अपनी स्कूली शिक्षा पूर्ण कर रुपारेल कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। सन् 1963 में काकोदडर ने मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिग्री प्राप्त करने के लिए बंबई विश्वविद्यालय के वीरमल जीजाबाई तकनीकी संस्थान में प्रवेश लिया। सन् 1964 में, अनिल काकोडकर ने भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (बीएआरसी), मुंबई में नौकरी आरंभ की।

वह भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग में सचिव और परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष भी रहे। भारत के परमाणु कार्यक्रम में अग्रणी भूमिका निभाने से पहले वह 1996 से 2000 की अवधि के दौरान ट्रांबे स्थित भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के निदेशक भी रहे थे।

भारत के शांतिपूर्ण परमाणु परीक्षणों के योजनानिर्माताओं के समूह में अनिल काकोडकर भी शामिल थे। इन परीक्षणों को सन् 1974 और 1998 के किया गया था। उन्होंने देश के दाबित भारी पानी रिएक्टर प्रौद्योगिकी के स्वदेशी विकास का भी नेतृत्व किया। अनिल काकोडकर ने कलपक्कम में दो रिएक्टरों और रावतभाटा में पहली इकाई के पुनर्सुधार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

वर्ष 1996 में अनिल काकोडकर बीएआरसी के निदेशक बने। होमी भाभा के बाद इस पद पर आसीन होने वाले वह सबसे कम उम्र के निदेशक थे। सन् 2000 से 2009 तक डॉ. अनिल काकोडकर ने भारत के परमाणु ऊर्जा आयोग का नेतृत्व किया। डा. अनिल काकोडकर ने भारत के परमाणु परीक्षणों की संप्रभुता की मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने भारत की आत्मनिर्भरता के लिए परमाणु ऊर्जा के लिए, ईंधन के रूप में थोरियम के उपयोग करने का दृढ़ता से समर्थन किया।

21. जी. माधवन नायर

डा. जी. माधवन नायर का जन्म 31 अक्टूबर, 1943 को केरल के तिरुवनंतरपुरम में हुआ था। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम (इसरो) के पूर्व अध्यक्ष को चंद्रयान मिशन के लिए जाना जाता है। चंद्रयान, चंद्रमा पर भेजा गया भारत का पहला मानवरहित मिशन था।

नायर ने सन् 1966 में केरल विश्वविद्यालय से इलेक्ट्रिकल और संचार इंजीनियरिंग में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद वह प्रशिक्षण के लिए मुंबई स्थित भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (बीएआरसी) गए। सन् 1967 में उन्होंने थुम्बा इक्वेटोरियल रॉकेट प्रक्षेपण केन्द्र (टीईआरएलएस) में नौकरी आरंभ की। इसरो में अपने छह साल के कार्यकाल के दौरान उन्होंने 25 सफल मिशन पूर्ण किए। उन्होंने बड़े पैमाने पर समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए टेली–शिक्षा और टेली–मेडिसिन जैसे कार्यक्रमों में गहरी रुचि ली। नतीजतन 31,000 से अधिक कक्षाओं को एडुसैट नेटवर्क के तहत जोड़ा गया और 315 अस्पतालों में टेलीमेडिसिन की सुविधाएं प्रदान की गईं जिनमें से 269 सुदूर/ग्रामीण/जिला अस्पतालों

में एवं 10 मोबाईल इकाईयां और 46 उच्च विशेषज्ञता वाले अस्पताल थे।

उन्होंने गांवों में गरीब लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए उपग्रह संयोजकता के माध्यम से ग्रामीण संसाधन केंद्रों (वीआरसी) की योजना शुरू की। वर्तमान में 430 से अधिक वीआरसी केन्द्रों द्वारा किसानों को भूमि के उपयोग, भूमि आच्छादन, मिट्टी और भूमिगत जल की संभावनाओं जैसे विभिन्न पहलुओं पर जानकारी प्रदान करने के अलावा उनके प्रश्नों के आधार पर महत्वपूर्ण निर्णय लेने में समर्थ बनाया जा रहा है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, द्विपक्षीय सहयोग के लिए कई अंतरिक्ष एजेंसियों और देशों विशेष रूप से फ्रांस, रूस, ब्राजील, इजरायल, आदि के साथ वार्ता के लिए माधवन नायर ने भारतीय प्रतिनिधिमंडलों का नेतृत्व करते हुए पारस्परिक रूप से लाभप्रद अंतरराष्ट्रीय समझौतों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1998 के बाद से डॉ. जी माधवन नायर ने बाह्य अंतरिक्ष (यूएन–सीओपीओएस) के शांतिपूर्ण उपयोग पर गठित संयुक्त राष्ट्र समिति की विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपसमिति के भारतीय प्रतिनिधिमंडल को नेतृत्व किया। डा. नायर को सन् 2009 में भारत के दूसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया।

22. विजय भटकर

डॉ. विजय पांडुरंग भटकर भारत के सबसे प्रशंसित वैज्ञानिकों और आईटी क्षेत्र में भारत के अग्रणी व्यक्तियों में से एक हैं। वह भारत के पहले सुपर कंप्यूटर 'परम' के प्रणेता और सुपरकंप्यूटिंग में भारत की राष्ट्रीय पहल सी–डैक के संस्थापक कार्यकारी निदेशक के रूप में जाने जाते हैं। उन्हें कई राष्ट्रीय संस्थानों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है, जिनमें सी–डैक, ईआर एंड डीसी, आईआईआईटीएम–केरल, आईटूआईटी, ईटीएच, ईटीएच रिसर्च लैब, एमकेसीएल और इंडिया इंटरनेशनल मल्टीवर्सिटी आदि प्रमुख हैं।

भारत के परम सुपर कंप्यूटर की शृंखला के वास्तुकार के रूप में, डा. भटकर ने भारत के लिए 'जिस्ट' बहुभाषी प्रौद्योगिकी सहित अनेक असाधारण प्रौद्योगिकीयां विकसित कीं। 11 अक्टूबर

1946 को जन्में, भटकर ने सन् 1965 में नागपुर के विएनआईटी से इंजीनियरिंग में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने बड़ौदा की एमएस यूनिवर्सिटी से स्नातकोत्तर किया और फिर सन् 1972 में आईआईटी दिल्ली से इंजीनियरिंग में पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

वह भारत सरकार के कैबिनेट की वैज्ञानिक सलाहकार समिति के सदस्य, सीएसआईआर के सदस्य और महाराष्ट्र एवं गोवा राज्यों के ई–गर्वेनेंस समिति के अध्यक्ष हैं।

डा. भटकर आईईईई, एसीएम, सीएसआई, आईएनएई और प्रमुख वैज्ञानिक, इंजीनियरिंग और प्रोफेशन सोसायटी ऑफ इंडिया के फैलो हैं। उन्हें पद्मश्री और महाराष्ट्र भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। अन्य प्रमुख पुरस्कारों में संत ज्ञानेश्वर विश्व शांति पुरस्कार, लोकमान्य तिलक पुरस्कार, एचके फिरोदिया और डेटाक्वेस्ट लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार आदि शामिल हैं। उन्हें पीटर्सबर्ग पुरस्कार के लिए भी नामांकित किया गया था। वह आईआईटी, दिल्ली के एक प्रतिष्ठित पूर्व छात्र हैं।

डॉ. भटकर ने 12 पुस्तकों और 80 शोध और तकनीकी शोधपत्र लिखे हैं। उनके वर्तमान अनुसंधान के क्षेत्रों में एक्ट्रस्केल, सुपरकंप्यूटिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मस्तिष्क–मन चेतना और विज्ञान एवं आध्यात्मिकता का संश्लेषण शामिल हैं। वर्तमान में व इंडियन इंटरनेशनल मल्टीवर्सिटी के कुलपति, ईटीएच रिसर्च लैब, आईटूआईटी के प्रमुख मेंटर, आईआईटी–दिल्ली के बोर्ड अध्यक्ष और विज्ञान भारती के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं।

23. कल्पना चावला

कल्पना चावला का जन्म 17 मार्च, 1962 को हरियाणा के करनाल जिले में हुआ था। भारत के पहले पायलट जे.आर.डी. उनके प्रेरणास्रोत थे। उनके मन में उड़ान भरने की गहरी इच्छा थी। उन्होंने अपनी आरंभिक पढ़ाई करनाल के टैगोर विद्यालय से की और बाद में पंजाब विश्वविद्यालय से वैमानिकी अभियांत्रिकी का अध्ययन किया। अपने वैमानिकी सपनों को उड़ान देने के लिए वह अमेरिका गयी। टेक्सास विश्वविद्यालय से सन् 1984 में वैमानिकी अभियांत्रिकी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के चार सालों के बाद उन्होंने कोलोरोडो विश्वविद्यालय से वैमानिकी अभियांत्रिकी में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी। उसी साल उन्होंने नासा के अमेस रिसर्च सेंटर में कार्य करना आरंभ किया। चावला ने अमेरिका की नागरिकता ली और जीन–पेरी हेरिसन से शादी की जो एक स्वतंत्र उड़ान प्रशिक्षक थे। उनकी उड़ान, लंबी पैदल यात्रा, ग्लाइडिंग और पढ़ने में गहरी रुचि थी। उन्हें उड़ान, एयरोबेटिक्स, ट्रेल–व्हील एयरोप्लेनस् से बहुत लगाव था।

सन् 1994 में चावला नासा के अंतरिक्ष कार्यक्रम में शामिल हो गई और अंतरिक्ष के लिए अपने पहले मिशन पर अंतरिक्ष शटल कोलंबिया की

उड़ान एसटीएस–87 में छह अंतरिक्ष यात्रियों के एक दल का हिस्सा बनीं जिसने 19 नवंबर, 1997 को उड़ान शुरू की। अपनी पहली उड़ान के दौरान वह अंतरिक्ष में 375 घंटे से अधिक रही, उन्होंने पृथ्वी की कक्षा के 252 से अधिक चक्कर लगाते हुए 65 लाख मील की यात्रा की। जहाज पर, वह मैल्फंगक्शनिंग स्पार्टन सैटेलाइट तैनाती की प्रभारी थी। दिलचस्प बात यह है कि अंतरिक्ष में पहली बार जाने वाली भारत में जन्मीं महिला होने के साथ ही वह ऐसी पहली भारतीय–अमेरिकी महिला थी।

एक मिशन के विशेषज्ञ और प्राथमिक रोबोट भुजा ऑपरेटर के रूप में, चावला चालक दल के उन सात सदस्यों में से एक थी जो 2003 में कोलंबिया अंतरिक्ष शटल दुर्घटना में मारे गए थे।

24. सुनीता विलियम्स पंड्या

19 सितंबर 1965 को अमेरिका में ओहियो में डॉ. दीपक और बोनी पंड्या के घर जन्मी सुनीता विलियम्स पंड्या ने महिला अंतरिक्ष यात्री के रूप में, तीन बार अंतरिक्ष यात्रा करने के साथ ही, सबसे अधिक समय (195 दिन) तक अंतरिक्ष में उड़ान भरने और अनेक बार (चार) अंतरिक्ष में चहलक़दमी करने के रिकार्ड के साथ अंतरिक्ष में चहलक़दमी में कुल मिलाकर 29 घंटे और 17 मिनट का समय बिताया।

विलियम्स के पिता की जड़ें भारत में गुजरात से जुड़ी है। इसलिए उन्होंने अपने पिता के परिवार से मिलने के लिए भारत के अनेक दौरे किए हैं। विलियम्स ने मैसाचुसेट्स में नीघम हाई स्कूल से आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने सन् 1983 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। सन् 1987 में उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका नौसेना अकादमी से भौतिक विज्ञान में विज्ञान स्नातक की डिग्री प्राप्त करने की ठानी। फिर सन् 1995 में फ्लोरिडा प्रौद्योगिकी संस्थान से इंजीनियरिंग प्रबंधन में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। 47 वर्षीय विलियम्स जुलाई 2012 में अंतरिक्ष के अपने अभियान के लिए रवाना हुई। स्टेशन के अभियान में शामिल 32 सदस्यी चालक दल पर वह एक फ्लाइट इंजीनियर थी जो अंतरिक्ष स्टेशन पर पहुंच कर अभियान की तैतींसवीं कमांडर बनी।

सुनीता को दौड़, तैराकी, बाइकिंग, ट्रायथलॉन, विंडसर्फिंग, स्नोबोर्डिंग और धनुष शिकार काफी पसंद है। उन्होंने ओरेगेन के एक संघीय पुलिस अधिकारी माइकल जे विलियम्स से शादी की। ये दोनों 20 वर्षों से अधिक समय से शादीशुदा हैं और अपने कैरियर के आरंभिक दिनों में इन दोनों ने हेलीकाप्टरों को उड़ाए है।

वह भगवान गणेश की भक्त हैं। जब वह अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर जाती हैं तो अपने साथ भगवत गीता की एक प्रति और गणेश की एक मूर्ति रखती हैं। वह जुलाई 2012 की यात्रा में वह अपने साथ वैदिक उपनिषद्ों का अंग्रेजी अनुवाद भी ले गयी थी।

25. सबीर भाटीया

सबीर भाटीया का जन्म 30 दिसंबर को चंडीगढ़ में हुआ था। भाटीया बैंगलोर में पल–बढ़े और उनकी आरंभिक शिक्षा पुणे स्थित बिशप स्कूल और बाद में सेंट जोसेफ बॉयज हाई स्कूल में हुई। सन् 1988 में वो अमेरिका चले गए और फिर उन्होंने राजस्थान बिट्स पिलानी से विदेश हस्तांतरण के बाद कैलिफोर्निया प्रौद्योगिकी संस्थान से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की।

स्नातक की पढ़ाई के बाद, सबीर ने एक हार्डवेयर इंजीनियर के रूप में एप्पल कंप्यूटर और फॉयरपॉवर सिस्टम्स इंक में काम किया। वहां काम करते हुए वह इस बात को समझ कर आश्चर्यचकित रह गए कि एक वेब ब्राउजर के माध्यम से इंटरनेट पर किसी भी सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जा सकता है। उन्होंने अपने सहयोगी जैक स्मिथ के साथ मिलकर 4 जुलाई 1996 को हॉटमेल की स्थापना की।

इक्कीसवीं सदी में, 36.9 करोड़ से अधिक पंजीकृत उपयोगकर्ताओं के साथ हॉटमेल दुनिया की सबसे बड़ी ई–मेल प्रदाता कंपनियों में से एक बन गया। अध्यक्ष और सीईओ के रूप में, उनके नेतृत्व में हॉटमेल ने तेजी से विकास किया और सन् 1998 में माइक्रोसॉफ्ट द्वारा इसका अधिग्रहण किया गया। हॉटमेल अधिग्रहण के बाद लगभग एक साल से कुछ अधिक समय तक भाटिया ने माइक्रोसॉफ्ट में काम किया। और फिर अप्रैल 1999 में उन्होंने माइक्रोसॉफ्ट छोड़ एक नए उद्यम, आरजू इंक को शुरू किया जो एक ई वाणिज्य फर्म है।

भाटिया ने जेएक्साएसएमएस नाम से निःशुल्क संदेश सेवा आरंभ की। उन्होंने अनुसार जेएक्साएसएमएस ''एक ऐसी एसएमएस सेवा होगी जैसे हॉटमेल ने ई–मेल के लिए की थी''। उन्होंने दावा किया कि यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी हो सकती है, जिसके कारण ऑपरेटरों को अपने नेटवर्क पर एसएमएस की संख्या में कमी होने पर राजस्व का नुकसान होगा लेकिन डेटा योजना खरीदने वाले उपयोगकर्ताओं को इससे लाभ होगा।

सफलता ने भाटिया को काफी प्रशंसा दिलाई। उद्यम पूंजी फर्म ड्रेपर फिशर जुरवेत्सन ने उन्हें "वर्ष 1997 के उद्यमी" के रूप में सम्मानित किया। एमआईटी ने उन्हें उन 100 युवाओं नवाचारियों में शामिल किया जिन्होंने नवीन आविष्कारों के माध्यम से प्रौद्योगिकी पर सबसे अधिक प्रभाव डाला और उन्हें टीआर100 पुरस्कार प्रदान किया।

सबीर एक स्नातक छात्र के रूप में एटा कापा में शामिल हुए।

26. अन्ना मणी

अन्ना मणी एक भारतीय भौतिकविज्ञानी और मौसमविज्ञानी थीं। वह भारतीय मौसम विभाग की उपमहानिदेशक भी रहीं।

अन्ना मणी का जन्म 23 अगस्त, 1918 को केरल के पीरमेडु में हुआ था। बाल्यकाल से ही वह खूब पढ़ाई में बहुत रूचि रखती थीं। आरंभ में वह चिकित्सा के क्षेत्र में जाना चाहती थी लेकिन भौतिक विज्ञान विषय पसंद होने के कारण उन्होंने भौतिक विज्ञान का अध्ययन करने का निश्चय किया। उन्होंने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज से भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान में स्नातक (ऑनर्स) की उपाधि प्राप्त की।

इसके बाद उन्होंने प्रोफेसर सी. वी. रामन के मार्गदर्शन में कार्य करते हुए हीरों और माणिक्यों के प्रकाशीय गुणधर्मों पर शोध कार्य किया। उन्होंने पांच शोध पत्र लिखे, लेकिन भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर की उपाधि नहीं होने के कारण उन्हें पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान नहीं की गयी। उसके बाद भौतिकी में अध्ययन के लिए वह इंग्लैंड चली गयीं, लेकिन अंततः उन्होंने लंदन के इम्पीरियल कॉलेज से मौसमविज्ञान उपकरणों का अध्ययन किया। सन् 1948 में भारत लौटने पर उन्होंने पुणे स्थित भारतीय मौसम विभाग में नौकरी की। सन् 1976 में वह भारतीय मौसम विभाग के उपमहानिदेशक पद से सेवानिवृत्त हुईं। मौसम उपकरणों के साथ–साथ सौर विकिरणों, ओजोन और पवन ऊर्जा आदि पर उनके अनेक शोध पत्र प्रकाशित हुए। वह गांधीजी के विचारों की समर्थक थीं। सन् 1994 में वे स्ट्रोक से पीड़ित रही और 16 अगस्त 2001 को तिरूवनन्तपुरम में उनका निधन हुआ। उनके प्रमुख प्रकाशनों में विंड एनर्जीः रिसोर्स सर्वे इन इंडिया, सोलर रेडिएशन ओवर इंडिया और हैंड बुक फॉर सोलर रेडिएशन डाटा फॉर इंडिया हैं।

27. श्रीमती जानकी के. अम्माल

जानकी अम्माल एड्वालेथ कक्कट एक भारतीय वनस्पतिविज्ञानी थीं जिन्होंने कोशिका आनुवांशिकी और पादप भूगोल में वैज्ञानिक शोध कार्य किया था। उनके सबसे उल्लेखनीय कार्य गन्ना और बैंगन से संबंधित थे। उन्होंने केरल के वर्षा वनों से औषधीय और आर्थिक मूल्य के विभिन्न बहुमूल्य पौधों को एकत्र किया था।

जानकी अम्मला का जन्म सन् 1897 में केरल के तेल्लीचेरी में हुआ था। उनके पिता दीवान बहादुर एड्वालेथ कक्कट कृष्णन मद्रास प्रांत में उप–न्यायाधीश थे। तेल्लीचेरी से स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद वह मद्रास चली गयी जहां क्वीन मैरी कॉलेज से उन्होंने स्नातक की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने सन् 1921 में प्रेसीडेंसी कॉलेज से विशेष विषय के रूप में वनस्पति विज्ञान में डिग्री प्राप्त की। अम्माल ने मद्रास के वीमेन्स क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापन का कार्य किया। सन् 1925 में उन्होंने अमेरिका के

मिशिगन विश्वविद्यालय से बार्बर स्कॉलर के रूप में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। भारत लौटने पर उन्होंनें फिर से वीमेन्स क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापन का कार्य किया। अम्माल, प्रथम ओरिएंटल बार्बर रिसर्च फेलो के तौर पर, पुनः मिशिगन चली गयीं जहाँ से 1931 में उन्होंने डी.एस–सी. की उपाधि प्राप्त की। वे वनस्पति विज्ञान की प्रोफेसर के रूप में लौटीं और उन्होंने सन् 1931 से 1934 तक त्रिवेन्द्रम के महाराजा कॉलेज ऑफ साईंस में अध्यापन का कार्य किया। सन् 1934 से 1939 के दौरान उन्होंने कोयम्बटूर के गन्ना प्रजनन संस्थान में आनुवंशिकीविद् के रूप में कार्य किया।

अम्माल ने कई अंतरप्रजातिय संकर विकसित किए जिनमें सैकेरम एक्स जी, सैकेरम एक्स एरिन्थेस, सैकेरम एक्स इम्नेरेटा और सैकेरम एक्स सोरगहम आदि प्रमुख है। अम्माल ने सैकेरम ऑफीसिनैरम यानी गन्ने पर कोशिका आनुवांशिकी अध्ययन संबंधी अग्रणी कार्य करते हुए वास्तव में सैकेरम एवं संबंधित वंशों पर कोशिका–आनुवंशिकी अध्ययन की नीवं रखी। गन्ना और संबंधित घास प्रजातियों जैसे बैम्बूसा (बम्बू) को सम्मिलित करके कई अंतरजातीय एवं अंतरवंशीय संकर किस्मों का विकास किया।

सन् 1940 से 1945 के दौरान उन्होंने लंदन के जॉन इन्नेस हॉर्टिकल्चरल संस्थान में एक सहायक कोशिका विज्ञानी का कार्य किया। इसके बाद सन् 1945 से 1951 के दौरान उन्होंने विस्केल स्थित रॉयल हॉर्टिकल्चरल सोसायटी में कोशिका विज्ञानी के रूप में कार्य किया। उन्होंने सन् 1945 में सी. डी. डोलिंगटोन के साथ संयुक्त रूप से लिखी गयी 'द क्रोमोसोम एटलस ऑफ कल्टिवेटेड प्लांटस्' पुस्तक में विभिन्न प्रजातियों पर किए गए कार्यों के बारे में लिखा। जवाहर लाल नेहरू के निमंत्रण पर, सन् 1951 में वह भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (बीएसआई) के पुनर्निर्माण के लिए भारत लौट आईं। उन्हें 14 अक्टूबर 1952 को बीएसआई में विशेष कार्य अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। बाद में उन्होंने बीएसआई के महानिदेशक का पदभार संभाला।

सेवानिवृत्ति के बाद, अम्माल ने औषधीय पौधों और मानवजाति वनस्पतिविज्ञान पर विशेष ध्यान केंद्रित कर शोध कार्य जारी रखा। नवंबर 1970 में वे मद्रास में बस गयीं और मद्रास विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के उन्नत अध्ययन केंद्र में अवकाश प्राप्त वैज्ञानिक के रूप में कार्य करने लगीं। उन्होंने मद्रास के पास स्थित मदुरावोयाल में स्थापित इस केंद्र की क्षेत्रीय प्रयोगशाला में अपनी मृत्यु पर्यंत यानी 07 फरवरी, 1984 तक कार्य किया।

अम्माल को सन् 1935 में भारतीय विज्ञान अकादमी का और सन् 1957 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी फैलो चुना गया था। सन् 1956 में मिशिगन विश्वविद्यालय ने उन्हें एलएल.डी. की मानद उपाधि ा प्रदान की। सन् 1977 में भारत सरकार द्वारा उन्हें पद्म श्री की उपाधि प्रदान की गयी। भारत सरकार ने वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा उनके सम्मान में वर्गीकरण विज्ञान में राष्ट्रीय पुरस्कार की स्थापना की गयी।

***

11 भारत के परंपरागत, गैर परंपरागत और स्वच्छ ऊर्जा स्रोत

विकास के लिए ऊर्जा एक अनिवार्य आवश्यकता है। शोधकर्ताओं के अनुसार किसी समाज में प्रति व्यक्ति जितनी अधिक ऊर्जा उपयोग करते हैं उनके जीवन की गुणवत्ता उतनी बेहतर होगी। हमारी प्रजाति के इतिहास में जब भी हमनें अपनी जीवन शैली में सफलता प्राप्त की है, तब हमारी ऊर्जा की खपत भी काफी बढ़ी है चाहे खेती करने के उद्देश्य से लोगों द्वारा गांव में बसना आरंभ किया हो या फिर औद्योगिकी क्रांति के आरंभ के समय से।

एक विकासशील देश के रूप में, भारत ऊर्जा के उपयोग में और इसके विकास में सहायक के रूप में, ऊर्जा की बढ़ती मांग से संबंधित संक्रमण की स्थिति में है। ऊर्जा की बढ़ती मांग और ऊर्जा सुरक्षा के लिए चिंता को देखते हुए अब हमें वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों को तलाशने की आवश्यकता है। हमारे पास कोयले का प्रचुर भंडार है और हमारी ऊर्जा जरूरतों का 50 प्रतिशत से अधिक कोयला से पूरा होता है। लेकिन हमारे पास पर्याप्त पेट्रोलियम भंडार नहीं हैं, इसलिए हमें अपनी पेट्रोलियम जरूरतों का 70 प्रतिशत से अधिक आयात करना पड़ता हैं। तेल के विदेशी स्रोतों पर हमारी निर्भरता को कम करना भी एक और महत्वपूर्ण कारण है जो हमें ऊर्जा के नए विकल्प तलाशने को प्रेरित कर रहा है।

यह उचित समय है जब हमें नवीकरणीय और ऊर्जा के गैर परंपरागत स्रोतों की ओर बढ़ना चाहिए। हालांकि यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि कब दुनिया से जीवाश्म ईंधन समाप्त हो जाएंगे, उस समय हमारे हाथ में कुछ नहीं रहेगा। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि ये संसाधन दो दशकों तक ही उपलब्ध रहेंगे जबकि अन्य लोगों का कहना है कि अगले दो सदियों तक के लिए इनकी पर्याप्त मात्रा है। भविष्य में ऊर्जा के भरोसेमंद सूत्रों के लिए हमें कोयला और पेट्रोलियम से परे ऐसे ऊर्जा स्रोतों के विकास की आवश्यकता है जो पुरी तरह से नये हों या हमारे द्वारा भूला दिए गए पुराने स्रोत हों।

अक्सर 'नवीकरणीय या अक्षय' और 'गैरपरंपरागत' शब्दों को गलती से एक–दूसरे के स्थान पर उपयोग कर लिया जाता है। एक नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन वह हैं जिनके भंडार को समय–समय पर फिर से भरा जा सकता है। ऊर्जा के विश्वसनीय रूप लकड़ी, कोयला, जैव अपशिष्ट आदि सभी नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत हैं। पुरातात्विक खुदाई से पता चलता है

कि किस प्रकार प्राचीन काल में धातु की भट्टियों को जंगलों के संसाधनों के उपयोग से हजारों सालों तक जलाया रखा जाता था। लेकिन यदि यह नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत होता है तों यह गैरपरंपरागत होगा और इसकी बार–बार सफाई की आवश्यकता नहीं होगी।

गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत वो हैं जिनका ऐतिहासिक रूप से उपयोग नहीं किया गया है। और उनके उपयोग के लिए अभी भी तकनीकें विकसित की जा रही हैं और वैज्ञानिकों द्वारा उनके उपयोग की प्रक्रिया को और अधिक कुशल बनाने के लिए लगातार काम किया जा रहा है। पनबिजली, सौर फोटोवोल्टिक संयंत्र और परमाणु ऊर्जा इसके उदाहरण हैं। हम सभी को यह याद रखना चाहिए कि कोयला या पेट्रोलियम ऊर्जा के रातों–रात निर्मित होने वाले सार्वत्रिक स्रोत नहीं हैं। उन्नीसवीं सदी के आरंभ से वैज्ञानिक बुद्धिमत्ता और अनुसंधान के कारण ही आज ये विश्वसनीयता के साथ बड़े पैमाने पर उपयोग किए जा रहे हैं। इसलिए गैर–पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकास को भी उसी लगन के साथ अनुसंधान और धैर्य की आवश्यकता होगी।

एक गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोत के हमेशा स्वच्छ और नवीकरणीय होने की जरूरत नहीं है। उदाहरण के लिए भारत के पास एक सुविकसित परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम हैं और यहां ब्रीडर रिएक्टरों के लिए ईंधन के रूप में थोरियम की काफी मात्रा उपलब्धता भी है। हालांकि एक परमाणु संयंत्र से बिजली उत्पादन के दौरान प्रदूषक उत्सर्जित नहीं होते हैं। समस्या छोड़ी गयी परमाणु ईंधन छड़ के साथ शुरू होती है। हालांकि वे अब बिजली उत्पादन के लिए लंबे समय तक इस्तेमाल नहीं की जा सकती, लेकिन ये ईंधन छड़ों अभी भी रेडियोधर्मी होती हैं। जिसके कारण इनके निपटान में समस्या होती है। अब तक, इन ईंधन छड़ों को गहरी खदानों या बोर छेद के अंदर दफन करके इनका निपटारा किया जाता है ताकि इनके विकिरण जीवित प्राणियों को प्रभावित नहीं कर सकें। लेकिन ऐसा माना जाता है कि इन रेडियोधर्मी तत्वों में से कुछ हजारों साल के लिए सक्रिय रह सकते हैं, उम्मीद है कि इनके बेहतर निपटान की प्रौद्योगिकी जल्द विकसित की जा सकेंगी। हालांकि यह सोचना भी खौफनाक है कि एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र में हुई दुर्घटना के पड़ोसी क्षेत्रों तक क्या खतरे हो सकते हैं। इसलिए इन खतरों के प्रति गंभीर चिंतन करके परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के निर्माताओं द्वारा इन्हें परंपरागत ऊर्जा संयंत्रों की तुलना में अधिक मजबूत और सुरक्षित बनाने के भरपूर प्रयास किए जाते हैं।

भारत ऊर्जा के सभी तीनों रूपों नवीकरणीय, गैरपरंपरागत ऊर्जा और स्वच्छ ऊर्जा के विकास की अपार संभावनाएं रखता है। लेकिन अधिकतर शोधकर्ताओं का अनुमान है कि गैरपरंपरागत ऊर्जा स्रोतों की ओर जाने का कारण जीवाश्म ईंधन की समाप्ति की बजाय जीवाश्म ईंधनों के द्वारा पर्यावरण को होने वाला नुकसान प्रमुख है। यहां पर हमारी प्राथमिकता मुख्यतया स्वच्छ और अक्षय स्रोतों पर होंगी।

स्वच्छ एवं नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत

पनबिजली के क्षेत्र में भारत की संभावनाएं सीमित हैं और इसका अधिकतम उपयोग भी किया जा चुका है। वर्तमान में, सूक्ष्म जल विद्युत परियोजनाओं में अधिक रुचि है। जिसके कारण विशाल बांधों की बजाय छोटी–छोटी नदियों पर छोटे जल विद्युत टर्बाइनों का उपयोग किया जा सकेगा जो प्रत्येक गांव या नदी तट की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होंगी। इस तरह ऐसे टर्बाइनों की शृंखला नदियों से लगे गांवों की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है।

हमारे देश के लिए अक्षय ऊर्जा क्षमता की सबसे अधिक संभावना पवन ऊर्जा के विकास में निहित है। देश के बड़े हिस्से में पवन ऊर्जा सर्वेक्षणों का कार्य अभी भी प्रगति पर है। हमारे पास इसकी संभावना अनुमान से भी अधिक है। 2016 के मध्य तक 17 गीगावॉट पवन ऊर्जा उत्पादन क्षमता को स्थापित किया जाएगा।

उष्णकटिबंधों के पास स्थित होने के कारण भारत में सूर्य प्रकाश की प्रचुरता है। मानसून के कारण बहुत कम क्षेत्रों जैसे गुजरात और राजस्थान के कुछ हिस्सों में ही नियमित रूप से बारिश होने के कारण सूरज की निर्बाध रोशनी से सौर ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है। वर्तमान में, सभी सौर ऊर्जा परियोजनाओं की प्रकृति फोटोवोल्टिक है जबकि चेन्नई और बेंगलुरू जैसे शहरों में गर्म पानी, जल शोधन, और घरों और होटलों की अन्य तापीय आवश्यकताओं के लिए लघु पैमाने पर सौर तापीय संयंत्रों को स्थापित और परिचालित किया जा रहा है। भविष्य में राजस्थान के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सौर ताप विद्युत संयंत्रों की स्थापना की योजना है। इस तरह के संयंत्र सूर्य की ऊर्जा का उपयोग पानी को भाप बनाने और भाप का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए टरबाइन चलाने के लिए करेंगे। निश्चित रूप से, सौर ऊर्जा के विकास के लिए हमेशा की तरह बाधाओं के रूप में हमारे सामने आरंभिक निवेश और विस्तृत भूमि क्षेत्र की आवश्यकता होगी।

ऊर्जा उत्पादन का एक अन्य व्यावहारिक स्रोत जैविक कचरे का ऊर्जा में रूपांतरण है। इस दिशा में कार्य करते हुए देश भर के कई गांवों में पायलट बायोगैस परियोजनाओं द्वारा कुछ सफलता मिली है। शोधकर्ताओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों, अपशिष्टों और ऐसे ही अन्य स्रोतों द्वारा नवीन तरीकों से विद्युत उत्पादन की तकनीकों के विकास में कार्य कर रहे हैं।

विद्युत उत्पादन के अलावा ऊर्जा उपयोग का सबसे विस्तृत क्षेत्र परिवहन है। इस क्षेत्र में कई नए ईंधन स्रोतों के विकास की संभावनाओं को तलाशना है ताकि आयातित पेट्रोल पर हमारी निर्भरता खत्म हो सके। वैकल्पिक ईंधनों में वर्तमान में हम तरलीकृत पेट्रोलियम गैस (एलपीजी), संपीड़ित प्राकृतिक गैस (सीएनजी) एवं हाइड्रोजन और सीएनजी के मिश्रण का उपयोग कर रहे हैं। भविष्य की योजनाओं में पेट्रोल दहन वाले इंजनों में हाइड्रोजन का उपयोग किया जाना शामिल है। जटरोफा, करंज और यहां तक कि शैवाल जैसे पौधों से प्राप्त जैवईंधनों का उपयोग डीजल में 20 अनुपात 80 के रूप में मिलाकर किया जा

रहा है। वैकल्पिक ईंधन का विकास इस तरह किया जाना चाहिए कि उन्हें वर्तमान वाहनों में कोई विशेष परिवर्तन किए बिना उपयोग किया जा सके। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे वैकल्पिक ईंधनों का जीवाश्म ईंधन की तुलना में वातावरण पर न्यूनतम प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

नए ऊर्जा स्रोतों की खोज और विकास के समांतर हमारी दूसरी प्राथमिकता उपलब्ध संसाधनों का आर्थिक उपयोग किया जाना शामिल है। ऐसा नहीं है कि किसी वैकल्पिक ईंधन का उपयोग शीघ्र ही जीवाश्म ईंधन के उपयोग को समाप्त कर देगा। यदि ऐसा भी होता है तब भी, बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ, हमारी ऊर्जा की मांग भी इतिहास की तुलना में ज्यादा तेजी से बढ़ रही हैं। समय की मांग है कि ऊर्जा और अन्य सभी अपशिष्टों का हम दक्षता से उपयोग करें। हमें और अधिक कुशल रेफ्रिजरेटरों और एयर कंडीशनरों की आवश्यकता है। हमें अधिक कुशल प्रकाश व्यवस्था के साथ ही ऐसी स्ट्रीट लाइटों की आवश्यकता है जो आसपास के प्रकाश की मात्रा के अनुसार चालू और बंद हो सके है। हमें ऐसे दक्ष ऊर्जा संयंत्रों की आवश्यकता है जो कोयले से उत्पादन तो करे लेकिन उनसे कम प्रदूषण हो। हम लगातार इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में प्रयास कर रहे हैं ताकि हम दीर्घकालीन ऊर्जा–सुरक्षा को प्राप्त कर सकें।

एक पवन चक्की

***

12 विज्ञान और इसकी विभिन्न शाखाएं

मनुष्य कई मायनों में अन्य जीवों से अलग है। इसकी सोचने, संवाद स्थापित करने और भाषा के उपयोग की क्षमता महत्वपूर्ण है। इससे इसे वह कौशल प्राप्त होता है जिसकी मदद से यह ज्ञान को एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में स्थानांतरित करता है। यह क्षमता इसे अलग–अलग प्रश्नों के व्यवस्थित विश्लेषण के विकास के लिए अधिक या कम जिम्मेदार बनाती है। किसी भी सवाल का व्यवस्थित विश्लेषण विज्ञान कहलाता है। विज्ञान प्रयोगशालाओं या कक्षाओं तक ही सीमित नहीं है। आपकी माँ रसोई घर में खाना पकाने की प्रक्रिया के दौरान जो करती है, वह वर्षों के प्रयोगों और सावधानीपूर्वक किए गए अवलोकनों का नतीजा है और यह एक प्रयोगशाला में किसी वैज्ञानिक द्वारा किए गए प्रयोग से अधिक अलग नहीं है।

जब भी हम किसी भी प्रश्न को एक विशेष, तर्कसंगत ढंग से विश्लेषण करते है तो हमें कुछ विचार और जवाब मिलते हैं। इसके बाद विज्ञान के लिए दूसरी अग्निपरीक्षा यह होती है कि परिणामों को दोहराया और पुनः प्रस्तुत किया जा सके। भारत की किसी प्रयोगशाला में किसी व्यक्ति द्वारा किये गये काम से भी हमें वही परिणाम मिलना चाहिए जो कोई और व्यक्ति द्वारा समान उपकरणों और इनपुट के माध्यम से किसी दूसरे स्थान पर, मान लो जापान में, किया गया हो। यह सोचने पर आसान लगता है कि वैज्ञानिक लेखन के समय लेखक के व्यक्तिगत विचारों का क्या असर होता है। असल में, जब कोई सामग्री प्रतिष्ठित वैज्ञानिक प्रकाशनों में वितरित की जाती है तो उसे कई स्वतंत्र शोधकर्ताओं द्वारा जाँचा जाता है और उन तथ्यों पर संबंधित सभी शोधकर्ताओं की सहमति प्राप्त पर तर्कसंगत विचार प्रक्रिया द्वारा उस पर निर्णय लिया जाता है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि 'गलत विज्ञान' और गलत दावों को किसी भी अवधि के लिए स्थापित नहीं किया जा सकता है।

वह व्यक्ति जिसने पहिए का आविष्कार किया, वह व्यक्ति जिसने आग की खोज की, वह जनजाति जिसने कृषि की खोज की, वे सभी अपने–अपने तरीकों में वैज्ञानिक थे। यूनान के आरंभिक समय से लेकर गैलीलियो और न्यूटन जैसे लोगों के समय तक जिन्हें आज हम वैज्ञानिक कहते हैं उन्हें दार्शनिकों या प्रकृतिवादियों के रूप में जाना जाता था। आर्किमिडीज एक दार्शनिक थे और गैलीलियो और डार्विन प्रकृतिवादी थे। वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के साथ विज्ञान की शाखाओं में बहुत सख्त विभाजन होता चला गया। आर्किमिडीज और अरस्तू जैसे लोगों ने ज्ञान की सभी शाखाओं में, बिना उन्हें भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र या जीव विज्ञान के विभाजन के, अपना योगदान दिया। इस प्रवृत्ति को गैलीलियो, लियोनार्डो दा विंसी, योहानेस केप्लर, और न्यूटन जैसे दार्शनिकों के बीच भी देखा जा सकता है। इन लोगों ने भी किसी एक निश्चित क्षेत्र या शाखा को अध्ययन का विषय नहीं बनाया था। उन्होंने प्रकृति

को जैसा देखा वैसे उसका उपयुक्त स्पष्टीकरण देते हुए उसका विश्लेषण किया। कभी–कभार जब उन्हें मानव इंद्रियों की सीमा को विस्तारित करने की आवश्यकता महसूस हुई तो उन्होंने दूरबीन या सूक्ष्मदर्शी जैसे उपकरणों का आविष्कार किया। उन दिनों में, आप बेंजामिन फ्रेंकलिन जैसे लोगों को भी देख सकते हैं जो एक राजनेता और एक राजनयिक होने के साथ ही प्रकृति के एक कुशल पर्यवेक्षक थे। उन्होंने साबित किया कि विद्युत तड़ित विद्युत आवेश के निर्वहन की एक मिसाल है। उन्होंने बाइफोकल लेंस का आविष्कार भी किया था।

विज्ञान और गणित हमेंशा करीब से अंतःसंबंधित रहे हैं। गणित विज्ञान की सार्वभौमिक भाषा है, जिसे विज्ञान की किसी भी शाखा में उपयोग किया जा सकता है। इतिहास में कई बार, लोगों को सिर्फ वैज्ञानिकों या सिर्फ गणितज्ञों के रूप में वर्गीकृत करने में मुश्किल आयी है। स्वयं न्यूटन की प्रसिद्धि दोनों विषयों में थी, उनकी फिलोसोफी नेचुरेलिस प्रिन्सिपिया मेथेमेटिका पर अक्सर गणितीय पाठ के रूप में विचार किया जाता था। गॉस, यूलर, बर्नोनली, पास्कल जैसे अनेक नाम हैं जिन्होंने गणित में महत्वपूर्ण खोजें की और उनको प्राकृतिक विज्ञान में उपयोग करके प्राकृतिक दुनिया संबंधी हमारी समझ को विस्तार दिया। वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि होने और विज्ञान के अध्ययन को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनाने पर यह देखा गया कि एक व्यक्ति के लिए विभिन्न विषयों को आत्मसात करना असंभव हो जाएगा। ऐसे में लोगों को इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि भौतिक विज्ञान, जीवन विज्ञान, रसायन विज्ञान जैसे विषयों के लिए विशेषज्ञता की जरूरत है। अतीत में देखते हैं तो हमारे समक्ष फैराडे जैसे लोग हैं, जिन्होंने भौतिकी और रसायन विज्ञान में उत्कृष्ट योगदान दिया है। उनके दो प्रमुख योगदानों में विद्युतचुम्बकीय नियम और विद्युत अपघटन संबंधी नियम हैं।

हमारे सामने लुई पाश्चर का भी उदाहरण है जिन्होंने भौतिक विज्ञान और गणित में विशेषज्ञता के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त की, लेकिन उनका मुख्य काम रसायन विज्ञान के क्षेत्र में रहा, हालांकि उन्होंने यह भी पता लगाया कि ज्यादातर बीमारियों की वजह सूक्ष्म कीटाणु हैं। बाद में, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और प्राणीशास्त्र नामक शाखाओं में बंटा जिनमें क्रमशः पौधों और जानवरों का अध्ययन किया जाता है। आखिरकार रसायन विज्ञान विषय लेने वालों को अपने भौतिकी सहयोगियों को भी छोड़ना पड़ता है। इन तीनों के बीच एक तरह के कमजोर बंधन के रसायन के विषय के आधार पर विज्ञान के व्यापक मतभेद किए गए हैं। समय के साथ, और अधिक विशिष्ट विषयों जैसे कार्बनिक रसायन विज्ञान, खगोल भौतिकी, और पैलियोबॉटनी (जीवाश्म पौधों का अध्ययन) का विकास हुआ। बढ़ती समझ और ज्ञान के साथ, विशेषज्ञता के स्तर में भी वृद्धि हो रही है और दिनोंदिन इसका दायरा संकरा होता जा रहा है। इसकी संक्षिप्त व्याख्या करते हुए प्रसिद्ध विज्ञान गल्प लेखक आइसक ओसिमोव ने एक बार कहा था कि ''हम दुनिया में रहते हुए हमारे ज्ञान को बढ़ा रहे हैं, ऐसे में लोग अपने चुनिंदा विषयों में और अधिक विशिष्ट होते जाएंगे ऐसे में विज्ञान की सभी विधाओं के बारे में कुछ जानने वाले लोग केवल विज्ञान गल्प लेखक ही होंगे।

हाल के वर्षों में, हालांकि, अलग–अलग शाखाओं के बीच गहरी समझ के साथ अंतःसंबंध स्थापित किए जाने की आवश्यकता महसूस की गई है। एक व्यक्ति के लिए ज्ञान के दो विभिन्न विषयों की समझ के लिए विषय सामग्री अभी भी काफी व्यापक है। लेकिन यह महससू किया जा रहा है कि प्रकृति से संबंधित सवालों के अच्छे हल के लिए या फिर हमारी प्रजातियों के समक्ष उपस्थित नयी चुनौतियों का

सामना करने और विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों से प्राप्त ज्ञान को साझा करने के लिए अच्छे से समन्वय करने के लिए आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, एक अस्पताल में एमआरआई मशीन पर विचार करें। इस मशीन के काम करने की सुनिश्चिता और निदान में इसका उपयोग करने के लिए गणितज्ञों, भौतिकविदों, इंजीनियरों, सॉफ्टवेयर प्रोग्रामरों और चिकित्सकों द्वारा समन्वित प्रयास की आवश्यकता होगी। विज्ञान की विभिन्न शाखाएं आपस में कार्य करते हुए श्रेष्ठ शोध प्रदान करके अंतःविषय प्रयास करते हैं। दो या दो से अधिक अंतःविषयों के कुछ दिलचस्प उदाहरणों में जैव सूचना विज्ञान, बायोमैकेनिक्स, क्वांटम कंप्यूटिंग, और आणविक जीव विज्ञान आदि हैं। कुछ क्षेत्रों जैसे ग्लोबल वार्मिंग, सतत विकास, भूमि प्रबंधन और आपदा राहत में बहुविषय अनुसंधान कार्य शामिल होते हैं।

वैज्ञानिकों के बीच में मौजूद एक अन्य महत्वपूर्ण विभेद उनके संबंधित क्षेत्रों में उनके कार्य करने की पद्धति से संबंधित है। समस्याओं का अध्ययन कर रहे सैद्धांतिक शोधकर्ताओं द्वारा समाधान की परिकल्पना प्रस्तुत कर गणित का उपयोग करके समस्या के रूप में उसके मॉडल की कोशिश करने के लिए प्रयास किया जाता है। इनके अलावा हमारे सामने प्रयोगवादी भी होते हैं जो सैद्धांतिक शोधकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत अभिकल्पना के सत्यापदन के लिए या फिर अध्ययन किए जाने वाले विषय के बारे में और अधिक जानने के लिए, आवश्यक प्रयोग के डिजाइन का विकास करते हैं। कंप्यूटर के उपयोग में वृद्धि के कारण कम्प्यूटेशनल दृष्टिकोण नामक एक नवविकसित दृष्टिकोण का विकास हुआ है, जहां कंप्यूटर पर एक प्रणाली का अनुकरण करके या फिर सिस्टम द्वारा प्रदर्शित कुछ प्रयोगों का अनुकरण करके उसके समीकरणों को हल करने के लिए प्रयास किया जाता है। विषयों का एक दिलचस्प विभेदन अध्ययन के उनके पैमाने स्वाभाविक रूप से हो जाता है। हमारे पास ऐसे वैज्ञानिक हैं जो आकाशगंगाओं के रूप में अध्ययन के जटिल विषयों को चुनते हैं और ऐसे वैज्ञानिक भी हैं जो आण्विक कणों जैसे छोटे कणों को भी चुनते हैं। इन दो चरम सीमाओं के बीच में, आप विभिन्न आकार के परास की कल्पना कर सकते हैं जिन्हें वैज्ञानिक अपनी रुचि के अनुसार चुनते हैं। इसके अलावा आपके पास सूक्ष्मजीवविज्ञानी भी हैं जो सूक्ष्मजीवों या जीवन को स्थायित्व एवं विस्तार प्रदान करने वाले आधारभूत कणों का अध्ययन करते हैं। यह विविधता लगातार बढ़ती जा रही है।

***

13 आयुर्वेद और औषधीय वनस्पतियां

आयुर्वेद और विभिन्न उपचारी विधियां

आयुर्वेद, जिसका शाब्दिक अर्थ 'लंबे जीवन का ज्ञान' है वह भारत में लगभग 5000 साल पहले आरंभ हुई एक वैकल्पिक विधि है। भारत में आयुर्वेद समय की कसौटी पर परखी हुई विज्ञान आधारित स्वास्थ्य पद्धति है। चिकित्सा के विश्वकोष माने जाने वाले 'सुश्रुत संहिता' और 'चरक संहिता' ग्रंथों ने आयुर्वेद के मूलभूत स्वरूप का विकास किया है। सदियों से, आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं और औषधियों का विकास किया है। भारत का दक्षिणी राज्य केरल अपने आयुर्वेदिक उपचार केन्द्रों के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध है। केरल में आयुर्वेद का उपयोग विकल्प के तौर पर नहीं बल्कि एक मुख्यधारा की उपचार प्रक्रिया के रूप में किया जा रहा है।

आयुर्वेद आहार, जीवनशैली, व्यायाम और शरीर की सफाई के माध्यम से शरीर में 'वात', 'पित्त' और 'कफ' का संतुलन बहाल करने के साथ ही मन, शरीर और आत्मा के स्वास्थ्य पर ध्यान देता है। अब मोटापा, त्वचा, शरीर शुद्धि, तनाव प्रबंधन, स्पॉन्डिलाइटिस, गठिया, सोरायसिस, अनिद्रा, कब्ज, पार्किंसंस रोग, कंधे की अकड़न, टेनिस कोहनी जैसी विभिन्न समस्याओं के इलाज में आयुर्वेद बहुत लोकप्रिय है। यहां हम कुछ लोकप्रिय आयुर्वेदिक उपचार विधियों के बारे में जानकारी दे रहे हैं ।

अभ्यंगम: अभ्यंगम तेल मालिश का एक विशेष प्रकार है और यह मोटापा और मधुमेह गैंग्रीन (शरीर के कुछ भागों में रक्त परिसंचरण की कमी के कारण विकसित होने वाली स्थिति) के उपचार में बहुत उपयोगी है। विशेष रूप से तैयार आयुर्वेदिक हर्बल तेलों के संयोजन के साथ मालिश की जाती है और शरीर के महत्वपूर्ण उत्तेजक बिंदुओं पर इससे मालिश की जाती है। इस तरह का उपचार त्वचा के सामान्य स्वास्थ्य के लिए अच्छा होने के साथ ही जल्दी उम्र बढ़ने से रोकता है। इससे मांसपेशियों में दर्द और वेदना से राहत मिलती है। यह भी पता चलता है कि श्वेत रक्त कणों और रोग प्रतिकारकों का उत्पादन भी बढ़ता है जो शरीर को विषाणुओं और बीमारियों के खिलाफ अधिक प्रतिरोधी बनाता है।

धारा: धारा उपचार प्रक्रिया में, एक विशेष लयबद्ध विधि से हर्बल तेलों, औषधीय दूध, छाछ, आदि को ललाट (माथा) पर दिन में 45 मिनट के लिए टपकाया जाता है। यह प्रक्रिया 7 से 21 दिनों तक दोहरायी है। अनिद्रा, मानसिक विकार, नसों की दुर्बलता, स्मृति हानि, और कुछ त्वचा रोगों के लिए इस तरह का उपचार आदर्श माना जाता है।

तड़का धारा में, सिर की मालिश देने के बाद, माथे और मस्तिष्क के ऊपर टंगे बर्तन से औषधीय छाछ को एक निरंतर प्रवाह से ललाट पर टपकाया जाता है। रूसी, सोरायसिस, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, बालों के झड़ने, और त्वचा की अन्य समस्याओं के साथ ही मस्तिष्क के रोगों के उपचार के लिए यह विधि अच्छी मानी जाती है। सिरोधारा में, सिर को एक अच्छी मालिश देने के बाद, माथे और मस्तिष्क के ऊपर टंगे बर्तन से अविरल धारा के रूप में हर्बल तेल को ललाट और सिर के ऊपर टपकाया जाता है। यह थकान और तनाव से राहत प्रदान करने और नींद लाने के लिए उत्तम माना जाता है।

शिरावस्ती: शिरावस्ती में रोगी के सिर पर एक टोपी लगाई जाती है और फिर गुनगुने औषधीय तेल को इसमें डाल कर आधे घंटे के लिए छोड़ दिया जाता है। अनिद्रा, चेहरे का पक्षाघात एवं मस्तिष्क की अकड़न सहित नाक और गले का सूखापन एवं सिर दर्द में यह उपचार प्रभावी सिद्ध होता है।

पिजहिचिल: पिजहिचिल में लगभग एक घंटे तक पूरे शरीर पर एक लयबद्ध शैली में गर्म हर्बल तेल लगाया जाता है। इस प्रक्रिया में जोरदार पसीना आता है जिससे गठिया, अंगों का पक्षाघात एवं यौन रोग सहित तंत्रिका संबंधी समस्याओं जैसी कई बीमारियों का उपचार किया जाता है।

विरेचन: रेचक दवाओं के प्रयोग के माध्यम से पेट और आंत की सफाई एवं अपशिष्ट निकासी की विधि विरेचन कहलाती है। यह आंतों से अतिरिक्त विषाक्त पित्त पदार्थों को समाप्त करती है। पाचन तंत्र के साफ और विष मुक्त होने पर पूरे शरीर को फायदा होता है। यह भूख बढ़ाने एवं भोजन के ठीक से अवशोषण में फायेदमंद साबित होता है।

काव्यवस्थी: काव्यवस्थी में, शरीर को गर्म औषधीय तेल के साथ उपचारित किया जाता है। एक औषधीय लेई की परत बनाकर, रोगी की पीठ पर तेल को 30 से 45 मिनट के लिए लगाया जाता है। यह पीठ दर्द और कशेरुकी के निचले क्षेत्र में होने वाले दर्द जैसी कई अन्य समस्याओं के लिए कारगार माना जाता है।

औषधीय पौधे

आयुर्वेद और औषधीय पौधे एक–दूसरे के पर्याय हैं। ग्रामीण भारत में, 70 फीसदी आबादी पारंपरिक दवाओं या आयुर्वेद पर निर्भर होती है। कई औषधीय जड़ी–बूटियों और मसालों जैसे प्याज, लहसुन, अदरक, हल्दी, लौंग, इलायची, दालचीनी, जीरा, धनिया, मेथी, सौंफ, अजवाईन, मोटी सौंफ, तेजपत्ता, हींग और काली मिर्च को भारतीय पद्धति से खाना बनाने में उपयोग किया जाता है। औषधीय दवाओं में इन सभी का उपयोग या तो आहार में या फिर दवा के रूप में किया जाता है। इनमें से कुछ औषधीय पौधों को भारतीय डाक टिकटों पर भी चित्रित किया गया है।

राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड के अनुसार, भारत में 15 कृषि जलवायुविक क्षेत्र और 17,000–18,000 फूलदार पौधों की प्रजातियों उपलब्ध हैं। एक अनुमान के अनुसार इनमें से लगभग 6000–7000 प्रजातियों का औषधीय उपयोग किया जाता है। औषधीय पौधों की लगभग 960 प्रजातियों का व्यापार किया जाता है, जिनमें से 178 प्रजातियों की वार्षिक खपत लगभग 100 मीट्रिक टन से अधिक होने का अनुमान है।

औषधीय पौधे न केवल पारंपरिक दवा और औषधीय उद्योग के लिए एक प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि यह भारतीय आबादी के एक बड़े वर्ग को आजीविका और स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करते हैं। भारत औषधीय पौधों का सबसे बड़ा उत्पादक है। आयुष उद्योग का घरेलू व्यापार लगभग 80–90 अरब का है। भारतीय औषधीय पौधों और उनके उत्पादों के निर्यात से लगभग 10 अरब रुपए की राशि प्रतिवर्ष प्राप्त होती है।

पारंपरिक और वैकल्पिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में वैश्विक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप, वैश्विक औषधीय व्यापार में वृद्धि हो रही है। वर्तमान में जो वैश्विक औषधीय व्यापार, लगभग 120 अरब अमेरीकी डॉलर का है उसके सन् 2050 तक सात खरब अमरीकी डॉलर तक पहुंच जाने की उम्मीद है। हालांकि वर्तमान में वैश्विक व्यापार में भारत की हिस्सेदारी काफी कम है।

इस अध्याय में भारत के कुछ सबसे लोकप्रिय औषधीय पौधों के बारे में जानकारी दी जा रही है।

गुग्गुलु भारत के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों विशेषकर राजस्थान में पायी जाने वाली एक झाड़ी है। इसका उपयोग तंत्रिका विज्ञान की स्थिति, कुष्ठ रोग, त्वचा रोग, दिल की बीमारियों, मस्तिष्क एवं संवहनी रोग और उच्च रक्तचाप जैसे विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार में किया जाता है।

ब्राह्मी एक ऐसी औषधी है जो जमीन पर मांसल तने और पत्तियों के साथ फैलती है। यह भारत के सभी आर्द्र और नमी वाले स्थानों में पायी जाती है। ब्राह्मी का उपयोग मस्तिष्क के रोगों के इलाज और स्मरण शक्ति को बढ़ाने के लिए किया जाता है। ब्राह्मी को अन्य तत्वों के साथ मिला कर बने मिश्रण का उपयोग गठिया, मानसिक विकार, कब्ज, और श्वसनीशोध (ब्रोंकाइटिस) के उपचार में किया जाता है। यह मूत्रवर्धक भी होती है।

आंवला या भारतीय करौंदा के पर्णपाती वृक्ष पूरे भारत में पाए जाते हैं। इसके वृक्ष मध्यम आकार के होते है। हल्के पीले रंग के इनके फल अपने विभिन्न औषधीय गुणों के लिए जाने जाते हैं। इसका उपयोग पाचक, वातहर, रेचक, ज्वरनाशक और शक्तिवर्धक औषधि के रूप में किया जाता है। पेट दर्द की समस्याओं, पीलिया, रक्तस्राव, पेट फूलना आदि रोगों के ईलाज में इसका प्रयोग किया जाता है।

आंवला या भारतीय करौंदा

अश्वगंधा को भारत के शुष्क भागों में एक छोटे या मध्यम आकार की झाड़ी से प्राप्त किया जाता है। यह तंत्रिका संबंधी विकारों के इलाज के साथ ही कामोद्दीपक के रूप में प्रयोग किया जाता है। सामान्य कमजोरी और गठिया के इलाज के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

अर्जुन वृक्ष चिकित्सा की दो पद्धतियों आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणाली में एक प्रतिष्ठित स्थान रखता है। आयुर्वेद के अनुसार यह भंग, अल्सर, हृदय रोग, मतली, मूत्र निर्वहन, अस्थमा, ट्यूमर, श्वेतदाग, एनीमिया, अत्यधिक पसीना, आदि रोगों के इलाज में उपयोगी है।

घृतकुमारी या ग्वारपाटा (एलोवेरा) एक प्रसद्धि औषधीय पौधा है। इसमें पाए जाने वाले 20 से अधिक खनिज मानव शरीर के लिए आवश्यक हैं। मानव शरीर के अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक 22 अमीनो एसिडों में से आठ को अतिआवश्यक माना गया है जिनके बिना शरीर का निर्माण नहीं हो पाता है। घृतकुमारी इन सभी आवश्यक आठ अमीनो एसिडों को रखता है। इसके अलावा 14 गौण अमीनो एसिड में से इसमें 11 अमीनो एसिड पाए जाते हैं। घृतकुमारी में विटामिन ए, बी1, बी2, बी6, बी12, विटामिन सी और विटामिन ई पाए जाते हैं। त्वचा पर इसके सकारात्मक प्रभाव के कारण भारत में युवा इसे सौंदर्यवर्धक मानते हैं।

नीम अपने रक्त शुद्धिकारक गुणों के लिए प्रसिद्ध है। कई वैद्य नीम के पत्ते चबाने, सूखे पत्ते के कैप्सूल लेने और कड़वा काढ़ा पीने का सुझाव देते हैं। यह जठरांत्र प्रणाली को मजबूती प्रदान करने के साथ जिगर के लिए फायदेमंद होती है। इससे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली प्रबल होती है। नीम जीवाणु और फफूंदीय संक्रमण एवं परजीवी को नष्ट करने में बेहद कारगर होती है। इसके प्रतिजैविक गुणों द्वारा मस्सा और मुंह के छालों का इलाज किया जाता है।

तुलसी एक बहुप्रचलित औषधीय पौधा

आधुनिक भारत में आयुर्वेद के विकास का इतिहास

भारत की जनता को आयुर्वेद के किसी परिचय की जरूरत नहीं है। हाल तक, आयुर्वेद का उपयोग सभी परिवारों द्वारा किया जाता है और यह देश में स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली की एक मुख्यधारा के रूप में उपयोगी है। मार्च 1995 में, भारतीय चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी विभाग बनाया गया। बाद में, नवंबर

2003 में इस विभाग को आयुष (आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध, होम्योपैथी) विभाग के रूप में, भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अधीन कर दिया गया। आयुष विभाग के प्राथमिक उद्देश्य में आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी आदि चिकित्सा प्रणालियों में शिक्षा और अनुसंधान के विकास पर जोर देना है। विभाग द्वारा आयुष शिक्षा का स्तर, गुणवत्ता नियंत्रण और दवाओं के मानकीकरण के उन्नयन पर जोर देने के साथ ही औषधीय पादप सामग्री की उपलब्धता में सुधार, शोध और अनुसंधान के अलावा घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस पद्धति की प्रभावोत्पादकता के बारे में जनमानस को जागरूक करना है। वर्तमान में लगभग सभी राज्य सरकारों द्वारा आयुष विभाग के माध्यम से परंपरागत भारतीय चिकित्सा पद्धति को चिकित्सा की मुख्यधारा बनाने की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (2005–2012) भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है। एनआरएचएम 18 राज्यों में, जहां सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाएं कमजोर हैं एवं स्वास्थ्य संकेतकों में बहुत कमी है, उन पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए देश भर की ग्रामीण आबादी को प्रभावी स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया करता है। इसके विभिन्न लक्ष्यों के अलावा संबंधित सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली में आयुर्वेद के क्षेत्र से स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं को पुनःजीवित करते हुए संबंधित चिकित्सा की आयुष प्रणालियों को मुख्य धारा में शामिल करना है।

सरकारी और कई गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के प्रयासों के साथ, आयुर्वेद लगातार धीरे–धीरे वापस अपनी पूर्व सम्मानजनक स्थिति में आ रहा है। बस जनमानस की जागरूकता पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। आयुष विभाग के सहायोग से गैरसरकारी संगठन विज्ञान भारती द्वारा आयोजित विश्व आयुर्वेद कांग्रेस और आरोग्य एक्सपो ने आयुर्वेद का प्रचार करते हुए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को बड़े पैमाने पर इसकी ओर आकर्षित किया है। 2002 में आरंभ होने वाली विश्व आयुर्वेद कांग्रेस ने प्रत्येक दो वर्ष में आयोजित की जाती रही है। वर्ष 2014 में नई दिल्ली में आयोजित हुए इस कार्यक्रम के छह संस्करण पूरे हो गए हैं। विश्व आयुर्वेद कांग्रेस के छठे आयोजन के समापन समारोह को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने संबोधित किया था। उनके संबोधन के तीन घंटों के बाद ही केंद्र सरकार ने आयुष मंत्रालय के गठन की घोषणा कर दी। इसके प्रत्येक आयोजन में आरोग्य एक्सपो में आयुर्वेदिक उत्पाद, उपचार के तरीकों और शैक्षिक संस्थानों को एक प्रदर्शनी के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रदर्शनी के माध्यम से लाखों नागरिकों में जागरूकता का प्रचार किया जाता है। आज, भारत सरकार सक्रिय रूप से आयुर्वेद को विभिन्न देशों में भी बढ़ावा दे रही है।

***

14 भारत में कृषि, जैवप्रौद्योगिकी और नैनोप्रौद्योगिकी

कृषि

भारत एक कृषि प्रधान देश है। 68 साल पहले की यह स्थिति आज भी सही है लेकिन अंतर केवल इतना है कि अब कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा हिस्सा नहीं रही है। आज हमारी अर्थव्यवस्था जिस स्थिति में है उसमें हमारी राष्ट्रीय आय का बड़ा हिस्सा सेवा क्षेत्र से आता है। लेकिन हमारे कामकाजी आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों में कार्यरत है। अधिकांश भारतीयों की आजीविका आज भी हमारे देश की भूमि पर निर्भर है। हमारे देश के लिए दो महत्वपूर्ण पहलू हैं जो कृषि क्षेत्र को देश के लिए महत्वपूर्ण बनाते हैं। एक तो हमारे देश की बढ़ती आबादी का पेट भरने से संबंधित है ताकि हमें खाद्यात्र आयात पर निर्भर नहीं रहना पड़े। दूसरा हमारी अर्थव्यवस्था की बुनियादी ताकत से संबंधित है। अल्पकालिक विकास को मूल्य संवर्धन (सेवा क्षेत्र की तरह) पर आधारित आर्थिक अर्थव्यवस्था से प्राप्त किया जा सकता है जबकि अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक प्रगति और इसके मजबूत आधार के लिए उत्पादन करने वाले प्राथमिक क्षेत्रों (जैसे कृषि) की भूमिका महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत के समक्ष कृषि क्षेत्र से संबंधित अनेक समस्याएं उपस्थित थीं जिनमें सिंचाई सुविधाओं की कमी, भूमि का असमान वितरण और उत्पादन में सुधार करने के लिए प्रौद्योगिकी का लगभग नगण्य उपयोग एवं फसलों से संबंधित कई बीमारियां आदि मुख्य थीं। उस स्थिति में, देश अपनी विशाल आबादी का पेट भरने के लिए अनाज के आयात पर निर्भर था। यह स्थिति उस समय और भी भयवाह हो गयी जब कृषि उत्पादन में स्थिरता आ गयी। उस समय भुखमरी से होने वाली मौतें आम बात थीं। उस समय यह बात अच्छे से समझ में आ गयी थी कि हम हमारी आबादी को खिलाने के लिए हमेशा आयातित अनाज पर निर्भर नहीं रह सकते। सबसे पहले यह बात स्पष्ट थी कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बदलते रहने से हम वर्ष भर अनाज आयात पर निर्भर नहीं रह सकते थे। दूसरे, अनाज के आयात से, हम उनकी कीमतों में बढ़ोतरी की दर को जाँचते नहीं थे। 1960 के दशक में हालांकि, यह स्थिति भारत के लिए अद्वितीय नहीं था, तीसरी दुनिया के बहुत से देश स्वतंत्र तो हो गए थे लेकिन उन्हें अपने देशवासियों को खिलाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा था। ऐसा मानना है कि ऐसे समय में, हरित क्रांति की शुरूआत ने दुनिया की एक तिहाई आबादी की जान बचाई थी। इसका श्रेय डॉ. नॉर्मन बोरलॉग को दिया जाता है। 1963 में, उन्होंने भारत में गेहूं की अधिक उपज देने वाली किस्मों की शुरुआत की। यह समय हमारे कृषि क्षेत्र के लिए एक निर्णायक मोड़ था उसके बाद से हम निरंतर आगे बढ़ते रहे हैं। उपज फसल किस्मों के उपयोग के साथ–साथ कृषि उत्पादन में सुधार के लिए अनेक उपायों को अपनाया गया। इस कार्य में प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. एम. एस. स्वामीनाथन ने भारतीय वैज्ञानिक दल की अगुआई करते हुए प्रमुख भूमिका निभाई। दूसरे उपायों में सिंचाई सुविधाओं का विकास, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों,

एवं पीड़कनाशियों का व्यापक उपयोग, भूमि सुधार और चकबंदी के अंतर्गत किए गए सुधार कार्य, भूमि जोतने, फसल बोने एवं फसल कटाई के बाद के कार्यों में यांत्रिक उपकरणों का उपयोग, आसानी एवं सरलता से कृषि ऋण की उपलब्धता और कृषि यंत्रों को चलाने के लिए ग्रामीण विद्युतीकरण सुविधाओं का विकास किया गया था।

इसके साथ ही, सरकार ने भी कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान प्रयोगशालाओं की स्थापना में निवेश किया, ताकि हमारे स्वयं के प्रयासों द्वारा और प्रक्रियाओं को समझते हुए विकास की अगली लहर आ सके। इस निर्णय से गेहूं और धान फसलों की विविध किस्मों के विकास में बहुत अधिक प्रयास किए

हरित क्रांति का प्रभावी परिणाम हुए

जिससे हमारी जलवायु और बाढ़ एवं सूखे जैसी विषम स्थिति के लिए जिम्मेदार मानसून की अनियमिकता का सामना किया जा सके।

दुर्भाग्य से, हरित क्रांति के बाद लंबे समय के लिए, कृषि के लिए हमारे दृष्टिकोण में बहुत कम परिवर्तन आए जिसके परिणामस्वरूप उपज प्रभावित हुई। हालांकि ये वही उच्च उपज फसलें थीं जिनकी हमनें पहले बात की थी। हमने महसूस किया है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान कुल उत्पादन भूमि क्षेत्र में गिरावट आई है, लेकिन हमारी जनसंख्या पहले की तरह ही बढ़ती जा रही है जिसके कारण हमारे कृषि उत्पादों को भी उसी वृद्धि दर को हासिल करना होगा। दुर्भाग्य से ऐसा खेतों में रसायनों के लगातार और अंधाधुंध प्रयोग से संभव हो पाया है। किसान अब किसी भी प्राकृतिक उपाय या फसल चक्र पर निर्भर नहीं रहे हैं। कृत्रिम रसायनों के लंबे समय के उपयोग से उत्पादन अपनी अधिकतम क्षमता तक पहुँच गया है जबकि खरपतवारों, कीटों, और पीड़कों ने इनके खिलाफ प्रतिरोधी हासिल कर ली है।

यह समय एक दूसरी हरित क्रांति के लिए आदर्श है। पिछले एक दशक से, कृषि वैज्ञानिकों द्वारा रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के जैविक विकल्प खोजने पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है और कुछ हद तक इसमें सफलता भी मिली है। सिंचाई सुविधाओं में भी सुधार किया गया है और लोगों को भूमिगत जलस्तर को स्थिर बनाए रखने के प्रति जागरूक बनाया गया है। ऐसी योजनाओं ने खेती की मानसून पर निर्भरता को कम किया है। मानसून उत्पादन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला कारक है। विश्वसनीय ऊर्जा आपूर्ति के लिए ग्रामीण विद्युतीकरण के प्रयास किए जा रहे है। इसके अलावा भूजल पुनर्भरण के लिए वर्षा जल संचयन तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। ऐसी योजनाएं बनाई जा रही है जिसमें हमारे खेती की मानसून पर निर्भरता कम हो, ताकि उत्पादन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले कारक को समाप्त किया जा सके। बिजली की आपूर्ति और भूजल रिचार्जिंग एवं वर्षा जल संचयन आदि तकनीक का उपयोग करने के साथ ग्रामीण विद्युतीकरण पूरा करने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। कृषि वैज्ञानिकों के साथ परामर्श करके, किसान निर्णय लेने में समर्थ होते हैं कि उन्हें किस तरह के रासायनिक पदार्थों का उपयोग करना है, उनका कितना उपयोग करना है और उनके स्थान पर किन कार्बनिक तत्वों का उपयोग करें जो भूमि को बिना नुकसान पहुंचाए अच्छी उपज दें। इससे हमारे खेतों में रसायनों के अंधाधुंध उपयोग की मात्रा में कमी आयी है जिनके कारण खेतों के आसपास के इलाकों और जल संसाधन संदूषित हो रहे थे। इसके साथ ही मृदा परीक्षण और स्थानीय परिस्थितियों के लिए क्षेत्र मूल्यांकन की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिससे शोधकर्ता भी किसानों को बेहतर सुझाव प्रदान करने में समर्थ हो रहे हैं। इससे खेती की प्रक्रिया को अधिक वैज्ञानिक बनाया गया है और किसानों का खर्च भी कम हो रहा है क्योंकि अब किसान उर्वरकों या कीटनाशकों की विशिष्ट मात्रा का ही उपयोग कर रहे हैं।

जैवप्रौद्योगिकी और नैनोप्रौद्योगिकी

वर्तमान में जैव प्रौद्योगिकी और नैनोप्रौद्योगिकी के क्षेत्र पर बहुत अधिक उम्मीदें हैं। जैव प्रौद्योगिकी जीवित जीवों के अनुप्रयोगों के साथ मानव स्वास्थ्य को उन्नत बनाने की पहल है। जब हम भारत में जैव प्रौद्योगिकी की बात करते हैं, तब हमारा मुख्य ध्यान केवल स्वास्थ्य और कृषि क्षेत्रों में इसके उपयोग को लेकर होता है। दवा क्षेत्र में, इसका उपयोग बेहतर और सस्ती दवाओं, कैंसर जैसे रोगों के लिए नयी पद्धतियों का विकास, टीकाकरण और निदानिकी के लिए किया जाता है। खेती में, इससे पौधों के जीनों में हेर–फेर करके, जैव कीटनाशियों और जैवउर्वरकों एवं खाद्य संरक्षकों और प्रसंस्करण के द्वारा उच्च उत्पादक बीजों के विकास की अपेक्षा रहती है। खाद्य संरक्षण का महत्व इसलिए भी है क्योंकि एक साल में हमारे देश में अपर्याप्त भंडारण सुविधाओं के कारण खाद्य उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत खत्म हो जाता है।

दूसरे स्तर पर, नैनोप्रौद्योगिकी केवल सरकार से वित्त पोषित अनुसंधान पर ही निर्भर है। लेकिन अब इससे काफी उम्मीदें जुड़ी हैं। नैनोप्रौद्योगिकी बहुत छोटे पैमाने की एक तकनीक है – एक मानव बाल की मोटाई से एक हजार छोटे स्तर की। इस तरह के पैमाने पर, हालांकि पदार्थ की मूल प्रकृति में बदलाव नहीं होता लेकिन संरचनात्मक स्तर पर परिवर्तन करके पदार्थों को मजबूत और अधिक कुशल उत्प्रेरक बनाकर दवाओं के लिए तेजी से असरदार बनाया जा सकता है। नैनोप्रौद्योगिकी का सीधा लक्ष्य कृषि उत्पादकता बढ़ाने से संबंधित है, जिसके लिए आनुवांशिक सुधार, प्रदूषित जल स्रोतों का उपचार और फसलों को कीटों और पीड़कों के हमलों से प्रतिरोधी बनाने का प्रयास किया जाता है। भविष्य में, हमारे

पास नैनोकणों पर आधारित कीटनाशक होंगे, जिनकी केवल थोड़ी सी मात्रा ही एक हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले खेत पर छिड़कने के लिए पर्याप्त होगी।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने से पहले कई बाधाओं विशेषकर मानवीय स्वास्थ्य पर नैनोप्रौद्योगिकी और जैव प्रौद्योगिकी के दीर्घकालीन उपयोग के आकलन को पार करना होगा। आज भारत सही रास्ते पर जा रहा है और इसका भविष्य आशाजनक दिखता है।

***

15 भारत में खगोल विज्ञान

भारत में खगोल विज्ञान के विकास ने वैदिक काल से आज तक का लंबा सफर तय किया है और अब हम इसरो के माध्यम से खगोल विज्ञान में अंतरिक्ष की खोज और अनुसंधान की ओर बढ़ रहे हैं।

जब भारतीय खगोल विज्ञान का ज़िक्र आता है तब जो तस्वीर सबसे पहले हमारे ज़हन में उभरती है वह जंतर–मंतर की है। यह 18वीं सदी में जयपुर के राजा सावाई जय सिंह द्वारा बनवाया गया था। खगोलीय अवलोकनों के लिए इस्तेमाल होने वाले ये भारी–भरकम उपकरण मौलिक रूप से भारतीय खगोल विज्ञान ग्रंथों पर आधारित थे। कैलेण्डर में संशोधन कर और सारणी का ज़्यादा सटिक संग्रह बनाकर प्रमुख तारों और ग्रहों की गति की भविष्यवाणी कर सकने के लिए पांच जंतर–मंतरों का निर्माण किया गया था। ये आंकड़े ज़्यादा सटिक समय नापने, ग्रहण की भविष्यवाणी में सुधार और पृथ्वी के सापेक्ष तारों और ग्रहों की स्थिति की बेहतर निगरानी में उपयोगी रहे थे। इन उपकरणों की डिज़ाइन बीते दिनों में खगोलविद्ों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरणों पर आधारित थी। ये उपकरण पैमाने पर बहुत बड़े रहे हैं माना जाता है कि इनका उद्देश्य सटिकता बढाने के लिए किया गया है। वहां कोई भी विश्व की सबसे बडी धूपघड़ी पा सकता है और सचमुच प्रति सेकण्ड सूरज की छांव को खिसकते हुए देखा जा सकता है। रिकार्ड यह भी बताते हैं कि यहां दूरबीनों (टेलिस्कोप) का निर्माण किया था और इस तरह के अवलोकनों में उनका इस्तेमाल किया गया था। इस तरह की सटीकता उस समय के कुछ उल्लेखनीय सटीक परिणाम को प्रस्तुत करने में मददगार बनीं और यहां तक कि हमारे समकालीन यूरोपीय भी इस विषय में हमसे बहुत पीछे थे।

एक और महत्वपूर्ण बात जो जंतर–मंतर के बारे में जानने को मिलती है कि जिस राजा ने इन पांचों का निर्माण करवाया था। वे केवल एक बना सकते थे और उसके परिणाम से खुश रह सकते थे। उन्होंने पांच वैधशालाओं का निमार्ण कराया, क्योंकि इस प्रकार किसी एक वैधशाला द्वारा दिए गए परिणाम को दूसरी वैधशाला से जांचा–परखा जा सकता था। स्पष्ट रूप से एक उपकरण पर रीडिंग लेने की इस तरह की सत्यापन विधि से मानवीय त्रुटि को कम किया जा सकता है। साथ ही ये पांच वेधशालाएं पांच अलग–अलग शहरों में स्थित हैं। इस प्रकार पृथ्वी के अलग–अलग हिस्सों से कोई भी आकाशीय पिण्डों की स्थिति की रीडिंग की जांच कर सकता है और दुबारा इस पूरे परिणाम की पुष्टि भी कर सकता है। यह हमारे अतीत के खगोलविद्ों के दिमाग में वैज्ञानिक जांच प्रक्रिया की मज़बूत पकड़ को व्यक्त करता है।

जंतर–मंतर को बनाने के पीछे के विचार आर्यभट्ट, वाराहमिहिर, भास्कराचार्य और अन्य द्वारा लिखे गए प्राचीन ग्रंथों से आए थे। प्राचीन भारतीय खगोलीय का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ पांचवीं और पंद्रहवीं शताब्दी

– जो कि भारतीय खगोलविज्ञान का शास्त्रीय युग था, के मध्य में संकलित किया गया था। इन कार्यों के बीच और अधिक परिचितों में आर्यभट्ट, आर्यभट्टसिद्धांता, पंच–सिद्धांतिका और लघुभा कार्यम जैसे महान लोगों के कार्य थे। प्राचीन भारतीय खगोलविद कई मामलों में उल्लेखनीय माने जाते हैं। यहां तक कि उनकी उपलब्धियां तब और चौंका देती हैं जब यह पता चलता है कि उन्होंने किसी भी प्रकार के दूरबीन का इस्तेमाल नहीं किया था। वे सौर–मंडल की सूर्य–केंद्रित सिद्धांत को लाए, ग्रहों के लिए गोलाकार की बजाय दीर्घवृत्ताकार कक्षाएं होती है, एक साल की लंबाई और पृथ्वी के आयाम की युक्तिपूर्वक सटिक गणना और यह विचार की रात के आकाश में दिखाई देने वाले अनगिनत तारों के समान सूर्य भी एक तारा ही है।

मध्यकाल के दौरान कहीं न कहीं खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति हो रही थी और खगोल विज्ञान और ज्योतिषी का मिश्रण बन कर उभरी थी। ज्योतिष के साथ इस संगठन ने भारतीय खगोल विज्ञान को पटरी से उतार दिया और अंधविश्वासों ने उस पर हावी होना शुरू कर दिया था। सचमुच में लोगों की दिलचस्पी रात के आसमान में अवलोकनों को बनाने में और इस कला में सुधार करने में रह गई थी। हालांकि लोगों ने यह समझना बंद कर दिया था कि इन अवलोकनों का क्या मतलब है। उपनिवेशवाद के साथ यूरोपीय स्कूल ऑफ एस्ट्रोनॉमी हमारे अपने द्वारा विस्थापित हैं। भारत की आज़ादी के पहले सामांता चंद्राशेखर अंतिम श्रेष्ठ खगोल विज्ञानी थे। उनकी किताब सिद्धांत दर्पण और यहां तक कि साधारण यंत्रों के इस्तेमाल से सटिक अवलोकनों ने उन्हें अंग्रेज़ों तक में प्रशंसा दिलाई।

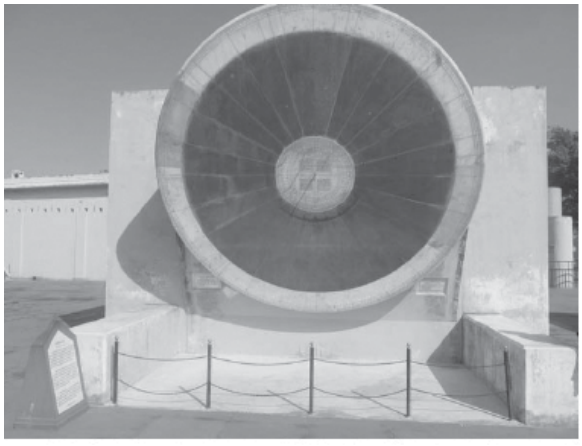

जयपुर वॉल्व यंत्र आपको सूरज की अर्धगोलाकार स्थिति बताता है।

वर्तमान युग में, भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम भौतिकी के क्षेत्र में दो बडे दिग्गजों होमी जहांगीर भाभा और विक्रम साराभाई द्वारा दिए गए योगदान पर खड़ा है । यह उनके अथक प्रयास थे जिसकी वजह से परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में काम करने की पहल की गई थी।

इस अवधि के दौरान भारत ने कुछ उल्लेखनीय खगोलविद् और खगोलभौतिकविद् निकले। खगोल भौतिकी में दो विश्व प्रसिद्ध नाम मेघनाद साहा और सुब्रमण्यन चंद्रशेखर थे। अवलोकन खगोलविज्ञान में हमारे पास डॉ. वेणु बापू थे, आज कि तारीख तक केवल भारतीयों में इनके नाम पर धुमकेतू का नाम है। डॉ. बापू को 1979 से 1982 तक अंतर्राष्ट्रीय खगोलीय संघ के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था।

इन्होंने ही भारत में अवलोकन खगोलविज्ञान को पुनर्जीवित किया था और उसे ऊंचाईयों तक ले गए। वर्तमान में पुणे के समीप खोदाद में स्थित विशालकाय मीटर–तरंग रेडियो टेलिस्कोप विश्व में अपनी तरह का सबसे बडा है। कावालुर वेधशाला का नाम डॉ. बापू के नाम पर है जो कि पूर्वी गोलार्ध में से एक है जो सबसे अच्छे यंत्रों से लैस है।

कावालूर वेधशाला

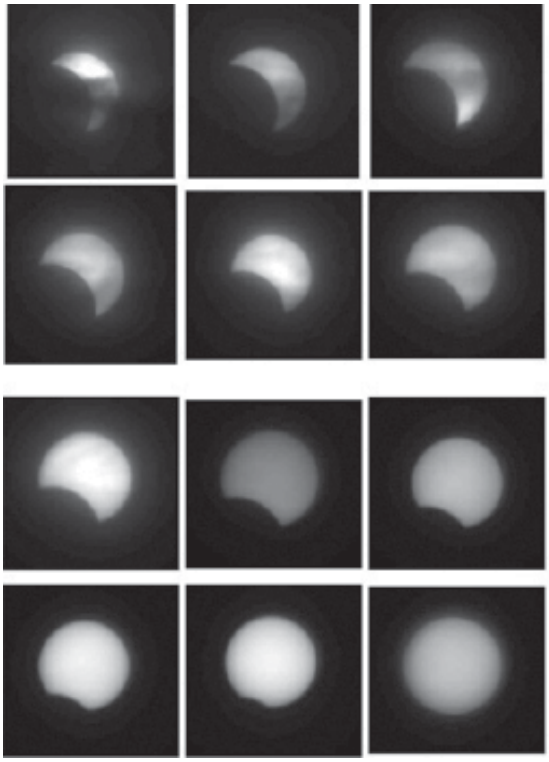

कावालूर वीबीओ द्वारा लिए गए आंशिक सूर्य ग्रहण के चित्र

जंतर–मंतर, भारत की प्राचीन खगोल विज्ञान वेधशालाएं और उनके कुछ यंत्र ऐतिहासिक भारतीय खगोल विज्ञान वेदांगा या वेदों के किसी एक ''सहायक विषयों'' के अध्ययन के सहयोग से विकसित हुआ एक रूप है। प्राचीनतम ज्ञात वेदांगा ज्योतिष ग्रंथ का समय 1400–1200 ईस्वी पूर्व का माना जाता है।

पांचवीं–छहठी शताब्दी में आर्यभट्ट जिसका आर्यभट्टीय उस समय के शिखर ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता था तब भारतीय खगोल विज्ञान चरम पर था। बाद में, भारतीय खगोल विज्ञान मुस्लिम खगोल विज्ञान, चीन के खगोल विज्ञान, यूरोप के खगोल विज्ञान और अन्य से भी काफी प्रभावित था। इस शास्त्रीय युग के दूसरे ज्ञाता जिन्होंने आर्यभट्ट के काम को विस्तार दिया उनमें ब्रह्मगुप्त, वारामिहिर और लाला शामिल थे।

एक पहचान खगोलीय परंपरा मध्ययुगीन काल में अठारहवीं सदी में भी सक्रिय रही, विशेष रूप से केरल के स्कूल ऑफ खगोलविज्ञान और गणित को संगमसंग्राम माधवन (1350–1425 ईस्वी) द्वारा स्थापित किया था।

खगोलविज्ञान के शास्त्रीय युग की शुरूआत गुप्त काल के अंत यानी पांचवीं से छठी शताब्दी में शुरू हुई थी। पंकासिद्धांतिका (वारामिहिर 505 ईस्वी) ने नोमोन या शंकु के तरीके का इस्तेमाल कर परछाई की तीनों स्थितियों का पता लगाकर मध्यान्ह दिशा के निर्धारण की विधि का अनुमान लगाया था।

एक बार महाराज मुहम्मद शाह के दरबार का दौरा करते समय जयपुर के महाराजा जय सिंह द्वितीय ने राजा की यात्रा की शुरूआत के लिए सबसे लाभदायक खगोल–सम्बंधी तारीख की गणना करने पर एक ज़ोरदार बहस सुनी। महाराज के लिए इस बहस ने खगोल विज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा की ज़रूरत को बताया। और इससे सटिक गणना करने वाली वेधशाला बनाई जा सकी। इस ज़रूरत से जंतर–मंतर या मापन–यंत्र का जन्म हुआ।

जंतर–मंतर की संरचना में शामिल पत्थर, ईंटें और मार्बल में से प्रत्येक को खगोल विज्ञान के पैमाने और डिज़ाइन के अंतर्गत खास मकसद के लिए बनाए गए थे। मौलिक रूप से दिल्ली, जयपुर, मथुरा, उज्जैन और वाराणसी की वेधशालाएं बनाई गई थी और केवल मथुरा को छोडकर आज तक उनका अस्तित्व मौजूद है।

खगोल विज्ञान के लिए इस्तेमाल होने वाली नोमोन जिसे शंकु के नाम से जानते हैं को प्रयुक्त उर्ध्वाधर रॉड की छाया क्षैतिज तल में प्रमुख दिशाओं, अवलोकन बिन्दु के अक्षांश और अवलोकन के समय का पता लगाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। वारामिहिर, भास्कर, ब्रह्मगुप्त इन यंत्रों के कार्यों का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन समय में चूडी की तरह गोल अवलोकन में इस्तेमाल होता था और इसके कार्यों का ज़िक्र आर्यभट्ट (476 ईस्वी) में मिलता है। गोलादिपिका एक विस्तृत ग्रंथ गोलक के साथ 1380–1460 के बीच में परमेश्वर द्वारा रचा था। संभवतया सातवीं शताब्दी से या उसके बाद से चंद्र के तारों के जमघट का पता इसी गोलक द्वारा लगाया गया था। वहां एक खगोलीय ग्लोब भी था जिसे बहते पानी में घुमाया गया था।

इस सहज खगोलीय गोलक का आविष्कार मुगल भारत में हुआ था खासतौर से लाहौर और कश्मीर में जिसे प्रभावी खगोलीय यंत्रों में से माना जाता है और यह धातु विज्ञान व इंजीनियरिंग के उल्लेखनीय

कारनामों में से है। इस गोलक के पहले और बाद में बीसवीं शताब्दी में भी धातु–वैज्ञानिकों का विश्वास है कि बिना किसी निर्बाध के एक धातुई गोलक तकनीकी रूप से संभव नहीं था और यहां तक कि आधुनिक तकनीक के साथ भी इसका निर्माण संभव नहीं है।

जयपुर स्थित लघु सम्राट यंत्र

छोटी धूपघड़ी या लघु सम्राट यंत्र का इस्तेमाल समय की गणना करने के लिए किया जाता था। एक तरफ से, दीवार 27 डिग्री के कोण से झुकी हुई है जो कि जयपुर के अक्षांश के बराबर है। यह स्पर्श रेखा के पैमाने के क्रम, सूर्य के झुकाव कोण का पता लगाने के लिए थे।

सम्राट यंत्र

सम्राट यंत्र को विशाल धूपघड़ी में वर्णित किया जा सकता है। सचमुच में इसका मतलब है कि यह सभी यंत्रों का राजा है। यह केवल सभी यंत्रों में से बड़ा ही नहीं है बल्कि इसके निर्माण में बहुत अधिक शुद्धता और श्रेष्ठता भी है।

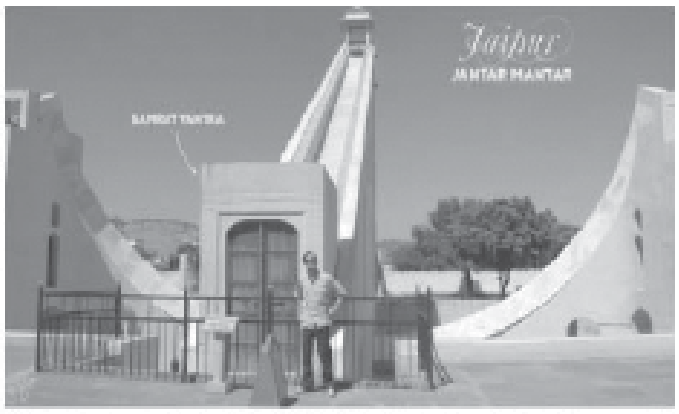

राशि वलय (राशि चिन्ह)

यह 12 यंत्रों का एक समूह है जिसके साथ वृत्त–खंड क्रम के दोनों ओर क्रम में लगे हैं। किताबों में इस तरह के निर्माण के उद्देश्य का वर्णन है कि ये 12 यंत्र सीधे आकाशीय अक्षांश और देशांतर का निर्धारण करते हैं। आकाशीय अक्षांश और देशांतर के अवलोकन की विधि वैसी ही है जैसी सम्राट यंत्र में वर्णित है, और सम्राट के वृत्त–खंड के समान ही ये भूमध्यरेखा को दर्शाता है, अवलोकन के समय राशिवलय का वृत्त–खंड ग्रहण को दर्शाता है। इन यंत्रों का निर्माण वैज्ञानिक तरीकों से किया गया है कि इन 12 में से एक उस वक्त इस्तेमाल होता है, जब प्रत्येक राशि स्थानीय भूमध्यरेखा में पहुंचती है।

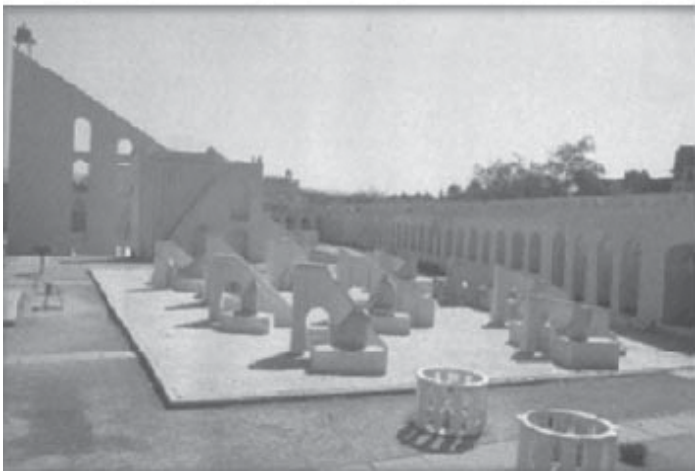

राम यंत्र

राम यंत्र सूर्य की ऊंचाई को मापता है, शंकु क्षेत्र द्वारा पड़ी छाया की ऊंचाई के हिसाब से (अंधकारित ऊपरी बाईं तरफ का स्तंभ मध्य बाईं ओर)। इस चित्र में सूर्य द्वारा चमक का प्रतिबिंब मध्य भाग में स्थित पैमाना ग्रिड से हट जाता है। सूर्योदय और सूर्यास्त में छाया इस यंत्र के चारों ओर चलते हुए कम और ज़्यादा होती है। जब आकाश में सूर्य ऊंचाई और निचाई पर होता है तो उसके अनुसार छाया ऊंचाई और निचाई पर होती है ।

मिश्र यंत्र

दिल्ली की वेधशाला की एक खासियत है मिश्र यंत्र, जो कि किसी अन्य दूसरी वेधशालाओं में नहीं है। वास्तव में यह जंतर–मंतर की ऐसी अकेली संरचना है जिसका निर्माण जय सिंह द्वितीय ने नहीं करवाया था। मिश्र यंत्र को जय सिंह द्वितीय के बेटे महाराजा माधो सिंह द्वारा जोड़ा गया था। उन्होंने अपने पिता के प्रयासों को आधुनिकीकरण की दिशा में जारी रखा।

पांच अलग–अलग यंत्रों से मिश्र यंत्र बना, जिसमें छोटे–पैमाने वाले सम्राट या धूपघड़ी शामिल हैं। मिश्र यंत्र के आसपास दो स्तंभ हैं जो कि साल के सबसे छोटे और सबसे लंबे दिनों का संकेत देते हैं। यह विशाल यंत्र पूरे विश्व के शहरों की संख्या, जहां दोपहर होती है उनको भी दिखाता है।

कुछ प्रमुख प्राचीन भारतीय खगोलविद्

लगाथा (ईस्वी पश्चात पहली सदी): इन्होंने सबसे पहला खगोल विज्ञान ग्रंथ लिखा जिसका नाम वेदांगा ज्योतिका है। इसमें खगोलविज्ञान संबंधी कई विवरण मिलते हैं जिन्हें सामान्यतया सामाजिक और पारंपरिक क्रियाकलापों में इस्तेमाल किया जाता था। वेदांगा ज्योतिका में आनुभविक अवलोकन के लिए वर्णित खगोल विज्ञान संबंधी गणना, कैलेंडर अध्ययन और स्थापित नियम थे। 1200 ईस्वी में लिखे गए ग्रंथ में व्यापक रूप से धार्मिक रचनाएं थीं। वेदांगा ज्योतिका का सम्बंध भारतीय ज्योतिष शक्ति के साथ था। और इसमें समय और मौसम से सम्बंधित कई प्रमुख पहलुओं पर विस्तृत जानकारी है, इसमें चंद्र मास, सौर मास और आधिमास के चंद्र मास द्वारा समायोजन भी शामिल हैं। युगों और ऋतुओं का भी वर्णन है। 27 तारामंडल, ग्रहण, सात ग्रह और 12 राशि चक्र के संकेत भी इस समय तक ज्ञात थे।

आर्यभट्ट (476–550 ईस्वी): आर्यभट्ट आर्यभट्टीय और आर्यभट्टसिद्धांता के लेखक थे। स्पष्ट रूप से आर्यभट्ट ने उल्लेख किया था कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है जिसके कारण स्पष्ट रूप से तारों की गति पश्चिम की ओर जाती हुई प्रतीत होती है। आर्यभट्ट ने यह भी बताया कि चंद्रमा के चमकने के पीछे का कारण सूर्य के प्रकाश का परावर्तन है। आर्यभट्ट के अनुनायी प्रमुख रूप से दक्षिण भारत में हैं जहां पर उनके सिद्धांत विशेष तौर पर दूसरों के बीच, पृथ्वी के प्रतिदिन के घूर्णन का अनुगमन किया जाता है और एक संख्या के दूसरे काम इसी सिद्धांत पर आधारित थे।

ब्रह्मगुप्त (598–668 ईस्वी): ब्रह्मास्पूता–सिद्धांत (सही तौर पर ब्रह्मा के समय स्थापित हुआ था) भारतीय गणित और खगोलविज्ञान दोनों के साथ काम करता है। ब्रह्मगुप्त ने ग्रहों के तात्कालिक गति की गणना, लंबन के लिए सही समीकरण और ग्रहणों की गणना की। भारतीय विचार के गणित पर आधारित खगोलविज्ञान के काम को अरब देश में शुरू किया। उन्होंने यह भी अनुमान लगाया कि द्रव्यमान के साथ सभी आकाशीय पिण्ड पृथ्वी को आकर्षित करते हैं।

वारामिहिर (505 ईस्वी): वारामिहिर एक भारतीय खगोल विज्ञानी और गणितज्ञ थे जिन्होंने ग्रीक, इज़िप्ट और रोमन खगोलीय विज्ञान के कई सिद्धांतों का भी अच्छी तरह अध्ययन किया था। पंकासिद्धांतिका उनका एक ग्रंथ है और चित्रकारी का संग्रह कई स्रोतों से लिया गया है।

भास्कर प्रथम (629 ईस्वी): महाभास्कर्य, लघुभास्कर और आर्यभाट्यभाष्य (629 ईस्वी) में लेखक ने खगोलीय विज्ञान कार्य किए थे जो कि आर्यभट्ट की समीक्षा थी। भास्कर ने देशांतर के लंबन का निर्धारण, परिकल्पित तरीका, विषुवों और आयनकालों की गति, और सूर्य के किसी भी वृत्त–खंड को किसी भी दिए हुए समय के बारे में बताता है।

लाल्ला (8वीं सदी ईस्वी): लाल्ला उइस्याधिवरधिहधा के लेखक हैं जिन्होंने आर्यभट्ट की धारणाओं को ठीक किया। लाल्ला का शिष्याधिवर्धिदधा में खुद को दो हिस्सों में विभाजित किया है – ग्रहाधियाय में ग्रहों की गणना, ग्रहों के सही निर्धारण का माध्य, पृथ्वी की दैनिक गति से सम्बंधित तीन समस्याएं, ग्रहणों, ग्रहों का उदय और अस्त, चंद्रमा की विभिन्न कलाएँ ग्रहों और नक्षत्रों का मिलन, और सूर्य व चंद्रमा की पूरक स्थितियां शामिल हैं। दूसरे हिस्से में, गोलाधिय (अध्याय चौदह से बाईस) में ग्रहों की गति का चित्रात्मक वर्णन, खगोलीय यंत्रों के सुधार व त्रुटिपूर्ण सिद्धांतों की अस्वीकृति पर ज़ोर देता है। लाल्ला ने सिद्धांततिलका का भी लेखन किया था।

भास्कर द्वितीय (1114 ईस्वी): सिद्धांतासिरोमानी और करनकुतुहला (खगोलीय आश्चर्यों की गणना) का लेखन और ग्रहों की स्थितियों के अवलोकनों के बारे में रिपोर्ट किया। उन्होंने संगम, ग्रहणों, भू–विवरण, भूगोल, गणित खगोलीय यंत्रों का इस्तेमाल अपने शोध में किया जो कि उज्जैन में स्थित वेधशाला में स्थित है। वे इसके प्रमुख थे।

श्रीपति (1045 ईस्वी): श्रीपति एक खगोलविज्ञानी और गणितज्ञ थे। उन्होंने ब्रह्मगुप्त स्कूल का अनुगमन किया और सिद्धांतशेखर (स्थापित सिद्धांतों के शिखर) के लेखक रहे, इसमें उन्होंने 20 अध्यायों में कई नई अवधारणाओं को बतलाया जिसमें चांद की दूरी में असमानता भी शामिल है।

महेन्द्र सूरी (14 सदी ईस्वी): महेन्द्र सूरी यंत्र–राजा (यंत्रों के राजा, जिसे 1370 ईस्वी में लिखा गया था) एस्ट्रोलोब (वेधयंत्र) पर एक संस्कृत कार्य था। इसे 14वी सदी में तुगलक राज–वंश के दौरान फिरोज़ शाह तुगलक (1351–1388 सीई) ने भारत में पेश किया था। लगता है कि सूरी फिरोज़ शाह तुगलक के शासन में जैन खगोलविज्ञानी थे।

नीलकंठन सोमयाजी (1444–1544 ईस्वी)

1500 में नीलकंठन सौम्याजी जो कि केरला स्कूल ऑफ खगोलविज्ञानी और गणितज्ञ थे ने अपने तंत्रसंगाह में बुध और शुक्र ग्रहों के आर्यभट्ट मॉडल को संशोधित किया था। यहां तक कि योहानस केप्लर के समय 17वीं सदी तक इन ग्रहों के लिए इनकी समीकरणें केन्द्र में सबसे सटीक बनी रहीं थी। नीलकंठन सौम्याजी ने अपने आर्यभट्टयभाष्य जो कि आर्यभट्ट आर्यभट्य पर एक समीक्षा थी, उसमें आंशिक रूप से सूर्य केंद्रित ग्रहों के मॉडल के लिए खुद का कम्प्यूटेशन तंत्र विकसित किया था, इसमें बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि की कक्षा सूर्य, जो कि पृथ्वी की कक्षा में तब्दील हो जाती है। वे ज्योतिर्यमिमामसा के लेखक भी रहे, उन्होंने खगोलीय प्रेक्षण और खगोलीय अवलोकनों की ज़रूरत पर ज़ोर दिया जिससे कम्प्यूटेशन के लिए सही मानकों को प्राप्त किया जा सका।

अच्यूता पिसरदी (1550–1621 ईस्वी):

स्पूतनिर्णय (सही ग्रहों का निर्धारण) मौजूदा विचारों के दीर्घवृत्ताकार सुधार का विवरण। स्पूतनिर्णय को बाद में रासीगोलसपूतानिति (राशिचक्रों के क्षेत्र के देशांतर कम्प्यूटेशन) में विस्तृत किया गया। दूसरा कार्य करानोटामा है जो कि ग्रहणों, सूर्य और चंद्रमा के बीच पूरक संबंध, और सही ग्रहों और माध्य की उत्पत्ति के साथ समझौता करते हैं। उपरागकरियाक्रम (कम्पूटिंग ग्रहणों की विधि), अच्यूत पिसरदी ने ग्रहणों की गणना के तरीकों में सुधार का सुझाव दिया।

***

16 अंतरिक्ष में भारतः एक उल्लेखनीय उपलब्धि

एक स्वप्न और उसका पूर्ण होना

हजारों वर्षों से मानव रात में आकाश को देखकर उसके रहस्यों को समझने का प्रयास करता रहा है। अंतरिक्ष में उड़ान भरने और खगोलिय पिंडों की दूरियों को समझने का प्रयास किया जाता रहा है। लंबे समय से पोषित इस सपने को वास्तविकता में बदलने के लिए मानव ने ऐसे शक्तिशाली एवं समर्थ रॉकेट विकसित किए जो उपग्रहों और मानव को अंतरिक्ष में ले जा सकते हैं। अंतरिक्ष तक पहुँचने के बाद, विकसित रॉकेट उपग्रहों, रोबोट अंतरिक्ष यान या मनुष्य को ले जाने वाले अंतरिक्ष यान को पृथ्वी चक्र या हमारे सौर मंडल के अन्य स्थानों तक ले जाने में समर्थ हैं। अंतरिक्ष अन्वेषण के लिए मानव द्वारा अनेक युक्तियों को प्रक्षेपित करने के साथ ही मनुष्यों द्वारा पृथ्वी पर जीवन को सरल और सुरक्षित बनाने के प्रयास भी किए गए हैं। इस प्रकार, अंतरिक्ष की उपयोगिता सही मायने में क्रांतिकारी सिद्ध हुई है।

सबसे पहले हम 'अंतरिक्ष' शब्द को समझते हैं। आज जब हम अंतरिक्ष अनुसंधान या अंतरिक्ष उड़ान की बात करते हैं तो अंतरिक्ष शब्द से पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर का क्षेत्र परिभाषित होता है। आज, कई वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी की सतह से लगभग 100 किलोमीटर की ऊंचाई पर अंतरिक्ष शुरू होता है। इस प्रकार, सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, तारे और आकाशगंगाएं सहित सभी खगोलीय पिंड अंतरिक्ष में हैं। अंतरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी के आसपास घूमते हैं। आज जिस विशाल अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन में मानव रह रहा है वह भी अंतरिक्ष में पृथ्वी के चक्कर काट रहा है।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की विशिष्टता

भारत विश्व के कुछ उन गिने–चुने देशों में जिन्होंने जनमानस के कल्याण के लिए अंतरिक्ष अन्वेषण और उसके उपयोग करने की चुनौती स्वीकार की है। इसके लिए, देश ने ऐसी विभिन्न प्रौद्योगिकियों का विकास किया है जिनको कुछ अन्य देशों ने विकसित किया है।

अंतरिक्ष के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियां डॉ. विक्रम साराभाई की दूरदर्शीता का परिणाम है। साराभाई एक महान स्वप्नदर्शी होने के साथ ही उन सपनों को साकार करने की राह सुझाते थे। भारत के तीव्र और समग्र विकास में अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की शक्ति में उनका दृढ़ विश्वास था।

डॉ. साराभाई के बाद भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के प्रमुख के रूप में कार्य करते हुए प्रो. सतीश धवन ने स्वदेशी प्रयासों के माध्यम से अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के विकास में अहम योगदान दिया। उन्होंने देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम की जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय उद्योगों की भागीदारी पर जोर दिया। प्रो. सतीश धवन के उत्तराधिकारियों के रूप में प्रो. यू. आर. राव, डा. के. कस्तूरीरंगन, डॉ. जी माधवन नायर

और डॉ. राधाकृष्णन ने अपने स्वयं के अद्वितिय प्रयासों से भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को अहम स्थान पर पहुंचाया।

विक्रम साराभाई

आरंभ

आज भारत को कई अंतरिक्ष गतिविधियों के संचालन के बाद विश्व के कुछ प्रमुख देशों में से एक माना जाता है। हालांकि, भारत सरकार द्वारा भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को सन् 1962 में अंतरिक्ष अनुसंधान पर भारतीय राष्ट्रीय समिति के गठन के साथ मामूली तौर पर शुरू किया था। 21 नवंबर, 1963 में तिरुवनंतपुरम के निकट थुम्बा से 28 फुट लंबे एक अमेरिकी ध्वनि रॉकेट 'निक आपचे' के प्रक्षेपण के साथ औपचारिक तौर पर अंतरिक्ष संबंधी कार्यक्रम आरंभ हुए। इसके द्वारा ऊपरी वायुमंडल में हवाओं के अध्ययन के लिए एक छोटा सा फ्रेंच पेलोड (वैज्ञानिक उपकरण) ले जाया गया था। ध्वनि रॉकेट एक छोटा अनुसंधान रॉकेट था जो ऊपरी वायुमंडल और अंतरिक्ष के अध्ययन करने के लिए उपकरणों को ले गया था। यह प्रक्षेपित उपग्रह नहीं था।

लगभग 50 साल बाद, 9 सितंबर, 2012 को भारत ने अपने 100वें अंतरिक्ष मिशन का जश्न मनाया। इस ऐतिहासिक मिशन को भारत के ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी–सी 21) द्वारा पूरा किया

'निक आपचे' का प्रक्षेपण

गया जिसके द्वारा एक फ्रांसीसी और एक जापानी उपग्रह, जिनका कुल भार लगभग 750 किलो था, को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया। इससे भारत की अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की यात्रा की झलक मिलने के साथ ही अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में भारत की महारत के बारे में पता लगता है।

1960 के दशक के दौरान, भारत ने मुख्यतया ध्वन्यात्मक रॉकेटों के माध्यम से अंतरिक्ष अनुसंधान को पूर्ण किया। लेकिन, देश ने संचार उपग्रहों के माध्यम से जमीनी स्टेशन स्थापित करके विभिन्न उपयोगी प्रयोगों को संचालित किया।

पीएसएलवी–सी 21 भारत का 100वां प्रक्षेपित अंतरिक्ष अभियान था

भारत की अंतरिक्ष क्षमता

भारत के अंतरिक्ष विभाग के माध्यम से देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम को लागू करने की जिम्मेदारी अंतरिक्ष एजेंसी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन पर है जिसे व्यापक रूप से 'इसरो' के नाम में जाना जाता है। इसकी स्थापना सन् 1969 में की गयी थी। इसी वर्ष मनुष्य ने पहली बार चंद्रमा पर कदम रखा था।

वर्तमान में इसरो के विभिन्न केन्द्र पूरे भारत में फैले हुए हैं। इनमें से एक तिरुवनंतपुरम में स्थित विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (वीएसएससी) है जो विशाल उपग्रहों को लांच करने में एवं सक्षम रॉकेटों की डिजाइन करने में समर्थ हैं। इसी शहर में तरल प्रणोदन प्रणाली केंद्र (एलपीएससी) स्थित है जो तरल रॉकेट इंजनों का विकास करने के साथ ही अधिक कुशल और अत्यधिक जटिल क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन विकसित करता है।

बैंगलोर को भारत के अंतरिक्ष शहर के रूप में भी जाना जाता है। यहां पर भारतीय उपग्रहों के निर्माण करने वाली संस्था इसरो उपग्रह केंद्र (आईएसएसी) सहित अंतरिक्ष संबंधित अनेक सुविधाएं प्रदान करने वाली संस्थाएं कार्यरत हैं। प्रसिद्ध अंतरिक्ष यान चंद्रयान–1, जिसने चंद्रमा पर पानी की निर्णायक खोज की है उसे भी यहीं बनाया गया था। हालांकि, इसरो का मुख्यालय और भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का परिचालन करने वाला अंतरिक्ष विभाग भी बैंगलोर में ही स्थित है। इसरो के अहमदाबाद स्थित अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र द्वारा उपग्रहों के लिए इस तरह के पेलोड विकसित किए जाते है।

नेशनल रिमोट सेंसिंग सेंटर (एनआरएससी) इसरो का एक अन्य महत्वपूर्ण केंद्र है। यह हैदराबाद में स्थित है। यह भारत के दूरसंवेदी उपग्रहों द्वारा भेजे गए चित्रों को रेडियो तरंगों के रूप में प्राप्त करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

एनआरएससी ऐसे चित्रों को सटीक बनाने और उनका विवरण स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिए उन चित्रों को संसाधित (प्रोसेस) करता है। केंद्र उन चित्रों को व्यवस्थित ढंग से संग्रहित करते हुए उन्हें भारत में वितरित करता है।

बंगाल की खाड़ी में श्रीहरिकोटा द्वीप पर इसरो का सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र स्थापित है। यह स्थान भारत के अंतरिक्ष बंदरगाह के नाम से विख्यात है। श्रीहरिकोटा, चेन्नई के उत्तर में लगभग 80 किमी दूर आंध्र प्रदेश के नेल्लोर जिले में स्थित है। यहीं से भारत में निर्मित 38 रॉकेटों को अंतरिक्ष की ओर प्रक्षेपित (अप्रैल 2013 तक) किया गया है। यहां पर विशाल उपग्रह प्रक्षेपण वाहनों को इकट्ठा करने के साथ ही उन्हें प्रक्षेपित करने और ट्रैक करने की सुविधा मौजूद है।

उपग्रह युग में

1970 के दशक में, भारत ने अपने पहले उपग्रह आर्यभट्ट के प्रक्षेपण के साथ अंतरिक्ष में एक विशाल छलांग लगाई। प्रसिद्ध भारतीय खगोलशास्त्री के नाम पर प्रक्षेपित इस उपग्रह का प्रक्षेपण के दौरान वजन लगभग 360 किलोग्राम था।

आर्यभट्ट कई तलों (बहुतल) के साथ एक बड़े बॉक्स की तरह दिखता था। उपग्रह की पूरी सतह को सोर सैलों से ढका गया था जो सूर्य प्रकाश के संपर्क में आने पर विद्युत उत्पादित करते थे। उपग्रह की तरह एक परिष्कृत उपकरण के निर्माण में शामिल चुनौतियों को समझने के लिए आर्यभट्ट का निर्माण किया गया था। फिर भी, यह एक वैज्ञानिक उपग्रह था, क्योंकि यह सूर्य, दूर के खगोलीय पिंडों और पृथ्वी के आयनमंडल का अध्ययन करने वाले तीन वैज्ञानिक उपकरणों को ले गया था। 19 अप्रैल, 1975 को सोवियत संघ के एक रॉकेट द्वारा आर्यभट्ट को पृथ्वी से 600 किलोमीटर ऊंची एक कक्षा में स्थापित किया गया। आर्यभट्ट ने भारत के उपग्रह कार्यक्रम की आधारशिला रखी। भारतीय वैज्ञानिकों ने आगे बढ़ते हुए भास्कर 1 उपग्रह के निर्माण का कार्य शुरू किया। इस उपग्रह का लक्ष्य पृथ्वी के अवलोकनों से संबंधित था।

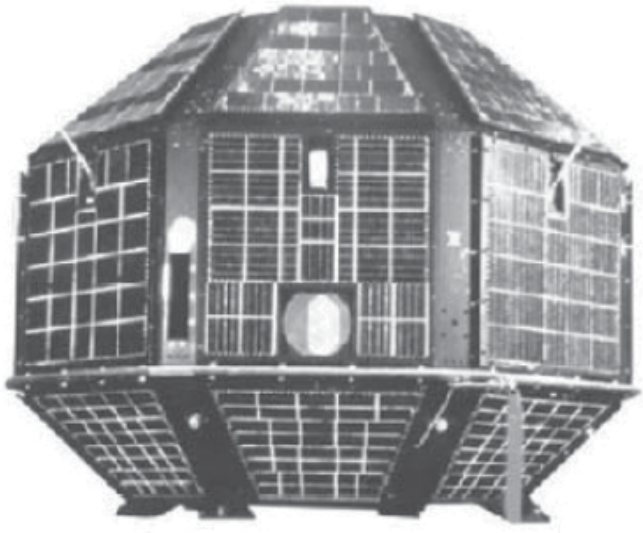

आर्यभट्ट उपग्रह

जून 1979 में भास्कर उपग्रह को भी सोवियत संघ के एक रॉकेट द्वारा कक्षा में स्थापित किया गया। यह पृथ्वी की सतह की तस्वीरें लेने के लिए अपने साथ एक टीवी कैमरा भी ले गया। इसके अलावा, यह अपने साथ एक 'माइक्रोवेव रेडियोमीटर' भी ले गया था जो पृथ्वी का अध्ययन करने वाला एक उपकरण था। इसी तरह एक अन्य उपग्रह, भास्कर द्वितीय को

सोवियत संघ के रॉकेट द्वारा 1981 में प्रक्षेपित किया गया था। भास्कर कार्यक्रम से प्राप्त अनुभवों ने भारतीय सुदूर संवेदन (इंडियन रिमोट सेंसिंग–आईआरएस) उपग्रह कार्यक्रम के लिए नींव तैयार की।

भू–समकालिक कक्षा पृथ्वी की, सतह से 36,000 किलोमीटर की ऊंचाई पर स्थित होती है, जो निश्चित रूप से, पृथ्वी से चंद्रमा की दूर का लगभग दसवां हिस्सा है। इस ऊंचाई पर स्थित उपग्रह पृथ्वी का एक पूरा चक्कर 24 घंटे में लगाता है, इतने ही समय में पृथ्वी अपने अक्ष पर एक पूरा चक्कर भी लगाती है। क्योंकि पृथ्वी अपनी ही धुरी के चारों ओर घूमने में 24 घंटों का समय लेती है इसीलिए उपग्रह की गति पृथ्वी की कक्षा के साथ मिलायी जाती है। इस प्रकार इसका नाम 'भू–समकालिक कक्षा' है। इस तरह भूमध्य रेखा के ऊपर स्थित कक्षा में स्थापित किए गए उपग्रह को भूस्थिर उपग्रह कहा जाता है।

1970 के दशक के अंतिम समय और 80 के दशक में, इसरो के वैज्ञानिकों ने रोहिणी श्रृंखला के उपग्रहों का निर्माण करते हुए उपग्रहों के निर्माण में अतिरिक्त अनुभव प्राप्त किया। रोहिणी उपग्रहों को भारत के पहले स्वदेशी प्रक्षेपण यान एसएलवी–3 द्वारा प्रक्षेपित किया गया था।

विकास के एक माध्यम के रूप में उपग्रह

1980 के दशक के आरंभिक दौर में, कृत्रिम पृथ्वी उपग्रहों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह–1बी (इनसैट–1बी) द्वारा भारत में टेलीविजन प्रसारण और दूरसंचार क्षेत्रों में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गयी। इनसैट–1 श्रृंखला का दूसरा उपग्रह था। अपने पूर्ववर्ती इनसैट–1ए की विफलता की वजह से भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक इसे लेकर बहुत ज्यादा चिंतित थे, लेकिन इनसैट–1 बी ने बहुत ही कम और अकल्पनीय समय में भारत में दूरसंचार, टेलीविजन प्रसारण और मौसम की भविष्यवाणी आदि क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन किया।

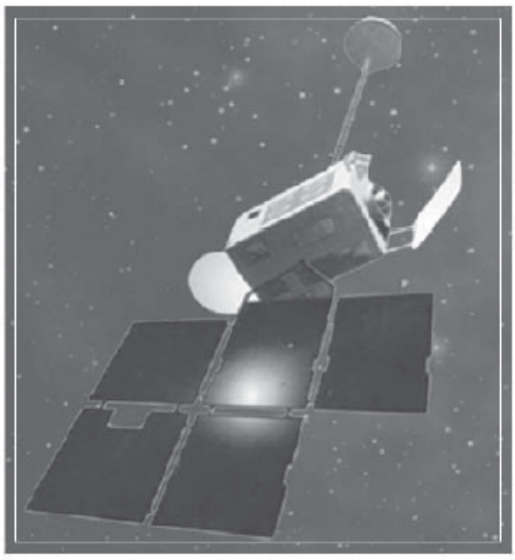

इनसैट–1बी

इनसैट–1बी द्वारा देश भर में टेलीफोन, टेलीग्राफ और फैक्स जैसी आवश्यक दूरसंचार सुविधाओं के विस्तार में तेजी लायी गयी। भारत की ग्रामीण आबादी तक आसानी से ऐसी सुविधाओं की पहुँच ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर जबरदस्त प्रभाव डाला था। इनसैट–1 बी के माध्यम से, पहाड़ों, दुर्गम और अलग–थलग समझे जाने वाले क्षेत्रों जैसे उत्तर और उत्तरपूर्वी भारत सहित अंडमान और लक्षद्वीप जैसे द्वीपीय प्रदेशों को तेजी से राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाया जा सका।

स्वदेश निर्मित इनसैटों की सेवाओं का विस्तार

स्वदेश में निर्मित इनसैट–2 उपग्रहों की सेवाएं आरंभिक उपग्रह इनसैट–1 की तुलना में डेढ़ गुनी एवं भार लगभग दोगुना था। इनसैट–1 की तरह यह भी दूरसंचार एवं टीवी प्रसारण के लिए ट्रांसपोंडर और मौसम

की निगरानी के लिए उपकरणों को ले गया। इसके अलावा, यह विशेष ट्रांसमीटरों द्वारा भेजे गए संवेदन संकट संकेतों एवं खतरे में फंसे हुए व्यक्तियों द्वारा प्रेषित संकेतों को भी ले गया था।

कुछ ही वर्षों में इनसैट–2 शृंखला के तीन और उपग्रहों को प्रक्षेपित किया गया। उनमें 'मोबाइल सेवा ट्रांसपोंडर' भी प्रक्षेपित किए गए थे जो उपग्रह और उपयोगकर्ताओं के बीच संचार की सुविधा प्रदान करते थे।

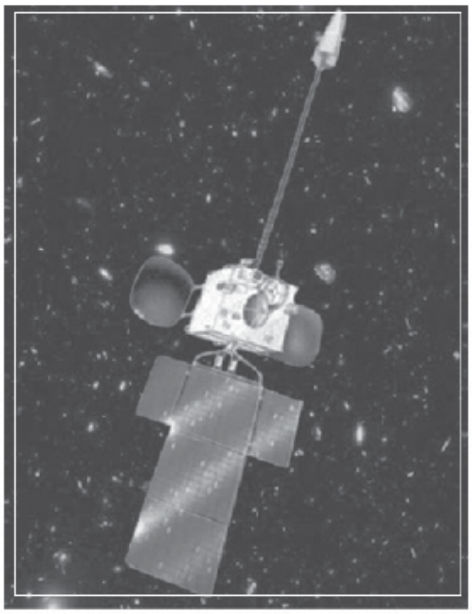

इनसैट–2ए

इन उपग्रहों के अलावा विशेष रूप से उल्लेखनीय उपग्रह जीसैट–3 या एडुसैट है, जो शैक्षिक क्षेत्र के लिए समर्पित उपग्रह है। इस उपग्रह ने इसरो के दूर शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आज, देश में एडुसैट नेटवर्क के माध्यम से 56,000 कक्षाएं चल रही हैं।

इनसैट एवं जीसैट उपग्रहों द्वारा प्रदान की जाने वाली अन्य सेवाओं में टेलीमेडिसिन सेवा प्रमुख है। इसरो के टेलीमेडिसिन कार्यक्रम के अंतर्गत उपग्रह के माध्यम से दृश्य–श्रृव्य सुविधाओं की मदद से ग्रामीण अस्पतालों के रोगियों को शहरी क्षेत्रों के सुपर स्पेशियलिटी अस्पतालों के चिकित्सकों द्वारा परामर्श संपन्न कराया जाता है।

एडुसैट

जीसैट उपग्रहों की शृंखला का एक और दिलचस्प पहलू जीसैट–8 और 10 हैं, जिन्हें क्रमशः 2011 और 2012 में प्रक्षेपित किया गया था, जिनमें 'गगन' नामक ट्रांसपोंडर था जो नेविगेशन संकेतों का प्रसारण करता है। अमेरिका के नेविगेशन उपग्रहों की जीपीएस शृंखला द्वारा प्रसारित नेविगेशन संकेतों को गगन कार्यक्रम द्वारा दक्ष एवं विश्वसनीय बनाने के साथ संकेतों की उपलब्धता को बढ़ाया गया। संचार उपग्रहों के अलावा, भारत ने बड़ी संख्या में दूसरे प्रकार के उपग्रहों का निर्माण भी किया। इनको सुदूर संवेदन उपग्रह कहा जाता है। वास्तव में, सुदूर संवेदी उपग्रहों के क्षेत्र में आज भारत दुनिया के शीर्ष देशों में शामिल है।

आकाश की आंखें

तो, ये दूरसंवेदी उपग्रहों क्या होते हैं? वो क्या करते हैं? वे समाज के लिए किस तरह उपयोगी होते हैं?

इन्हें समझने के लिए, सबसे पहले हम 'रिमोट सेंसिंग' यानी सुदूर संवेदन शब्द को समझना आरंभ करते हैं। जब हम रिमोट सेंसिंग कहते हैं, तो इसका मतलब है कि यह बिना किसी भौतिक संपर्क के एक वस्तु या एक घटना के बारे में जानकारी इकट्ठा करने का तरीका है। पृथ्वी से सैकड़ों किलोमीटर की ऊंचाई पर चक्कर लगा रहे उपग्रहों में बहुत ही उच्च संवेदनशील दूरसंवेदी कैमरे या रेडार लगे होते हैं। ऐसे उपग्रहों को दूरसेंवदी उपग्रह यानी रिमोट सेंसिंग उपग्रह के रूप में जाना जाता है। इनके द्वारा लिए गए चित्रों को रेडियो तरंगो के माध्यम से भूमिकेंद्रों तक पहुंचाते हैं। ऐसे चित्रों को जिनके विभिन्न रंगों को काली या सफेद में लिया जाता है, उनमें बहुत अधिक विवरण होता है। प्रशिक्षित वैज्ञानिक इन चित्रों को कम्प्यूटर के माध्यम से विश्लेषित और संसाधित कर उनसे बहुत सी बातों को समझने का प्रयास करते हैं। सुदूर संवेदन उपग्रहों से प्राप्त चित्रों के अन्य उपयोगों में भूजल उपलब्धता, चट्टानों के रंग के माध्यम से खनिज जमाव, पर्यावरण आंकलन, प्रदूषण स्तर एवं बंजर भूमि का विकास आदि शामिल है।

ज्ञान के लिए जिज्ञासा

संचार उपग्रह, मौसम उपग्रह और दूरसंवेदी उपग्रह ऐसे उपग्रह हैं जिन्होंने हमारे जीवन को आसान और सुरक्षित एवं दिलचस्प बनाया है। इसके अलावा, इसरो के वैज्ञानिकों द्वारा बनाए गए वैज्ञानिक उपग्रहों द्वारा मानव की ज्ञानपिपाषा को शांत करने सहित विशेष रूप से हमारे ब्रह्मांड को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

चंद्रयान–1 नामक उपग्रह ने और अधिक सटीक होने के साथ ही अंतरिक्ष यान की कुशलता से भारतीय वैज्ञानिकों के कौशल को वैश्विक ख्याति दिलाई। क्योंकि चंद्रयान–1 स्थायी रूप से पृथ्वी का गोल चक्कर लगाने के बजाय अन्य खगोलीय पिंड की ओर भी गया था, इसलिए इसे एक उपग्रह कहने की बजाय एक अंतरिक्ष यान कहना अधिक उपयुक्त होगा है।

कक्षा में परिक्रमा लगाते चंद्रयान–1 का काल्पनिक दृश्य

चंद्रयान–1 ने कम लागत में सार्थक विज्ञान गतिविधियों में भारत की क्षमता, एक सहकारी अंतरिक्ष उद्यम में नेतृत्व करने का सामर्थ्य और निर्धारित समय के भीतर आवश्यक प्रौद्योगिकी को विकसित करने की क्षमता सहित कई चीजों का प्रदर्शन किया। चंद्रयान–1 ने विश्व को भारत की ओर ध्यान देने का गौरव और भारत को सम्मान दिलाने के साथ ही देश के अंदर विद्यार्थी समुदाय को विज्ञान की ओर आकर्षित किया। चंद्रयान–1 न केवल भारतीय अंतरिक्ष

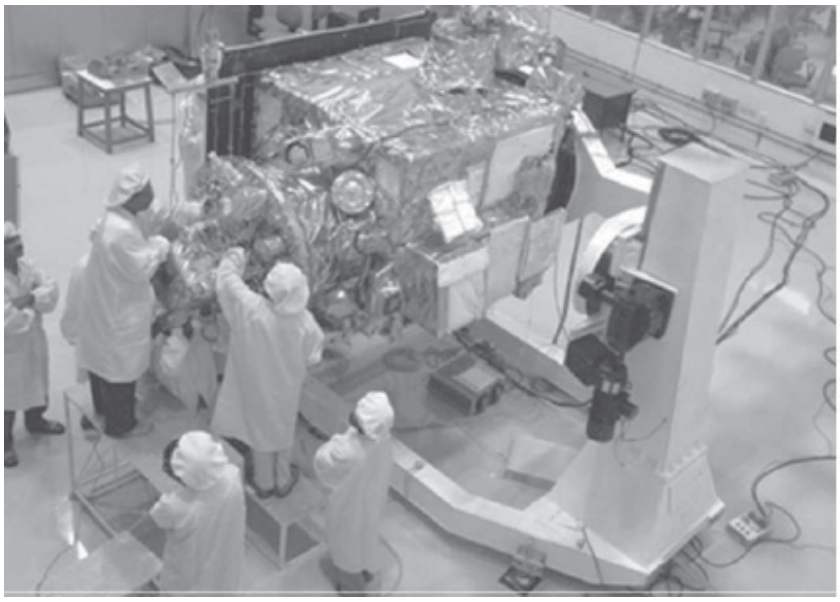

चंद्रयान–1 अंतरिक्ष यान परीक्षण चरणों से गुजरता हुआ

कार्यक्रम के इतिहास में मील का पत्थर बन गया बल्कि इसने भारत के ही इतिहास में भी एक प्रमुख स्थान हासिल किया।

चंद्रयान–1 के मुख्य उद्देश्यों में से एक है चंद्रमा के बारे में ज्ञान का विस्तार करना, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में आगे विकास करना विशेष रूप से उपग्रह या अंतरिक्ष यान के 'उपकरणों' का लघुरूपण करना और भारत के युवा वैज्ञानिकों की एक पीढ़ी को शोध कार्य के लिए चुनौतीपूर्ण अवसर उपलब्ध कराना था।

एक इसरो वैज्ञानिक चंद्रयान–1 के मून इम्पेक्ट प्रोब का निरीक्षण करते हुए

चंद्रयान–1 से संचार स्थापित करने वाला 32 मीटर एंटीना

चंद्रयान ने दूसरे खगोलीय पिंड पर पहुंचने की सफलता को साबित करने के अलावा, चंद्रयान–1 ने चित्रों सहित बहुत अधिक मात्रा में वैज्ञानिक आंकड़ों को एकत्र किया। चंद्रयान–1 ने चंद्रमा पर पानी के अणुओं का पता लगाया था। यह वास्तव में एक ऐतिहासिक खोज थी।

चंद्रयान–1 को चंद्रमा पर भेजने से पहले वैज्ञानिक चंद्रमा पर पानी की उपस्थिति को लेकर आश्वस्त नहीं थे। तो यह भारत का चंद्रयान–1 ही था जिसने चंद्रमा पर पानी को खोजा। इसके अलावा वैज्ञानिक चंद्रमा की विभिन्न सतहों की ऊंचाई और गहराई को समझने में भी समर्थ हो सके। चंद्रयान–1 अंतरिक्ष में भारत की सफलता का एक प्रतीक बन गया है।

अंतरिक्ष से वापिस लाना

इसरो की एक और उल्लेखनीय उपलब्धि अंतरिक्ष से किसी वस्तु को सुरक्षित रूप से वापस लाने से संबंधित है। इस संबंध में किए गए प्रयोग को स्पेस कैप्सूल रिकवरी एक्सपेरीमेंट–1 (एसआरई–1) कहा जाता था। 10 जनवरी, 2007 को पीएसएलवी के माध्यम से 550 किलो वजनी एसआरई–1 को प्रक्षेपित किया गया। इसने अगले 12 दिनों तक पृथ्वी सतह से 600 किलोमीटर की ऊंचाई पर परिक्रमा करते हुए दो प्रयोग किए। इस प्रकार, भारत को पहले ही प्रयास में अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किए गए उपकरणों को वापिस लाने में सफलता मिल गयी।

एक ही रॉकेट के माध्यम से 20 उपग्रहों का प्रक्षेपण मितव्ययी इंजीनियरिंग का एक उदाहरण

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने 22 जून 2016 को एक ही रॉकेट के माध्यम से 20 उपग्रहों को प्रक्षेपित करके एक मील का पत्थर स्थापित किया। इसने एक ही मिशन में 10 उपग्रहों को प्रक्षेपित

करने के अपने ही रिकॉर्ड को तोड़ दिया। रूसी रॉकेट द्वारा 2004 में एक ही मिशन में 37 उपग्रहों को प्रक्षेपित करने के रिकॉर्ड के बाद भारत का स्थान दूसरा है। इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मिशन के अंतर्गत, पीएसएलवी सी 34 रॉकेट ने प्राथमिक कार्टोसैट–2 शृंखला उपग्रह के अलावा भारतीय विश्वविद्यालयों (सत्याभामा विश्वविद्यालय, चेन्नई और कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पुणे) के दो उपग्रहों और गूगल कंपनी के लिए एक उपग्रह सहित 17 विदेशी उपग्रहों को प्रक्षेपित किया। 725.5 किलोग्राम के कार्टोसैट–2 शृंखला के उपग्रह का उपयोग पृथ्वी के अवलोकनों और कार्टोग्राफिक अनुप्रयोगों, शहरी और ग्रामीण अनुप्रयोगों, तटीय भूमि के उपयोग और विनियमन और सड़क नेटवर्किंग जैसे उपयोगिता प्रबंधन में उपयोगी होगा।

बंगाल की खाड़ी के ऊपर एसआरई–1 को वापिस लाया गया

वहां कक्षा में 35 भारतीय उपग्रह हैं और इनके अलावा विदेशी कंपनियों के साथ अनुबंध करार पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद 70 उपग्रहों को अगले पांच साल में प्रक्षेपित किए जाने की जरूरत है। इसलिए इसरो एक मिशन की तुलना में अधिक विभिन्न लांच मिशन के लिए जाना जाएगा।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम विदेशी राजस्व प्राप्त करने के महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। इसरो की वाणिज्यिक शाखा ने पिछले वित्तीय वर्ष के दौरान लगभग 1800 करोड़ रुपये का राजस्व अर्जित किया है, और इस राजस्व का एक बड़ा हिस्सा ट्रांसपोंडरों को पट्टे पर देकर प्राप्त किया गया था। 2016–17 के दौरान श्रीहरिकोटा से विभिन्न उपग्रहों का प्रक्षेपण किया जाएगा।

अन्य देशों की तुलना में काफी कम बजट होने के कारण भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम विदेशी कंपनियों को अपनी ओर आकर्षित करता है। न्यूनतम बजट से अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले इंजीनियरिंग कार्यक्रम को मितव्ययी इंजीनियरिंग कहा जाता है। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम मितव्ययी इंजीनियरिंग का सबसे अच्छा उदाहरण है।

चंद्रयान मिशन की सफलता के बाद मंगल मिशन या मंगलयान के माध्यम से मंगल ग्रह की खोज संबंधी प्रयास आरंभ किए गए। भारत पहले ही प्रयास में मंगल ग्रह की कक्षा में पहुंचने वाला पहला देश बना। मंगलयान की सफलता से भारत को अंतग्रहीय अभियानों में महारत हासिल राष्ट्रों की श्रेणी में रखा गया है।

एयर ब्रिथर प्रणोदन प्रणाली और स्क्रेमजेट रॉकेट इंजन के सफल परीक्षणों ने भारत को दुनिया के अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी दिग्गजों के बीच स्थान दिलाया है। विदेशी उपग्रह प्रक्षेपण संबंधी एंट्रिक्स कॉरपोरेशन के साथ हुए समझौतों के बाद, भविष्य में सरकारी अंतरिक्ष एजेंसी के रूप में इसरो की विकास यात्रा दिनोंदिन बढ़ती जाएगी।

***

17 गुरुत्वीय तरंगों की खोज – भारतीय योगदान

गुरुत्वीय तरंगों की खोज बीसवीं और इक्कीसवीं सदी की एक असधारण खोज है। हालांकि 100 वर्षों पहले अल्बर्ट आइंस्टीन द्वारा सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत के आधार पर गुरुत्वीय तरंगों के अस्तित्व की अवधारणा को अनुमान लगाया था। यह भी रोचक तथ्य है कि स्वयं आइंस्टीन को इस बात पर विश्वास नहीं था कि गुरुत्वीय तरंगों को प्रयोगशाला में खोजा जा सकता है। लेकिन उनका ऐसा मानना क्यों था ? क्योंकि गुरुत्वीय तरंगों का आयाम अत्यधिक छोटा (10^{-21} मीटर) था और इस अत्यधिक छोटे यानी एक प्रोटॉन के व्यास के दस लाखवें हिस्से में होने वाले विस्थापन के मापन संबंधी प्रयोग करना संभव नहीं था।

इस सिद्धांत की सुंदरता के आधार पर प्रयोगवादियों ने छोटे से विस्थापन का पता लगाने के लिए उचित प्रयोगों को डिजाइन किया। पिछले 25 वर्षों से 25 से अधिक देशों से लगभग 1000 वैज्ञानिकों ने सक्रिय रूप से इस प्रयोग में कार्य किया। इस प्रयोग में भारत के विभिन्न शैक्षणिक और अनुसंधान संस्थानों के 37 भारतीय वैज्ञानिक भी शामिल हैं। 14 सितंबर, 2015 को वैज्ञानिकों ने 1.3 अरब साल पहले के गुरुत्वीय तरंगों का पता लगाने में समर्थ हो गए। वो अमेरिका में स्थित दो लेजर इंटरफेरोमीटर गुरुत्वाकर्षण वेधशालाओं (लाइगो) की सुविधाओं का उपयोग कर गुरुत्वीय तरंगों का अवलोकन करने में समर्थ हुए। उन्होंने सामान्य सापेक्षता के सिद्धांत का प्रयोग करके आइंस्टीन ने जिन तरंग पैटर्न की अवधारणा को प्रस्तुत किया था उनको प्रयोग द्वारा प्राप्त कर लिया गया।

आइंस्टीन ने दर्शाया था कि किसी विशाल पिंडों के आसपास स्थित अंतरिक्ष–समय वक्र होता है। और इस वस्तु के आसपास के क्षेत्र में किसी भी कण को एक सीधी रेखा के बजाय एक घुमावदार मार्ग पर खोजा जा सकता है। कण द्वारा लिए गए वक्र पथ को किसी विशाल पिंड के बल से प्रभावित होने पर दर्शाया जा सकता है। इनके द्वारा गुरुत्वीय क्षेत्र को उत्पादन होता है। एक विशाल पिंड के आसपास की वक्रता पिंड के द्रव्यमान पर निर्भर करेगी। ब्रह्मांड में किसी भी महत्वपूर्ण घटना द्वारा गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे गुरुत्वीय तरंगें प्रसारित होती हैं लाइगो नामक इस वैश्विक प्रयोग में त्रिवेंद्रम और कलकत्ता स्थित आईसर, आईआईटी अहमदाबाद, टीआईएफआर, गणितीय विज्ञान संस्थान, चेन्नई, आयुका, पुणे, रमन अनुसंधान संस्थान, बेंगलौर और भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलूर आदि संस्थानों से 37 भारतीय वैज्ञानिक अपना योगदान दे रहे हैं।

यह मशीन जिसने वैज्ञानिकों को पहली बार गुरुत्वाकर्षण तरंगों की झलक दी वह सबसे उन्नत डिटेक्टरों में से है जो ब्रह्मांड में होने वाले अत्यंत छोटे कंपन के प्रति भी संवेदनशील है। अमेरिका स्थित इन दो भूमिगत डिटेक्टरों को लेजर इंटरफेरोमीटर गुरुत्वाकर्षण वेधशाला या संक्षिप्त नाम लाइगो से जाना

जाता है। वर्तमान में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के संयुक्त भारतीय अमेरिकी कार्यक्रम के तहत अमेरिका ने भारत को लगभग 14 करोड़ डॉलर की अनुमानित लागत के उपकरण प्रदान किए हैं। भारतीय लाइगो उपकरणों का नेतृत्व टीआईएफआर से प्रोफेसर सी एस उन्नीकृष्णन कर रहे हैं। प्रोफेसर उन्नीकृष्णन उन 137 लेखकों में से हैं जिन्होंने फरवरी 2016 में फिजिकल रिव्यू लेटर्स में शोध पत्र प्रकाशित किया है। यह आशा की जाती है कि भारतीय लाइगो कुछ वर्षों के दौरान कार्य करने लगेगा।

गुरुत्वीय तरंगों ने खगोल विज्ञान के लिए एक नयी राह खोल दी है। इस वेधशाला को इंडिगो और लाइगो द्वारा संयुक्त रूप से संचालित किया जाएगा और संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित लाइगो डिटेक्टरों और इटली स्थित विर्गो के साथ एक समान नेटवर्क को स्थापित किया जाएगा। डिटेक्टर का डिजाइन संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित लाइगो डिटेक्टरों के समान ही होगा।

***

18 संगमग्राम माधवन की खोजें

प्रस्तावना

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान में गणित जिस स्तर तक पहुंचा है उसमें सैंकड़ों सालों से भारतीय गणितज्ञों का योगदान है। इन गणितज्ञों में प्राचीन कालीन (आपस्तम्भ, पाथम्बा, बौधायन, कात्यायन, मानव, पाणिनी, पिंगला और याज्ञवल्क्य), शास्त्रीय (वररुचि, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त), मध्यकालीन (नारायण पंडित, भास्कराचार्य, संगमग्राम माधवन, निलकण्ठ सोमायाजि, ज्येस्ठदेव, अच्युता पिशराटि, मेलपथुर नारायण भात्ताथिरी, शंकररावरकन) और आधुनिक समय (श्रीनिवास रामानुजन, हरीश चंद्र, नरेंद्र कर्मकार, एस चंद्रशेखर, एसएन बोस) के गणितज्ञ शामिल हैं। भारतीयों द्वारा विकसित सुंदर संख्या पद्धति (जीरो और दशमलव पद्धति) को आधार बनाकर लाप्लास द्वारा गणितीय विकास किया गया जिसे उन्होंने भारत में विकसित ऐसी स्वदेशी विधि का नाम दिया जिसके दस संकेतों के समुच्चयों का उपयोग करके संभावित संख्या को व्यक्त किया जा सकता है। आज यह विचार इतना आसान लगता है कि इसके महत्व और प्रतिष्ठा को अधिक समय तक सराहा नहीं गया।

इसकी सरलता ने गणना की आधारशिला रखी और अंकगणित को उपयोगी आविष्कार के स्थान पर स्थापित किया। इस आविष्कार को उस समय ओर अधिक महत्व दिया गया जब माना गया कि यह पद्धति प्राचीन काल के दो महान आर्कमिडीज और अपोलोनियस से भी पहले की है। आइंस्टीन ने कहा था कि हमें भारतीयों का आभारी होना चाहिए जिन्होंने हमें गिनना सिखाया।

जब विश्व के बाकी देश ज्ञान से विहीन थे उस समय भारत में गणित विकसित हो रहा था। भारत में गणित का इतिहास लगभग 3000 साल पहले से आरंभ होता है जो शल्वसुत्र (800–600 ईसा पूर्व), आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, संगमसंग्राम माधव, नीलण्ठ सोमायाजी, ज्येस्ठदेव, शंकररावरकन से लेकर श्रीनिवास रामानुजन, एस एन बोस, हरिश चंद्रा, प्रशांत चंद्र महालानोबीस सहित आधुनिक समय में नरेंद्र कर्मकार, जयन्त विष्णु नारलीकर, और एस. आर. श्रीनिवासा वर्धन, ई सी जी सुदर्शन और थानु पद्मनाभन जैसे प्रमुख गणितज्ञों तक विस्तारित है।

संगमग्राम माधवन की खोज

मध्यकाल के गणितज्ञों में संगमसंग्राम माधवन का नाम प्रमुख स्थान पर है, जो गुरु–शिष्य परंपरा से जुड़ें थे। उनकी यह परंपरा 14वीं से 18वीं सदी तक चली जिसे केरल स्कूल ऑफ मैथेमेटिक्स के नाम से जाना जाता है। संगमसंग्राम माधवन और उनके स्कूल को पश्चिमी सभ्यता ने, श्री चार्ल्स विश द्वारा सन् 1834 में ट्रांससेक्शन ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड नामक जर्नल में प्रकाशित शोध पत्रों के शृंखला के कारण जाना। केरल स्कूल के एक सदस्य ज्येष्ठदेव के कार्य विशेष तौर पर उल्लेखनीय है जहां अन्य विद्वान अपने कार्यों को संस्कृत में लिख रहे थे, ज्येष्ठदेव ने गणित और खगोलविज्ञान की अपनी पुस्तक युक्तिभाषा या गणितन्यायसंग्रह को मलयालम में लिखा जिससे उनका कार्य अधिक लोगों तक पहुंच सका।

संगमग्राम माधवन का जन्म स्थान एवं समय

संगमग्राम माधवन का जन्म स्थान के बारे में एकमात्र ज्ञात उनकी पुस्तक वेण्वारोह (या वेनवारोहम) के तेहरवें श्लोक से पता चलता है, जो इस प्रकार हैः

Bekuladhishtitatwena viharoyo visishyate
Grihanamanisoyam syannigenamanimadhava.

उन्हें माधव के नाम से जाना जाता था उनका घर इरन्नलक्कुता कस्बे में था। उनका जन्म नाम इन्निनावाल्ली या इन्निननावाली माधवन नम्बूदिरी था। बाकुलम स्थानीय स्तर पर 'इरान्नी' के नाम से जाना जाता है। उनके घर का नाम इरिन्नाराप्पिली या इरिन्नरावल्ली था। उनका घर बेकुलविशिष्ठ विहार या मलयालम में इरनंजी (बेकुलम) निना पिलाई कहलाता था। इरिन्नाराप्पिली उनकी किसी समय इरिन्नारातिकुटल के नाम से जाना जाता था। उनके गांव का नाम संग्राम ग्राम था। उनके शिष्यों के लेखन कार्यों से उनके जीवन का समय 1350 से 1425 ईस्वी माना जाता है जो न्यूटन, ग्रेगौरी और लाइबनिट्ज के जन्म से लगभग 300 साल पहले का समय है।

संगमग्राम माधव का प्रमुख योगदान

हम जानते हैं कि शून्य और दशमलव संख्या प्रणाली की संकल्पना भारतीय गणितज्ञों का एक प्रमुख योगदान है। हम किसी एक व्यक्ति को शून्य का आविष्कारक नहीं बता सकते। यह संकल्पना वैदिक काल के दौरान भी थी। गणित की दुनिया में एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान अनन्त की संकल्पना है जिसका श्रेय संगमग्राम माधव को दिया जाना चाहिए। वह यह दर्शाने में समर्थ थे कि किसी सीमित पद या अनंन्त

पद का योग करके प्राप्त सीमित मान को अनन्त की श्रेणी में दर्शाया जा सकता है। यह रोचक बात ध्यान देने योग्य है कि शून्य और अनन्त का योगदान पूर्णतया भारतीय है जिसने भारतीय दर्शनशास्त्र को व्यापक स्तर तक प्रभावित किया। वहां भारतीय दार्शनिकों के मन में अनन्त की मौलिक संकल्पना हो सकती है। यही कारण था कि हमें ईशावास्य उपनिषद में यह श्लोक मिलता हैः

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

जिसका अर्थ है वह अन्त है, यह अनन्त है, जब अनन्त में अनन्त का योग किया जाता है तब अनन्त ही बचता है और जब अनन्त से अनन्त घटाया जाता है तब भी अनन्त ही शेष बचता है। यही बात शून्य के लिए भी सही है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भूतसांख्य संख्याओं के निरूपण में भारतीय शून्य संख्या के साथ अंतरिक्ष तक अनन्त घात को प्रदर्शित किया है। त्रिकोणमीतीय में ज्या और कोज्या के लिए अनंत शृंखला की खोज संबंधी कार्य में संगमग्राम माधव ने अग्रणी भूमिका निभाई थी।

माधव ने अनंत शृंखला सूत्र का उपयोग करके पाई के मान का निरीक्षण करके उसे दशमलव के 11 स्थानों तक सहीं किया जो 3.14159265359 था। हालिया अध्ययन से दर्शाया गया है कि न्यूटन और लाइबनिट्ज के काफी समय पहले गणित की एक प्रमुख शाखा कलन का विकास केरल स्कूल में हुआ था। ज्येष्ठदेव की युक्तिभाष्य पुस्तक न्यूटन और लाइबनिट्ज से सैंकड़ों साल पहले लिखी गयी थी उसमें हमें समाकलन और अवलकन के सूत्र मिलते हैं। यह कहा जा सकता है कि युक्तिभाष्य विश्व की पहली पुस्तक थी जिसमें कलन के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी थी।

संगमग्राम माधव का एक ओर महत्वपूर्ण योगदान ज्या के कोण की उनकी एक सारणी थी जो शून्य से लेकर 90 डिग्री तक 3.75 के अंतराल पर थी। संगमग्राम माधव गोलाकार ज्यामिति में भी विशेषज्ञ था इसीलिए उन्हें आमतौर पर 'गोलविद' (गोलाकार ज्यामिति में विशेषज्ञ) कहा जाता था।

***

19 जुलाई 2016 के बाद की नई उपलब्धियां

1. कार्टोसैट 2 और 103 अन्य उपग्रहों के सफल पीएसएलवी लांच के साथ एक इसरो ने अंतरिक्ष रिक,र्ड बनाया

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने भारत को गर्वान्वित किया जब उसने एक रॉकेट में 104 उपग्रहों को लॉन्च करके विश्व रिकॉर्ड बनाया। उपग्रह आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा से लॉन्च किए गए, और इसने भारत को इतनी विशाल संख्या में उपग्रहों को एक साथ लॉन्च करने वाला पहला देश बना दिया है।

भारत, अगर अपनी पिछली उपलब्धियों को छोड़ दे, तो वह रूस से काफी आगे निकल गया है। रूस ने सबसे पहले 37 उपग्रह लॉन्च करने का विश्व रिकॉर्ड बनाया था। रूस ने 2014 में अपनी उस उपलब्धि को हासिल किया था। इस रिकॉर्ड के बाद अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने एक मिशन में 29 उपग्रहों का शुभारंभ किया था। इसरो ने जून 2008 को पीएसएलवी सी 10 द्वारा पृथ्वी की कक्षा में 10 उपग्रहों को प्रवेश कराया था, तो यह उस समय का यह विश्व रिकॉर्ड था। लेकिन बाद में इसे रूसी और अमेरिकी रॉकेट द्वारा कई बार तोड़ दिया गया।

इसरो ने मंगलवार को लॉन्चिंग के लिए 28 घंटे की उलटी गिनती शुरू कर दी थी, जो कि किसी भी ध्रुवीय उपग्रह को लॉन्च करने के लिए सबसे समय अवधि थी। पीएसएलवी 37 इसरो का मुख्य उपग्रह

है और इसके 39वें मिशन पर, 104 उपग्रहों को ले जाया गया। यह भारत का एकल मिशन लॉन्च का दूसरा प्रयास है और पहली बार उसने एक बार में 23 उपग्रह लॉन्च किए थे। यह मिशन जून 2016 में लॉन्च किया गया था। भारत का सबसे शक्तिशाली रॉकेट XLVARIAN , जिसे महत्वपूर्ण चंद्रयान उपग्रह में इस्तेमाल किया गया था और मार्स आर्बिटर मिशन (MOM) के दौरान इस लॉन्च में भी इसरो के द्वारा इसका इस्तेमाल किया गया था। इस लॉन्च में, 100 उपग्रह विदेशी हैं, जिनमें से कुछ अमेरिका से भी हैं और शेष 3 भारत से संबंधित हैं, जो स्वयं ही एक बड़ी उपलब्धि है। इससे पहले, इसरो ने जनवरी के अंत तक 83 उपग्रहों को लॉन्च करने की योजना बनाई थी। लेकिन बाद में 20 और जोड़े गए। प्रधान मंत्री मोदी द्वारा संरक्षित दक्षिण एशियाई उपग्रह परियोजना मार्च 2017 में लॉन्च हुई और यह जी सैट 9 का हिस्सा था, जिसे मार्च 2017 में लॉन्च किया गया। इस बीच, मोदी जी ने पीएसएलवी सी 37 और कार्टोसेट (CARTOSAT) उपग्रह के सफल प्रक्षेपण के लिए 103 नैनोसेटेलाइट के साथ अंतरिक्ष संगठन को बधाई दी।

यह इसरो का 2017 में पहला अंतरिक्ष मिशन था और अब तक का सबसे जटिल मिशन भी। प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी और राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने इस ऐतिहासिक घटना के लिए अंतरिक्ष एजेंसी को बधाई दी थी जो भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम को काफी हद तक बढ़ावा देता है। पीएसएलवी सी 37/कार्टोसेट 2 श्रृंखला उपग्रह मिशन में प्राथमिक उपग्रह (कार्टोसेट 2) और 101 अंतर्राष्ट्रीय नैनो उपग्रह शामिल थे। इसने अपने दो नैनो उपग्रहों को लॉन्च किया, प्छै 1। और INS1 BAपीएसएलवी ने पहली बार ध्रुवीय सूर्य की समकालीन कक्षाओं तक पहुंचने के लिए प्छै 1 । और INS–1 Bके बाद, पृथ्वी का अवलोकन करके 714

किलो कार्टोसेट 2 श्रृंखला का एक उपग्रह लॉन्च किया। इसके बाद 664 किलोग्राम वजन वाले 103 सहयात्री उपग्रहों को इंजेक्ट करने के लिए भेजा गया।

2- उत्तर पूर्व में आपदाओं का मानचित्रण करने में इसरो ड्रोन मदद करते हैं

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) उपग्रहों में उत्तर पूर्वी राज्यों में आपदाओं का मानचित्रण करके और रिमोट सेंसिंग डेटा से जोड़कर ड्रोन का उपयोग कर रहा है। इस संबंध में, इसरो के शिलांग आधारित उत्तर पूर्वी अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र (एनआई एसएसी) ने विभिन्न समस्याओं और आपदाओं को मापने के लिए मानवरहित हवाई वाहन (यूएवी) का परीक्षण किया है।

मुख्य तथ्य यह है कि एनआई एसएसी ने यूएवी के डिजाइन और संयोजन के लिए पहल की है, पूर्वोत्तर क्षेत्र में कई क्षेत्रीय समस्याओं का आकलन करने के लिए विभिन्न अनुप्रयोग भी किया गया है। यूएवी आपदा प्रवण या भौतिक रूप से पहुंचने योग्य क्षेत्रों के लिए कुशल सर्वेक्षण कर सकते हैं। यह बाढ़, भूस्खलन और भूकंप के त्वरित नुकसान का मूल्यांकन कर सकता है और समय पर राहत उपायों को सक्षम बना सकता है। ये ड्रोन स्थल आधारित विवरण प्रदान करते हैं जो आम तौर पर इसरो के रिमोट सेंसिंग उपग्रहों के डेटा के साथ जुड़े होते हैं।

हाल ही में उनका उपयोग एनएच 40 मेघालय की जीवन रेखा के साथ भूस्खलन से प्रभावित क्षेत्र को मापने के लिए किया गया था। इसने असम के नारमारी गांव में कीट से प्रभावित धान के खेतों में होने वाली क्षति का आंकलन भी किया।

उत्तर पूर्वी अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र (एनआई एसएसी)

एनआई एसएसी, अंतरिक्ष विभाग (डीओएस) और उत्तर पूर्वी परिषद की संयुक्त पहल है। इसे वर्ष 2000 में शुरू किया गया था। यह उमियाम (शिलांग के नजदीक), मेघालय में स्थित है। इसका उद्देश्य अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी आधारित संचार और प्रौद्योगिकी का उपयोग कर उत्तर पूर्वी क्षेत्र में विकास सहायता प्रदान करना है। इसका जनादेश उच्च प्रौद्योगिकी आधारभूत संरचना का समर्थन करना है और उत्तर पूर्वी राज्यों को उनके विकास के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी को अपनाने में सक्षम बनाता है। एनआई एसएसी रिमोट सेंसिंग, उपग्रह संचार, जीआईएस का उपयोग करके विशिष्ट अनुप्रयोग परियोजनाओं का उपक्रम करके विकास सहायता प्रदान करता है और अंतरिक्ष विज्ञान अनुसंधान आयोजित करता है।

3. आईआईएस-सी के शोधकर्ताओं ने किफायती और संवेदनशील सीओ सेंसर विकसित किए

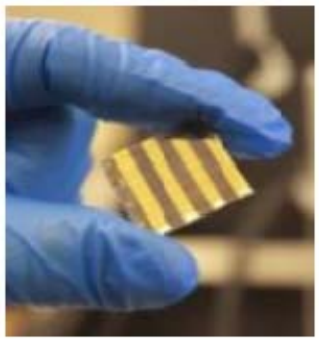

भारतीय विज्ञान संस्थान (आईआईएस–सी) बेंगलुरू के शोधकर्ताओं द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण निगरानी में संभावित अनुप्रयोगों के साथ एक अत्यधिक संवेदनशील और कम लागत वाले नैनोमीटर पैमाने पर कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) सेंसर विकसित किया है। सेंसर कोफैब्रिकेशन तकनीक नामक इस अनोखी पहल को विकसित किया गया, जिसमें महंगा और समय लेने वाली लिथोग्राफी तकनीक शामिल नहीं है।

कार्बन मोनोअ,क्साइड (CO)

कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) सीओ एक रंगहीन, गंधरहित गैस है। ज्यादा सांस लेने पर यह हानिकारक है, COका सबसे बड़ी स्रोत उपलब्धि है, जुलाई 2016 के बाद 188 कारों, ट्रकों और जीवाश्म ईंधन को जलाने वाली अन्य वाहनों या मशीनरी के आन्तरिक दहन (आईसी) इंजनों में भारतीय योगदान के रूप में है। COकी उच्च सांद्रता में सांस लेने से ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जिससे रक्त प्रवाह को हृदय और मस्तिष्क जैसे महत्वपूर्ण अंगों में ले जाया जा सकता है।

मुख्य तथ्य

नैनोमीटर आकार का सेंसर एक सिलिकॉन वेफर सब्सट्रेट पर जिंक–ऑक्साइड (दव) नैनोस्ट्रक्चर का उपयोग करके बनाया गया था। छोटे पॉलीस्टीरिन मोती भी वेफर पर उपयोग किए जाते थे। इन मोतियों को पहले ऑक्सीकरण सिलिकॉन वेफर पर रखा गया था जिसे हेक्सागोनल क्लोज पैक संरचना कहा गया। इसमें वेफर और मोती के बीच वैक्यूम का उचित स्तर बनाए रखा जाता है। उच्च वोल्टेज पर यह मोती की सतहों को दूर करता है जब तक कि मोती के बीच वांछित मोटाई का अंतर कम न हो जाए। फिर ZnOसिस्टम पर इसे जमा किया जाता है। यह मोतियों के बीच की जगहों पर स्थान आच्छादित करता है, जो नैनो–जाल जैसे शहद का निर्माण करता है और नैनोसेंसर के रूप में कार्य कर सकता है।

महत्व

नैनोमीटर पैमाने वाले COसेंसर, COस्तर पर 500 बिल प्रति अरब (PPB) के रूप में कम अंतर का पता लगाने में सक्षम है। अन्य गैसों की उपस्थिति में भी COका चयन किया जा सकता है। यह नैनोस्ट्रक्चर गैस सेंसर बनाने में शामिल समय और लागत में भी काफी कटौती करता है।

4. आईआईएस-सी के वैज्ञानिकों ने ई. कोलाई जीवाणु का पता लगाने के लिए सेंसर विकसित किया

भारतीय विज्ञान संस्थान (आईआईएस–सी) में वैज्ञानिकों के एक समूह ने खाद्य और पेयजल में हानिकारक ई. कोलाई जीवाणु की उपस्थिति का पता लगाने के लिए एक सेंसर को सफलतापूर्वक विकसित किया है।

सेंसर को एक प्रकाश संवेदनशील ऑप्टिकल फाइबर का उपयोग करके डिजाइन किया गया है और इसे 'बेयर फाइबर ब्रैग ग्रेटिंग (बीएफबीजी) सेंसर कहा जाता है, जिसे ई. कोलाई जीवाणु के लिए विशिष्ट एंटीबॉडी के साथ लेपित किया जाता है।

तरंगदैर्ध्य के बैंड को शामिल करने वाली रोशनी का एक किरण पुंज ठथ्ठळ सेंसर के माध्यम से पारित किया जाता है, जो प्रकाश की एक विशेष तरंग दैर्ध्य को दर्शाता है। जब एक नमूने के संपर्क में आने पर ई. कोलाई जीवाणु की कोशिकाएं मौजूद होती हैं, तो ये कोशिकाएं विशेष रूप से सेंसर से बँध जाती हैं।

5. म,नसून पूर्वानुमान करने के लिए म,डल

आईआईएस–सी के वैज्ञानिकों ने उपग्रह छवियों का उपयोग करके वास्तविक समय में स्थानीयकृत भूमि क्षेत्रों में वर्षा का पता लगाने के लिए एक नए मॉडल का भी प्रस्ताव दिया है।

सिविल इंजीनियरिंग विभाग आईआईएस–सी के डॉ. जे. इंदु और प्रोफेसर डी. नागेश कुमार ने सैटेलाइट माइक्रोवेव सेंसर डेटा से मॉडल विकसित किया है। उनका शोध कार्य हाल ही में हाइड्रोलॉजिकल साइंसेज जर्नल में प्रकाशित किया गया था।

टीम ने महानदी बेसिन क्षेत्र में अपना शोध किया जो बड़े पैमाने पर बाढ़ के लिए उन्मुख है। शोधकर्ताओं के मुताबिक, इस तरह के विविध क्षेत्र में अवलोकनों का उपयोग वर्षा का पता लगाने के लिए आधुनिक अंकगणित में सुधार के लिए किया जा सकता है।

6. विरोधी विकिरण मिसाइल जल्द ही उड़ान परीक्षणों का अवलोकन करेंगे

इस साल अप्रैल–मई के लिए एक उन्नत, अत्याधुनिक एंटी–रेडिएशन मिसाइल (एआरएम) की कैप्टिव उड़ान परीक्षण की योजना बनाई गई, जिसका रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (डीआरडीओ) के मिसाइल प्रौद्योगिकीविदों द्वारा साल के अंत तक पहला उड़ान परीक्षण था।

रक्षा अनुसंधान और विकास प्रयोगशाला द्वारा विकसित की जाने वाली यह वायु–से–सतह सामरिक मिसाइल राडार और संचार सुविधाओं का उपयोग करके दुश्मन की वायु रक्षा क्षमताओं पर नजर रखेगी। इस मिसाइल की सीमा 100 से 125 किमी है और इसे लड़ाकू विमान सुखोई (सु –30) और तेजस–लाइट कॉम्बैट एयरक्राफ्ट पर रखा जाएगा। मिसाइल उन्हें नष्ट करने के लक्ष्य पर राडार और संचार सुविधाओं और घरों के विकिरण या संकेतों को प्राप्त करती है।

डीआरडीओ स्रोतों के मुताबिक, वैज्ञानिक, इस उड़ान परीक्षण के दौरान नेविगेशन नियंत्रण प्रणाली, संरचनात्मक क्षमता और वायुगतिकीय कंपन के प्रदर्शन का मूल्यांकन करेंगे। इसके बाद स्थलीय परीक्षण और मिसाइल को साल के अंत तक वास्तविक उड़ान परीक्षण SU-30 से किया जाएगा। जोर से धक्का देने के बजाय, मिसाइल LR-SAM के मामले में दोहरी स्पन्द संचालन प्रणाली का उपयोग करती है। दोहरी स्पन्द संचालन आवरण के साथ–साथ मिसाइल की कार्य क्षमता को बड़ा कर देगा। सूत्रों ने बताया कि पहली स्पन्द का उपयोग करके आवश्यक अवधि के लिए मिसाइल को आवश्यक अवधि के लिए मिसाइल पर तट डालने के बाद, दूसरे स्पंदन के अंतराल से पहले या टर्मिनल चरण के दौरान शुरू किया जाएगा।

पूरी मिसाइल स्वदेशी रूप में विकसित की जा रही है, जिसमें साधक भी शामिल है। मिसाइल को कई विकास परीक्षणों के संचालन के बाद लगभग दो वर्षों में शामिल किया जाएगा। सूत्रों ने बताया कि अमेरिका और जर्मनी समेत कुछ देशों में ।त्ड हैं। दोहरी स्पन्द संचालन प्रणाली को अन्य हवा से सतह और हवा से हवा तक मिसाइलों के साथ जोड़ा जा सकता है।

इस बीच, भारत और इजराइल द्वारा संयुक्त रूप से विकसित LR-SAM (लम्बी दूरी सतह से हवा मिसाइल) इस वर्ष सितंबर–अक्टूबर से शुरू होगी। पिछले साल एक हवाई लक्ष्य को रोकने के लिए आईएनएस कोलकाता से सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया था और इस साल के अंत में इसी तरह के परीक्षणों के लिए युद्धपोत, आईएनएस कोच्चि और आईएनएस चेन्नई से मिसाइल लॉन्च की जाएगी।

7. नए अध्ययन के अनुसार विज्ञान का ज्योतिष के साथ जुड़ाव हैः भूकंप का कारण ग्रह होते हैं

भूकंप की भविष्यवाणी हमेशा एक संशयात्मक विज्ञान रही है, लेकिन भारतीय विशेषज्ञों के एक समूह का दावा है कि उन्हें इस संबंध में एक संभावित समाधान मिल गया है। वे 2016 के लिए ''भूकंप–संवेदनशील'' दिनों की एक सूची के साथ आए हैं और यह भी दावा करते हैं कि जनवरी के लिए उनकी अनुमानित भूकंप की तारीखें मान्य हैं। रांची के मेसरा में बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के जग्नाथन चक्लिंगम और उनके दो सह–लेखकों ने एक अध्ययन में पाया कि पृथ्वी पर कक्षीय असंगति पैदा करने वाले ग्रहों की कॉन्फिगरेशन के बहुत स्पष्ट सबूत हैं, जो अंततः भूकंप उत्पन्न करते हैं। ज्योतिष से प्रेरित, चक्लिंगम और उनकी टीम यह जांचना चाहती थी कि भूकंप और ग्रहों के बीच कोई संभावित संबंध है या नहीं। 2004 के सुनामी के बाद उन्होंने अपने अवलोकनों को गंभीरता से शुरू किया, जिसमें ग्रह, विन्यास और प्रमुख भूकंप को समझने के लिए भारत, इंडोनेशिया और श्रीलंका में हजारों लोगों की मौत हो गई। अध्ययन में कहा गया है कि बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेप्च्यून जैसे बड़े ग्रहों के बीच गुरुत्वाकर्षण बातचीत अदृश्य परिणामस्वरूप गुरुत्वाकर्षण वैक्टर (आईआरजीवी) बनाती है जो एक आंतरिक ग्रह को पार करते समय एक अव्यवस्थित ग्रह ग्रह के रूप में कार्य करता है। ''जब भी हमारी धरती इन आईआरजीवी को पार करती है, वहां हमेशा बड़े भूकंप आते थे। रिमोट सेंसिंग, जीआईएस और भूगोल में अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ एडवांस के नवीनतम अंक में प्रकाशित अध्ययन में कहा गया है कि अन्य आंतरिक ग्रहों के पारगमन ने भी इसी तरह के परिणाम दिखाए हैं।

अध्ययन में कहा गया है कि शोधकर्ताओं ने लगातार एक विशेष ग्रह विन्यास और भूकंप के बीच एक लिंक की पहचान की, उन्होंने कहा कि भूकंप में उनके योगदान के लिए भी सरल दो ग्रहों के संरेखण की जांच की गई। कुल मिलाकर, प्रत्येक संभावित कॉन्फिगरेशन की स्पष्टीकरण क्षमताओं को गंभीर रूप से अवलोकन किया गया था और हम उम्मीद करते हैं कि मौजूदा अध्ययन भूकंप, गुरुत्वाकर्षण विसंगतियों और उनकी भविष्यवाणी के क्षेत्र में एक नया आयाम देगा। चक्लिंगम के अनुसार, उनके अध्ययन ने 2016 के लिए संवेदनशील दिनों की भविष्यवाणी की और शोधकर्ता वास्तविक अवधारणाओं के आधार पर हमारी अवधारणाओं और परिणामों को मान्य कर सकते हैं। लेखकों ने सौर मंडल को एक गुरुत्वाकर्षण झील के रूप में देखा, जिसमें बहुत अधिक गुरुत्वाकर्षण तरंगें (महासागर की तरह बड़ा) है और यह समुद्र में यात्रा करने वाले जहाज की तरह सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा के दौरान प्रत्येक ग्रह इन तरंगों में यात्रा करता है। उनकी धारणा के अनुसार, इन गुरुत्वाकर्षण तरंगों में स्थानिक और अस्थायी रूप से वृद्धि और कमी हो सकती है। ''प्रमुख ग्रहों के सभी संयोजनों के परिणामस्वरूप परिणामी गुरुत्वाकर्षण वैक्टर (आरजीवी) के सभी स्थानिक स्थानों की पहचान की गई। अध्ययन से पता चला कि जब एक ग्रह वेक्टर उन आरजीवी को

पार करता है, तो गुरुत्वाकर्षण लहर पैदा होती है और यह पृथ्वी के कक्षीय पथ को परेशान करती है और इसलिए पृथ्वी की सतह पर भूमिगत भूमि के गति प्रक्रिया को बदल देती है'' ऐसा अध्ययन में कहा गया है।

8. साइकस की दो नई प्रजातियों की खोज

आचार्य जगदीश चंद्र बोस द्वारा भारतीय वनस्पति उद्यान, पश्चिम बंगाल में पाए गए एक अकेले पेड़ साइकसस्चानी पर किए गए शोध ने दुनिया के लिए साइकस की दो नई प्रजातियों का खुलासा किया है। इस खोज से, भारत में पाए गए साइकस प्रजातियों की कुल संख्या 14 हो गई है।

साइकस

साइकस सबसे प्राचीन पौधों में से एक है जिनके जीवाश्म जुरासिक काल के समय के पाए जाते हैं। उन्हें अक्सर जीवित जीवाश्म के रूप में जाना जाता है। वे पृथ्वी पर पहले बीज वाले पौधों के रूप में विकसित हुए हैं और वे धीरे–धीरे बढ़ते हैं, हर साल ये केवल कुछ सेंटीमीटर तक ही बढ़ पाते हैं। लगभग 65% साइकस संकट में हैं। दुनिया भर में साइकस की 100 से अधिक प्रजातियां पाई गई हैं।

मुख्य तथ्य

अकेले साइकसस्चानी पेड़ के प्रारंभिक अध्ययन से पता चला कि यह एक जिमनोस्पर्म था। इसके रचनात्मक और मोर्फोलॉजिकल पात्रों के आधार पर आगे के शोध ने अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में साइकसस्चानी की नई प्रजातियों की खोज और बाद में साइकसधर्मराजी की खोज की।

साइकसधर्मराजी अपने विशाल मुख्य तने की असामान्य शाखा के स्वभाव और इसके सूजन आधार की विशेषता है। इसने मेगा स्पोरोफिल के शीर्ष में 10 से 28 हुक–जैसी संरचनाओं को अच्छी तरह से परिभाषित किया है जो इसे देश में पाए जाने वाले अन्य साइकस से अलग बनाता है। स्पोरोफिल बीजाणुधारक पौधे के पत्ते हैं जो बीमार मादा जननांग की तरह होते हैं। साइकस के स्पोरोफिल की विशेषता है कि इसमें दो पार्श्व सींग जैसी संरचनाओं की उपस्थित होते हैं।

9. रिलायंस जियो ने दुनिया की सबसे लंबी 100 जीबीपीएस पनडुब्बी केबल प्रणाली ल,न्च की

मुकेश अंबानी के नेतृत्व में रिलायंस जियोइन्फोकॉम ने एशिया–अफ्रीका–यूरोप (एएई–1) पनडुब्बी केबल सिस्टम लॉन्च किया है। यह दुनिया की सबसे लंबी 100 जीबीपी तकनीक आधारित पनडुब्बी प्रणाली होने का दावा किया जाता है। यह मार्सेल, फ्रांस से हांगकांग तक 25,000 किमी से अधिक तक फैला है। एशिया और यूरोप में 21 केबल लैंडिंग होंगे। इसका उपयोग करके, जियो अपने ग्राहकों को सबसे असाधारण हाई स्पीड इंटरनेट और डिजिटल सेवा अनुभव प्रदान करना जारी रखेगा।

मुख्य तथ्य

एएई –1 परियोजना यूरोप, मध्य पूर्व और एशिया के अग्रणी दूरसंचार सेवा प्रदाताओं का संयोजन है। यह सभी वैश्विक बाजारों तक सीधी पहुंच प्रदान करने के लिए अन्य केबल सिस्टम और फाइबर नेटवर्क से सहजता से लिंक करेगा। इसमें एशिया (हांगकांग और सिंगापुर) में उपस्थिति के विविध बिंदु (पीओपी) की सुविधा होगी, यूरोप में तीन आगे कनेक्टिविटी विकल्प (फ्रांस, इटाल और ग्रीस)। केबल सिस्टम महत्वपूर्ण केंद्रों से गुजरता है, जो वीडियो केंद्रित डेटा बैंडविड्थ की मांग को पूरा करता है जो भारत के भीतर और उससे बाहर के सभी प्रकार के संचार, अनुप्रयोगों और सामग्री का समर्थन करता है।

एएई –1 प्रणाली का उन्नत डिजाइन और मार्ग हांगकांग, भारत, मध्य पूर्व और यूरोप के बीच सबसे कम विलंबता मार्गों में से एक प्रदान करेगा। इसका उपयोग करके, रिलायंस जियो एएई –1 केबल सिस्टम के लिए नेटवर्क ऑपरेशंस एंड मैनेजमेंट प्रदान करेगा।

इसका नेटवर्क ऑपरेशंस सेंटर (एनओसी) नवी मुंबई में कला सुविधा की स्थिति का उपयोग करेगा।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में नई शब्दावली

1. निर्भय = उप–सोनिक क्रूज मिसाइल निर्भय भारत द्वारा विकसित एक लंबी दूरी, उप–सोनिक क्रूज मिसाइल, टॉमहॉक के बराबर है, यह रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (डीआरडीओ) द्वारा विकसित किया गया है जो उप–सोनिक गति (कम से कम) ध्वनि की गति) से चलेगा।
2. NAG= एंटी–टैंक मिसाइल 'आग और भूल'। यह चार किमी दूर दुश्मन टैंक को नष्ट कर सकता है।
3. NAMICA= नाग मिसाइल वाहक

4. यह एनएजी मिसाइलों को ले जाने और लॉन्च करने का एक वाहन है
5. Helina= नाग के हेलीकॉप्टर से निकाल दिया संस्करण। हेलिना = हेलीकॉप्टर. नाग
6. LAHAT= लेजर होमिंग अटैक या लेजर होमिंग एंटी–टैंक मिसाइल एंटी–टैंकमिसाइल, अपग्रेड अर्जुन युद्ध टैंक में इस्तेमाल किया जाएगा।
7. ट्रोपेक्स –2012 = भारतीय नौसेना द्वारा आयोजित रंगमंच की तैयारी और परिचालन अभ्यास। नए प्लेटफार्मों, हथियार सेंसर, संचार प्रणालियों और परीक्षणों का परीक्षण करने के लिए बेड़े की नेटवर्क लड़ाकू शक्ति को अनुकूलित करने के लिए रणनीतियां।
8. शूर वीर = 2012 में थार रेगिस्तान में लड़ाकू अभ्यास सीमा पार तेजी से कई जोर देने के लिए सेना की परिचालन तैयारी का परीक्षण करने के लिए इस्तेमाल किया गया। सेना और आईएएफ ने लड़ाकू विमान, मानवरहित हवाई वाहन और आक्रमणकारी हेलीकॉप्टरों का उपयोग करके केंद्रीकृत कमांड के लिए प्रदान किए गए युद्ध क्षेत्र की वास्तविक समय तस्वीरों के साथ नई लड़ाई लड़ने की अवधारणाओं का परीक्षण किया। राष्ट्रीय बड़े सौर टेलीस्कोप (एनएलएसटी) = विज्ञान विभाग द्वारा स्थापित दुनिया की सबसे बड़ी सौर दूरबीन और प्रौद्योगिकी, लद्दाख में। इसका उद्देश्य सूर्य की सूक्ष्म संरचना का अध्ययन करना है।
9. RISAT1 = RISAT1 भारत का पहला रडार इमेजिंग उपग्रह है। यह सभी मौसम की स्थिति के तहत दिन और रात दोनों के दौरान पृथ्वी की सतह को स्कैन कर सकता है। यह धान की निगरानी और बाढ़ और चक्रवात जैसे प्राकृतिक आपदा के 195 प्रबंधन में मदद करेगा।
10. इसरो का 100 वां मिशन = PSLV–C21 रॉकेट का उपयोग करके, इसरो ने आंध्र प्रदेश में श्रीहरिकोटा से दो विदेशी उपग्रहों को लॉन्च किया स्पॉट 6% फ्रांसीसी उपग्रह प्रोटेरेसः सतीश धवन स्पेस सेंटर से जापानी माइक्रो उपग्रह,
11. प्रोजेक्ट ग्लास = Googleद्वारा एक शोध और विकास कार्यक्रम। यह सामान्य चश्मा की एक जोड़ी जैसा दिखता है जहां लेंस को हेड–अप डिस्प्ले द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। प्रोजेक्ट ग्लास एक पहनने योग्य कंप्यूटर है जो स्क्रीन के माध्यम से जानकारी प्रदान नहीं करता है, बल्कि आपकी ''आंखों'' के माध्यम से प्रदान करता है। यह आपको स्मार्टफोन और खोज करने के बारे में जानने के बिना आपके आस–पास के बारे में डेटा देता है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक किताबों की दुकान में जाते हैं, तो गूगल ग्लास आपको जगह का एक इनडोर मानचित्र प्रदान करने में सक्षम होगा और आपको अपनी वांछित पुस्तक पर ले जाएगा।

12. ग्लिवेकः = रक्त कैंसर की दवा नोवार्टिस इस दवा के लिए भारत में एक पेटेंट का मामला लड़ रही है। ग्लिवेक के उपचार में प्रति मरीज प्रति माह 1,20,000 रुपये खर्च आता है। लेकिन नोवार्टिस ने यह बरकरार रखा है कि वे जरूरतमंद मरीजों को यह दवा मुफ्त में देते रहेंगे।

₹250.00
ISBNXXXXXXXXX